In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

छविकृष्ण आर्य
एम. ए. एम.

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# वेदसमुल्लासः

(दिल्लीविश्वविद्यालयसंस्कृतएम० ए०पाठ्यक्रमनिर्धारिता वेदमन्त्राः)

# Vedasamullasa

(Vedic Hymns prescribed in Delhi University Sanskrit M. A.)

**Editors**
Satya Bhushan Yogi, M. A., Shastri, Vedalankar
(Kumari) Vandita Madhuhasini Yogi, M. A.

MOTILAL BANARSIDASS
Delhi :: Varanasi :: Patna

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

MOTILAL BANARSIDASS

**Head office :** Bungalow Road, Jawahar Nagar, Delhi-7
**Branches :** 1. Chowk, Varanasi (U. P.)
2. Ashok Rajpath, Patna (Bihar)

©Satya Bhushan Yogi

First Edition
1971
**Price : Rs. 14-00**

Published by Shri Sunderlal Jain, Motilal Banarsidass, Bunglow Road, Jawahar Nagar, Delhi- 7 and Printed by Shri Shanti Lal Jain, Shri Jainendra Press, Bungalow Road, Jawahar Nagar, Delhi-7.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# प्राक्कथनम्

विविधभाष्यसंवलितो वेदसमुल्लासो विदुषां करकमलसंपुटे सादरं संस्थाप्यते। सम्पादकाभ्यां प्रस्तुता अर्था न प्रमाणरूपेण गृह्यन्ताम्। विचार्यरूपेणैव ते प्रस्तूयन्ते।

सम्पादकाभ्यां स्वभाष्ये धातूनां निर्देशः प्रायो निरनुबन्धः कृतः। सानुबन्धमूलरूपज्ञानाय धातुपाठो द्रष्टव्यः।

अन्ते शुद्धिपत्रमवश्यं द्रष्टव्यम्।

मम सतीर्थ्यो मनोहरविद्यालङ्कारः स्वविवेकग्रन्थागाराद् अनेकसहायकग्रन्थानां व्यवस्थां व्यधात्। मोतीलालबनारसीदासप्रकाशननिरीक्षकः श्रीजगदीशलालशास्त्रिमहाभागो न केवलं स्वसूक्ष्मेक्षिकया शुद्धमुद्रणभारमूढवान्, सौजन्यातिरेकेण स्थाने स्थाने सत्परामर्शैरप्यनुगृहीतवान्। श्रीसुन्दरलालजैनमहोदयो ग्रन्थमिमं स्वल्पमूल्येन प्राप्यं कृतवान्। इमान् सर्वान् महाभागान् अन्यांश्चापि सर्वान् येऽत्र कार्ये परोक्षमपरोक्षं वा सहायमभूवन्, सधन्यवादं स्मरतः

सेन्टस्टीफन्समहाविद्यालयः
दिल्ली-७
फरवरी, १९७१

सम्पादकौ
सत्यभूषणयोगी
(कुमारी) वन्दितामधुलासिनी योगी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

MOTILAL BANARSIDASS

**Head office :** Bungalow Road, Jawahar Nagar, Delhi-7
**Branches :** 1. Chowk, Varanasi (U. P.)
2. Ashok Rajpath, Patna (Bihar)

**©Satya Bhushan Yogi**

**First Edition**
**1971**
**Price : Rs. 14-00**

**Published by Shri Sunderlal Jain, Motilal Banarsidass, Bunglow Road, Jawahar Nagar, Delhi- 7 and Printed by Shri Shanti Lal Jain, Shri Jainendra Press, Bungalow Road, Jawahar Nagar, Delhi-7.**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हविकुमारशास्त्री
एम. ए. एल. फिल्

# प्राक्कथनम्

विविधभाष्यसंवलितो वेदसमुल्लासो विदुषां करकमलसंपुटे सादरं संस्थाप्यते । सम्पादकाभ्यां प्रस्तुता अर्था न प्रमाणरूपेण गृह्यन्ताम् । विचार्यरूपेणैव ते प्रस्तूयन्ते ।

सम्पादकाभ्यां स्वभाष्ये धातूनां निर्देशः प्रायो निरनुबन्धः कृतः । सानुबन्धमूलरूपज्ञानाय धातुपाठो द्रष्टव्यः ।

अन्ते शुद्धिपत्रमवश्यं द्रष्टव्यम् ।

मम सतीर्थ्यो मनोहरविद्यालङ्कारः स्वविवेकग्रन्थागाराद् अनेकसहायकग्रन्थानां व्यवस्थां व्यधात् । मोतीलालबनारसीदासप्रकाशननिरीक्षकः श्रीजगदीशलालशास्त्रिमहाभागो न केवलं स्वसूक्ष्मेक्षिकया शुद्धमुद्रणभारमूढवान्, सौजन्यातिरेकेण स्थाने स्थाने सत्परामर्शैरप्यनुगृहीतवान् । श्रीसुन्दरलालजैनमहोदयो ग्रन्थमिमं स्वल्पमूल्येन प्राप्यं कृतवान् । इमान् सर्वान् महाभागान् अन्यांश्चापि सर्वान् येऽत्र कार्ये परोक्षमपरोक्षं वा सहाया अभूवन्, सधन्यवादं स्मरतः

सेन्टस्टीफन्समहाविद्यालयः
दिल्ली-७
फरवरी, १९७१

सम्पादकौ
सत्यभूषणयोगी
(कुमारी) वन्दितामधुहासिनी योगी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# समर्पणम्

डा० जाकिरहुसेनमहाविद्यालये (दिल्लीमहाविद्यालये) संस्कृतविभागाध्यक्षस्य
श्रीश्रीनारायणनिगममहोदयस्य करकमलसंपुटे—

श्रीनारायणनिगममहोदय
निगममन्त्रसन्देशमिमं नय
आगमशुद्धधियं मतिमन्तं
सत्ययोगमधुरसधृतिमन्तम्

—सत्यभूषणयोगी
(कुमारी) वन्दितामधुहासिनी योगी

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# अनुक्रमणिका


| | |
|---|---|
| भूमिका | १— ८ |
| इन्द्रः | ९— २८ |
| रुद्रः | २९— ४२ |
| अग्निः | ४३— ५१ |
| सविता | ५२— ५७ |
| सोमः | ५८— ६७ |
| ज्ञानम् | ६८— ७५ |
| पुरुषः | ७६— ९५ |
| धनान्नदानम् | ९६—१०१ |
| भाववृत्तम् | १०२—१०८ |
| दुःस्वप्ननाशनम् | १०९—१११ |
| यजुर्वेदः (द्वात्रिंशोऽध्यायः) | ११२—११७ |
| सामवेदः (इन्द्रः) | १२८—१३१ |
| अथर्ववेदः (वरुणः) | १३२—१३९ |
| शब्द-विषय-सूची | १४१ |
| शुद्धिपत्र | १४२—१४३ |
| मूलमन्त्र (पदपाठसहित) | १— ४० |


Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# अनुक्रमणिका


| | |
|---|---|
| भूमिका | १— ८ |
| इन्द्रः | ९— २८ |
| रुद्रः | २९— ४२ |
| अग्निः | ४३— ५१ |
| सविता | ५२— ५७ |
| सोमः | ५८— ६७ |
| ज्ञानम् | ६८— ७८ |
| पुरुषः | ७९— ९५ |
| धनान्नदानम् | ९६—१०१ |
| भाववृत्तम् | १०२—१०८ |
| दुःस्वप्ननाशनम् | १०९—१११ |
| यजुर्वेदः (द्वात्रिंशोऽध्यायः) | ११२—११७ |
| सामवेदः (इन्द्रः) | ११८—१२१ |
| अथर्ववेदः (वरुणः) | १२२—१२९ |
| शब्द-विषय-सूची | १४१ |
| शुद्धिपत्र | १४२—१४३ |
| मूलमन्त्र (पदपाठसहित) | १— ४० |


Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# शब्द-विषय-सूची


| | पृष्ठ |
|---|---|
| अग्निः | ४३-४५ |
| अदितिः | ४१ |
| अश्वः | ५४ |
| अहिः | १२ |
| आङ्गिरसः | ११ |
| आदित्यः | ११३ |
| इन्द्रः | ४-५; ९-११ |
| उपनिषदों का विषय | ६ |
| कुत्सः | ३१ |
| गन्धर्वः | १२१ |
| त्वष्टा | १३ |
| दुःस्वप्ननाशनम् | १०५ |
| देवः | ५४ |
| देव तथा देवता | ५ |
| देवता कितने हैं ? | ६, ७ |
| देवताओं के तीन अर्थ | ७, ८ |
| देवों का स्वरूप | ४ |
| धनान्नदानम् | ९६ |
| नारायणः | ८२ |
| निगूढार्थ (वेदों में) | १ |
| न्यायप्रेमसामञ्जस्य (वरुण) | १३२ |
| ज्ञानम् | ६८-६९ |
| पणिः | २३ |
| पवित्र आङ्गिरसः | ६१ |
| पुरुषः | ७९-८२ |
| प्रचेता आङ्गिरसः | १०५ |
| प्रजापतिः परमेष्ठी | १०२ |
| परमात्मा | १०४ |
| बृहस्पतिः | ६८-६९ |
| बाहुः | ५५ |

| | पृष्ठ |
|---|---|
| ब्रह्म | ११३ |
| भगः | ४८ |
| भाववृत्तम् | १०३ |
| मन्त्रों के अनेक अर्थ | ४ |
| मन्त्रों का ऋषि | १ |
| मरुतः | ३७ |
| माया | १५ |
| मित्रः | ४१ |
| मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः | ५३ |
| यज्ञः | ७२, ८७, ८८ |
| रुद्रः | २९-३१ |
| वङ्कुः | ३५ |
| वज्रः | १२ |
| वराहः | ३६ |
| वाक् | ७१ |
| वेद का प्रयोजन | २ |
| वेद का व्याकरण | ५ |
| वेदार्थप्रकार | ६ |
| वेदों का विषय | ६ |
| वेदों के ऋषि | ६ |
| वेदों में निगूढार्थ | १ |
| वेदों में इतिहास नहीं है | ३ |
| वेद-माहात्म्य | १ |
| सप्त मर्यादाः | ९४ |
| समुद्रः | १३ |
| सलिलम् | १०५ |
| सविता | ५२-५३ |
| सोमः | ५, ५८-६१ |
| हस्तः | ५४ |
| हिरण्मयः | ११ |


Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# वेदसमुल्लासः

(दिल्ली विश्वविद्यालय संस्कृत एम० ए०
पाठ्यक्रम निर्धारिताः पदपाठसहिता
वेदमन्त्राः)

सम्पादकौ

सत्यभूषणयोगी
(कुमारी) वन्दितामधुरासिनीयोगी

मोतीलाल बनारसीदासः
दिल्ली

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

मूल्य (८)

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# विज्ञप्ति

दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत एम० ए० के पाठ्यक्रम में सन् १९७० से निर्धारित वेदमन्त्रों की पाठमाला 'वेदसमुल्लास' नाम से मुद्रित हो रही है। मूलमन्त्र पदपाठ के साथ मुद्रित आपके हाथ में है।

संपूर्ण पाठमाला के मुद्रित होने में कुछ समय लगेगा। अतः छात्रों की सुविधा की दृष्टि से इस वर्ष के लिए यह व्यवस्था की गई है कि ज्यों ज्यों पाठमाला का कुछ भाग मुद्रित होता जाए, छात्रों को मिलता जाए।

मूल वेदमन्त्रों के साथ पाठमाला का पूर्ण मूल्य ले लिया जाएगा। पूर्ण पाठमाला के मुद्रण के पश्चात् बिना मूल्य लिए प्रकाशक की ओर से जिल्द बंधवा दी जाएगी।

मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड
जवाहर नगर
दिल्ली-७

सुन्दर लाल
प्रकाशक

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

## इन्द्रः (ऋ० १.३२)

हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं
यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द
प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ।।१।।

इन्द्रस्य।नु।वीर्याणि।प्र।वोचम्।
यानि।चकार।प्रथमानि।वज्री।
अहन्।अहिम्।अनु।अपः।ततर्द।
प्र।वक्षणाः।अभिनत्।पर्वतानाम्।।१।।

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं
त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना
अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ।।२।।

अहन्।अहिम्।पर्वते।शिश्रियाणम्।
त्वष्टा।अस्मै।वज्रम्।स्वर्यम्।ततक्ष।
वाश्राः।इव।धेनवः।स्यन्दमानाः।
अञ्जः।समुद्रम्।अव।जग्मुः।
आपः।।२।।

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं
त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्र-
महन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ।।३।।

वृषऽयमाणः।अवृणीत।सोमम्।
त्रिऽकद्रुकेषु।अपिबत्।सुतस्य।
आ।सायकम्।मघऽवा।अदत्त।वज्रम्।
अहन्।एनम्।प्रथमऽजाम्।अहीनाम्।।३।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनां
मान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं
तादित्ना शत्रुं न किला विवित्से॥४॥

यत्। इन्द्र। अहन्। प्रथमऽजाम्। अहीनाम्।
आत्। मायिनाम्। अमिनाः। प्र। उत।
मायाः।
आत्। सूर्यम्। जनयन्। द्याम्। उषसम्।
तादित्ना। शत्रुम्। न। किल। वि-
वित्से॥४॥

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंस-
मिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णा-
ऽहिः शयतउपपृक्पृथिव्याः॥५॥

अहन्। वृत्रम्। वृत्र-ऽतरम्। विऽअंसम्।
इन्द्रः। वज्रेण। महता। वधेन।
स्कन्धांसिऽइव। कुलिशेन। विऽवृक्णा।
अहिः। शयते। उपऽपृक्। पृथिव्याः॥५॥

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे
महावीरं तुविबाधमृजीषम्।
नातारीदस्य समृतिं वधानां
सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः॥६॥

अयोद्धाऽइव। दुःऽमदः। आ। हि। जुह्वे।
महाऽवीरम्। तुविऽबाधम्। ऋजीषम्।
न। अतारीत्। अस्य। समृऽतिम्। वधानाम्।
सम्। रुजानाः। पिपिषे। इन्द्रऽशत्रुः॥६॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्र-
मास्य वज्रमधि सानौ जघान ।

वृष्णो वध्रिः प्रतिमानबुभूषन्
पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ।।७।।

नदं न भिन्नममुया शयानं
मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्
तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ।।८।।

नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रे-
रिन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्
दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ।।९।।

अपात्। अहस्तः। अपृतन्यत्। इन्द्रम्।
आ। अस्य। वज्रम्। अधि। सानौ।
जघान।
वृष्णः। वध्रिः। प्रतिऽमानम्।
बुभूषन्।
पुरुऽत्रा। वृत्रः। अशयत्। वि-
अस्तः।।७।।

नदम्। न। भिन्नम्। अमुया।
शयानम्।
मनः। रुहाणाः। अति। यन्ति।
आपः।
याः। चित्। वृत्रः। महिना। परि-
अतिष्ठत्।
तासाम्। अहिः। पत्सुतः। शीः।
बभूव।।८।।

नीचाऽवयाः। अभवत्। वृत्रऽपुत्रा।
इन्द्रः। अस्याः। अधि। वधः। जभार।
उत्ऽतरा। सूः। अधरः। पुत्रः। आसीत्।
दानुः। शये। सहऽवत्सा। न। धेनुः।।९।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां
काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।

अतिष्ठन्तीनाम्। अनिऽवेशनानाम्।
काष्ठानाम्। मध्ये। निऽहितम्।
शरीरम्।

वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो
दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः।।१०।।

वृत्रस्य। निण्यम्। वि। चरन्ति। आपः।
दीर्घम्। तमः। आ। अशयत्। इन्द्रऽ-
शत्रुः।।१०।।

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्
निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।

दासऽपत्नीः। अहिऽगोपाः। अति-
ष्ठन्।
निऽरुद्धाः। आपः। पणिनाऽइव।
गावः।

अपां बिलमपिहितं यदासीद्
वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार।।११।।

अपाम्। बिलम्। अपिऽहितम्। यत्।
आसीत्।
वृत्रम्। जघन्वान्। अप। तत्। ववार।।११।।

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र
सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः।
अजयो गा अजयः शूर सोम-
मवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून्।।१२।।

अश्व्यः। वारः। अभवः। तत्। इन्द्र।
सृके। यत्। त्वा। प्रति। अहन्। देवः। एकः।
अजयः। गाः। अजयः। शूर। सोमम्।
अव। असृजः। सर्तवे। सप्त। सिन्धून्।।१२।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध
न या मिमिक्रे कुदुनिं च ।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चो-
ता परिष्ठ्यो मघवा वि जिग्ये ।।१३।।

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र
हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नवं च यन्नवतिं च स्रवन्तीः
श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ।।१४।।

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा
शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीना-
मरान्न नेमिः परि ता बभूव ।।१५।।

न। अस्मै। विऽद्युत्। न। तन्यतुः।
सिषेध।
न। याम्। मिमिक्रे। कुऽदुनिम्।
च।
इन्द्रः। च। यत्। युयुधाते इति। अहेः।
च।
उत। अपरिऽभ्यः। मघऽवा। वि।
जिग्ये। १३।।

अहेः। यातारम्। कम्। अपश्यः। इन्द्र।
हृदि। यत्। ते। जघ्नुषः। भीः।
अगच्छत्।
नवं। च। यत्। नवतिम्। च। स्रवन्तीः।
श्येनः। न। भीतः। अतरः। रजांसि। १४।।

इन्द्रः। यातः। अवऽसितस्य। राजा।
शमस्य। च। शृङ्गिणः। वज्रऽबाहुः।
सः। इत्। ऊं इति। राजा। क्षयति।
चर्षणीनाम्।
अरान्। न। नेमिः। परि। ता। बभूव। १५।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# रुद्रः (ऋ० १.११४)

कुत्स आङ्गिरसः। रुद्रः। जगती; १०,११ त्रिष्टुप्।

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने
क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः।
यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे
विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्॥१॥

इमाः। रुद्राय। तवसे। कपर्दिने।
क्षयत्ऽवीराय। प्र। भरामहे। मतीः।
यथा। शम्। असत्। द्विऽपदे। चतुःऽपदे।
विश्वम्। पुष्टम्। ग्रामे। अस्मिन्।
अनातुरम्॥१॥

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि
क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता
तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु॥२॥

मृळ। नः। रुद्र। उत। नः। मयः। कृधि।
क्षयत्ऽवीराय। नमसा। विधेम। ते।
यत्। शम्। च। योः। मनुः। आऽयेजे।
पिता।
तत्। अश्याम। तव। रुद्र। प्रऽनीतिषु॥२॥

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया
क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः।
सुम्नायन्निद् विशो अस्माकमा चरा-
रिष्टवीरा जुहवाम ते हविः॥३॥

अश्याम। ते। सुऽमतिम्। देवऽयज्यया।
क्षयत्ऽवीरस्य। तव। रुद्र। मीढ्वः।
सुम्नऽयत्। इत्। विशः। अस्माकम्।
आ। चर।
अरिष्टऽवीराः। जुहवाम। ते।
हविः॥३॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं
वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु
सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ।।४।।

त्वेषम्। वयम्। रुद्रम्। यज्ञऽसाधम्।
वङ्कुम्। कविम्। अवसे। नि। ह्वयामहे।
आरे। अस्मत्। दैव्यम्। हेळः। अस्यतु।
सुऽमतिम्। इत्। वयम्। अस्य। आ।
वृणीमहे।।४।।

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं
त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि
शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ।।५।।

दिवः। वराहम्। अरुषम्। कप-
र्दिनम्।
त्वेषम्। रूपम्। नमसा। नि। ह्वयामहे।
हस्ते। बिभ्रत्। भेषजा। वार्याणि।
शर्म। वर्म। छर्दिः। अस्मभ्यम्।
यंसत्।।५।।

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः
स्वादोः स्वादीयो रुद्रायवर्धनम्।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं
त्मने तोकाय तनयाय मृळ ।।६।।

इदम्। पित्रे। मरुताम्। उच्यते। वचः।
स्वादोः। स्वादीयः। रुद्राय।
वर्धनम्।
रास्व। च। नः। अमृत। मर्तऽभोजनम्।
त्मने। तोकाय। तनयाय। मृळ ।।६।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं
मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं
मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः।।७।।
मा नस्तोके तनये मा न आयौ
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु
रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधी-
र्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे।।८।।

मा।नः।महान्तम्।उत।मा।नः।
अर्भकम्।
मा।नः।उक्षन्तम्।उत।मा।नः।
उक्षितम्।
मा।नः।वधीः।पितरम्।मा।उत।
मातरम्।
मा।नः।प्रियाः।तन्वः।रुद्र।
रिरिषः।।७।।
मा।नः।तोके।तनये।मा।नः।आयौ।
मा।नः।गोषु।मा।नः।अश्वेषु।
रिरिषः।
वीरान्।मा।नः।रुद्र।भामितः।
वधीः।
हविष्मन्तः।सदम्।इत्।त्वा।
हवामहे।।८।।

उप ते स्तोमान्पशुपा इवाकरं
रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमा-
था वयमव इत्ते वृणीमहे।।९।।

उप।ते।स्तोमान्।पशुपाः।इव।आ।
अकरम्।
रास्व।पितः।मरुताम्।सुम्नम्।
अस्मे इति।
भद्रा।हि।ते।सुऽमतिः।मृळयत्ऽतमा।
अथ।वयम्।अवः।इत्।ते।वृणीमहे।।९।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं
क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवा-
धा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ।।१०।।

आरे।ते।गोऽघ्नम्।उत।
पुरुषऽघ्नम्।
क्षयत्ऽवीर।सुम्नम्।अस्मेइति।
ते।अस्तु।
मृळ।च।नः।अधि।च।ब्रूहि।देव।
अध।च।नः।शर्म।यच्छ।द्विऽबर्हाः।१०।।

अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः
शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता-
मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत
द्यौः ।।११।।

अवोचाम।नमः।अस्मै।अवस्यवः।
शृणोतु।नः।हवम्।रुद्रः।
मरुत्वान्।
तत्।नः।मित्रः।वरुणः।
ममहन्ताम्।
अदितिः।सिन्धुः।पृथिवी।उत।
द्यौः।।११।।

-- -- --

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# अग्निः (ऋ० ५.८)

ऋषः आत्रेयः। अग्निः। जगती।

त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे
पृतन पृत्नासु ऊतये सहस्कृत।
पुरुश्चन्द्र यजत विश्वधायसं
दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम्।।१।।

त्वाम्। अग्ने। ऋतऽयवः। सम्। ईधिरे।
पृतनम्। पृत्नासुः। ऊतये। सहःऽकृत।
पुरुऽश्चन्द्रम्। यजतम्। विश्वऽधायसम्।
दमूनसम्। गृहऽपतिम्। वरेण्यम्।।१।।

त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः
शोचिष्केशं गृहपतिं निषेदिरे।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं
सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम्।।२।।

त्वाम्। अग्ने। अतिथिम्। पूर्व्यम्। विशः।
शोचिःऽकेशम्। गृहऽपतिम्। नि।
सेदिरे।
बृहत्ऽकेतुम्। पुरुऽरूपम्। घनऽस्पृतम्।
सुऽशर्माणम्। सुऽअवसम्। जरत्ऽ-
विषम्।।२।।

त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो
होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम्।
गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं
तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम्।।३।।

त्वाम्। अग्ने। मानुषीः। ईळते।
विशः।
होत्राऽविदम्। विविचिम्। रत्नऽ-
धातमम्।
गुहा। सन्तम्। सुऽभग। विश्वऽदर्शतम्।
तुविऽस्वनसम्। सुऽयजम्। घृत।ऽ-
श्रियम्।।३।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


त्वामग्ने वृणसि विश्ववार वयं
गीभिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम।
स नो जुषस्व समिधानो बर्ह्किरो
देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभि:।।४।।

त्वाम्। अग्ने। वृणसिम्। विश्ववार।
वयम्।
गी:ऽभि:। गृणन्त:। नमसा। उप।
सेदिम्।
स:। न:। जुषस्व। समूऽइधान:।
बर्ह्कि:।
देव:। मर्तस्य। यशसा। सुदीतिऽभि:।४।।

त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे
वयो दधासि पृतनर्यो पुरुष्टुत ।
पुरुण्यन्ना सहसा वि राजसि
त्विषि: सा ते तित्विषाणस्य
नाधृषे ।।५।।

त्वम्। अग्ने। पुरुऽरूप:। विशेऽविशे।
वय:। दधासि। पृतनऽर्यो। पुरुऽस्तुत।
पुरुण्या। अन्ना। सहसा। वि। राजसि।
त्विषि:। सा। ते। तित्विषाणस्य।
न। आऽधृषे।।५।।

त्वामग्ने समिधान यविष्ठ्य देवा
दूत चक्रिरे हव्यवाहनम् ।
उरुज्रयस घृतया निमाहुत
त्वेष चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति।।६।।

त्वाम्। अग्ने। सम्ऽइधानम्। यविष्ठ्य।
देवा:।
दूतम्। चक्रिरे। हव्यऽवाहनम्।
उरुऽज्रयसम्। घृतया। निम्। आऽहुतम्।
त्वेषम्। चक्षु:। दधिरे। चोदयत्ऽम-
तिम्।।६।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

त्वामग्ने प्र दिव आहुतं घृतैः

सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे ।
स वावृधान ओषधीभिरुक्षितोऽ-

भिज्रयांसि पार्थिवा वि
तिष्ठसे ।।७।।

त्वाम्। अग्ने। प्रऽदिवः। आऽहुतम्।
घृतैः ।
सुम्नऽयवः। सुऽसमिधा। सम्। ईधिरे।
सः। ववृधानः। ओषधीभिः।
उक्षितः।
अभि। ज्रयांसि। पार्थिवा। वि।
तिष्ठसे ।।७।।

- - -

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

## सविता (ऋ० ७.४५)

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। सविता। त्रिष्टुप्।

आ देवो यातु सविता सुरत्नो-
ऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि
निवेशयन्प्रसुवन्भूम।।१।।

आ। देवः। यातु। सविता। सुऽरत्नः।
अन्तरिक्षऽप्राः। वहमानः। अश्वैः।
हस्ते। दधानः। नर्या। पुरूणि।
निऽवेशयन्। च। प्रऽसुवन्। च। भूम।।१।।

उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता
हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम्।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट
सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम्।।२।।

उत्। अस्य। बाहू इति। शिथिरा।
बृहन्ता।
हिरण्ययौ। दिवः। अन्तान्।
अनष्टाम्।
नूनम्। सः। अस्य। महिमा। पनिष्ट।
सूरः। चित्। अस्मै। अनु। दात्।
अपस्याम्।।२।।

स घा नो देवः सविता सहावा
साविष्टदर्यपतिर्वसूनि।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं
मर्तभोजनमध रासते नः।।३।।

सः। घ। नः। देवः। सविता। सहऽवा।
आ।
सावि। षत्। वसुऽपतिः। वसूनि।
विऽश्रयमाणः। अमतिम्। उरूचीम्।
मर्तऽभोजनम्। अध। रासते। नः।।३।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

हुमा गिरः सवितारं सुजिह्वं
पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम् ।
चित्रं वयां बृहदस्मे दधातु
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।४।।

हुमाः।गिरः।सवितारम्।
सुऽजिह्वम्।
पूर्णऽगभस्तिम्।ईळते।
सुऽपाणिम्।
चित्रम्।वयः।बृहत्।अस्मे इति।
दधातु।
यूयम्।पात।स्वस्तिऽभिः।सदा।
नः।।४।।

०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

## सोमः (ऋ० ९.७३)

पवित्र आङ्गिरसः। पवमानः सोमः। जगती।

प्रक्वे दृप्सस्य धमतः समस्वर-
ऋतस्य योना समरन्त नाभयः।
त्रीन्त्स मूष्नो ऋषुरश्चक्र आरभे
सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्॥१॥

प्रक्वे। दृप्सस्य। धमतः। सम्। अस्वरन्।
ऋतस्य। योना। सम्। अरन्त। नाभयः।
त्रीन्। सः। मूष्नः। ऋषुः। चक्रे।
आऽरभे।
सत्यस्य। नावः। सुऽकृतम्। अपीपरन्॥१॥

सप्यक् सप्यञ्चो महिषा अहेषत
सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन्।
मधोर्धारामभि नयन्तो अर्षति
प्रियामिन्द्रस्य तन्वं पवीवृधन्॥२॥

सप्यक्। सप्यञ्चः। महिषाः। अहेषत।
सिन्धोः। ऊर्मौ। अधि। वेनाः।
अवीविपन्।
मधोः। धाराम्। अभि। नयन्तः। अर्षति।
इत्।
प्रियाम्। इन्द्रस्य। तन्वम्। पवीवृधन्॥२॥

पवित्रवन्तः परि वाचमासते
पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम्।
मुहुः समुद्र वरुणस्तिरो दधे
धीरा इच्छेकुरुणोष्वारभम्॥३॥

पवित्रेऽवन्तः। परि। वाचम्। आसते।
पिता। एषाम्। पत्नः। अभि।
रक्षति। व्रतम्।
मुहः। समुद्रम्। वरुणः। तिरः। दधे।
धीराः। इत्। शेकुः। वरुणेषु।
आऽरभम्॥३॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सुहस्त्यघारेऽव ते समस्वरन्
दिवोनाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः
पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ।।४।।

सुऽहस्त्यऽघारे। अव। ते। सम्। अस्वरन्।
दिवः। नाके। मधुऽजिह्वाः।
असश्चतः।
अस्य। स्पशः। न। नि। मिषन्ति।
भूर्णयः।
पदेऽपदे। पाशिनः। सन्ति। सेतवः। ४।।

पितुमातुरध्या ये समस्वर-
नृचा शोचन्तः सदहन्तो अव्रतान् ।
इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया
त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ।।५।।

पितूः। मातुः। अधि। आ। ये।
समूऽअस्वरन्।
ऋचा। शोचन्तः। समूऽदहन्तः।
अव्रतान्।
इन्द्रऽद्विष्टाम्। अप। घमन्ति।
मायया।
त्वचम्। असिक्नीम्। भूमनः। दिवः।
परि।।५।।

पृत्नान्यानादध्या ये समस्वर-
श्लोकंयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः।
अपानदासो बधिरा अहासत
ऋतस्य पन्था न तरन्ति दुष्कृतः ।।६।।

पृत्नात्। मानात्। अधि। आ। ये।
समूऽअस्वरन्।
श्लोकंऽयन्त्रासः। रभसस्य। मन्तवः।
अप। अनदासः। बधिराः। अहासत।
ऋतस्य। पन्थाम्। न। तरन्ति।
दुःऽकृतः।।६।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


सहस्रधारे वितते पवित्र आ
वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः
स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ।।७।।

सहस्रऽधारे । विऽततते । पवित्रे । आ ।
वाचम् । पुनन्ति । कवयः । मनीषिणः ।
रुद्रासः । एषाम् । इषिरासः ।
अद्रुहः ।
स्पशः । सुऽअञ्चः । सुऽदृशः ।
नृऽचक्षसः । ।७।।

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतु-
स्त्री ष पवित्रा हृद्यन्तरा दधे ।
विद्वानृत्स विश्वा भुवनाभि पश्यति
त्यवाजुष्टान् विध्यति कर्तेऽवृतान् ।।८।।

ऋतस्य । गोपाः । न । दभाय । सुऽक्रतुः ।
स्त्री । सः । पवित्रा । हृदि । अन्तः ।
आ । दधे ।
विद्वान् । सः । विश्वा । भुवना ।
अभि । पश्यति ।
अव । अजुष्टान् । विध्यति । कर्ते ।
अवृतान् । ।८।।

ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ
जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया ।
धीरा अचिन्वत्समिनक्षन्त आशता-
त्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ।।९।।

ऋतस्य । तन्तुः । विऽततः । पवित्रे । आ ।
जिह्वायाः । अग्रे । वरुणस्य ।
मायया ।
धीराः । अचिन्वत् । सम् । इनक्षन्तः ।
आशत ।
अत्रे । कर्तम् । अव । पदाति । अप्ऽभुः । ।९।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

## ज्ञानम् (ऋ० १०.७१)

बृहस्पतिराङ्गिरसः। ज्ञानम्। त्रिष्टुप्, ६ जगती।

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं
यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्
प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥१॥

बृहस्पते। प्रथमम्। वाचः। अग्रम्।
यत्। प्रऽऐरत। नामऽधेयम्। दधानाः।
यत्। एषाम्। श्रेष्ठम्। यत्।
अरिप्रम्। आसीत्।
प्रेणा। तत्। एषाम्। निऽहितम्।
गुहा। आविः॥१॥

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो
यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते
भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥२॥

सक्तुम्ऽइव। तितउना। पुनन्तः।
यत्र। धीराः। मनसा, वाचम्।
अक्रत।
अत्र। सखायः। सख्या नि। जानते।
भद्रा। एषाम्। लक्ष्मीः। निऽहिता।
अधि। वाचि॥२॥

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्
तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा
तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते॥३॥

यज्ञेन। वाचः। पदऽवीयम्। आयन्।
ताम्। अनु। अविन्दन्। ऋषिषु।
प्रऽविष्टाम्।
ताम्। आऽभृत्या। वि। अदधुः।
पुरुऽत्रा।
ताम्। सप्त। रेभाः। अभि। सम्।
नवन्ते॥३॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचं-
उत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।

उतो त्वस्मै तन्वं १ वि सस्रे
जायेव पत्य उशती सुवासाः ।।४।।

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहु-
र्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।

अधेन्वा चरति मायया एष
वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ।।५।।

यस्तित्याज सचिविदं सखायं
न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति
नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ।।६।।

उत।त्वः।पश्यन्।न।ददर्श।वाचम्।
उत।त्वः।शृण्वन्।न।शृणोति।
एनाम्।
उतो इति।त्वस्मै।तन्वम्।वि।
सस्रे।
जायाऽइव।पत्ये।उशती।सु-
वासाः।।४।।

उत।त्वम्।सख्ये।स्थिरऽपीतम्।आहुः।
न।एनम्।हिन्वन्ति।अपि।वाजि-
नेषु।
अधेन्वा।चरति।मायया।एषः।
वाचम्।शुश्रुऽवान्।अफलाम्।
अपुष्पाम्।।५।।

यः।तित्याज।सचिऽविदम्।सखायम्।
न तस्य।वाचि।अपि।भागः।अस्ति।
यत्।ईम्।शृणोति।अलकम्।शृणोति।
नहि।प्रऽवेद।सुऽकृतस्य।पन्थाम्।।६।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

अक्ण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो
मनोजुवेष्वसमा बभूवुः ।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे
हृदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ।।७।।

अक्ण्ऽवन्तः । कर्णऽवन्तः ।
सखायः ।
मनःऽजुवेषु । असमाः । बभूवुः ।
आदघ्नासः । उपऽकक्षासः ।
ऊं इति । त्वे ।
हृदाःऽइव । स्नात्वाः । ऊं इति ।
त्वे । ददृश्रे ।।७।।

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु
यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभि-
रोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ।।८।।

हृदा । तष्टेषु । मनसः । जवेषु ।
यत् । ब्राह्मणाः । सम्ऽयजन्ते । सखायः ।
अत्र । अह । त्वम् । वि । जहुः । वेद्याभिः ।
ओहऽब्रह्माणः । वि । चरन्ति ।
ऊं इति । त्वे ।।८।।

इमे ये नावरञ्च परश्चरन्ति
न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ।
त इते वाचमभिपद्य पापया
सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ।।९।।

इमे । ये । न । अवाक् । न । परः । चरन्ति ।
न । ब्राह्मणासः । न । सुतेऽकरासः ।
ते । इते । वाचम् । अभिऽपद्य । पापया ।
सिरीः । तन्त्रम् । तन्वते । अप्ऽ ऽ -
जज्ञयः ।।९।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन
सभासाहेन सख्या सखायः ।
किल्बिषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषाऽ-
रं हितो भवति वाजिनाय ॥१०॥

सर्वे। नन्दन्ति। यशसा। आऽगतेन।
सभाऽसहेन। सख्या। सखायः।
किल्बिषऽस्पृत्। पितुऽसनिः।
हि। एषाम्।
अरम्। हितः। भवति। वाजिनाय ॥१०॥

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्
गायत्रं त्वो गायति शकरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां
यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः ॥११॥

ऋचाम्। त्वः। पोषम्। आस्ते।
पुपुष्वान्।
गायत्रम्। त्वः। गायति। शकरीषु।
ब्रह्मा। त्वः। वदति। जातऽविद्याम्।
यज्ञस्य। मात्राम्। वि। मिमीते।
उ इति। त्वः ॥११॥

०-०

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# पुरुषः (ऋ० १०.९०)

नारायणः। पुरुषः। अनुष्टुप्, १६ त्रिष्टुप्।

सहस्रशीर्षा पुरुषः
सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा-
ऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।१।।

सहस्रशीर्षा। पुरुषः।
सहस्रऽअक्षः। सहस्रऽपात्।
सः। भूमिम्। विश्वतः। वृत्वा।
अति। अतिष्ठत्। दशऽअङ्गुलम्।।१।।

पुरुष एवेदं सर्वं
यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो
यदन्नेनातिरोहति।।२।।

पुरुषः। एव। इदम्। सर्वम्।
यत्। भूतम्। यत्। च। भव्यम्।
उत। अमृतऽत्वस्य। ईशानः।
यत्। अन्नेन। अतिऽरोहति।।२।।

एतावानस्य महिमातो
ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि
त्रिपादस्यामृतं दिवि।।३।।

एतावान्। अस्य। महिमा। अतः।
ज्यायान्। च। पुरुषः।
पादः। अस्य। विश्वा। भूतानि।
त्रिऽपात्। अस्य। अमृतम्। दिवि।।३।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः
पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्
साशनानशने अभि ॥४॥

त्रिऽपात्।ऊर्ध्वः।उत्।ऐत्।पुरुषः।
पादः।अस्य।इह।अभवत्।पुनरिति।
ततः।विष्वङ्।वि।अक्रामत्।
साशनानशने।इति।अभि।॥४॥

तस्माद्विराळजायत
विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत
पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥५॥

तस्मात्।विऽराट्।अजायत।
विऽराजः।अधि।पुरुषः।
सः।जातः।अति।अरिच्यत।
पश्चात्।भूमिम्।अथो इति।
पुरः॥५॥

यत्पुरुषेण हविषा
देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं
ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥६॥

यत्।पुरुषेण।हविषा।
देवाः।यज्ञम्।अतन्वत।
वसन्तः।अस्य।आसीत्।
आज्यम्।
ग्रीष्मः।इध्मः।शरत्।हविः॥६॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्
पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त
साध्या ऋषयश्च ये ।।७।।

तम्। यज्ञम्। बर्हिषि। प्र। औक्षन्।
पुरुषम्। जातम्। अग्रतः।
तेन। देवाः। अयजन्त।
साध्याः। ऋषयः। च। ये। ।७।।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः
सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूंस्ताँश्चक्रे वायव्या-
नारण्यान्ग्राम्याश्च ये ।।८।।

तस्मात्। यज्ञात्। सर्वऽहुतः।
सम्ऽभृतम्। पृषत्ऽआज्यम्।
पशून्। तान्। चक्रे। वायव्यान्।
आरण्यान्। ग्राम्याः। च।
ये। ।८।।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत
ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मा-
द्यजुस्तस्मादजायत ।।९।।

तस्मात्। यज्ञात्। सर्वऽहुतः।
ऋचः। सामानि। जज्ञिरे।
छन्दांसि। जज्ञिरे। तस्मात्।
यजुः। तस्मात्। अजायत। ।९।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तस्मादश्वा अजायन्त
ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्
तस्माज्जाता अजावयः ।।१०।।

तस्मात्।अश्वाः।अजायन्त।
ये।के।च।उभयादतः।
गावः।ह।जज्ञिरे।तस्मात्।
तस्मात्।जाताः।अजावयः।।१०।।

यत्पुरुषं व्यदधुः
कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू
का ऊरू पादा उच्येते ।।११।।

यत्।पुरुषम्।वि।अदधुः।
कतिधा।वि।अकल्पयन्।
मुखम्।किम्।अस्य।कौ।बाहू इति।
कौ।ऊरू इति।पादौ।उच्येते
इति।।११।।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासी-
द्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः
पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।१२।।

ब्राह्मणः।अस्य।मुखम्।आसीत्।
बाहू इति।राजन्यः।कृतः।
ऊरू इति।तत्।अस्य।यत्।वैश्यः।
पद्भ्याम्।शूद्रः।अजायत।।१२।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

चन्द्रमा मनसो जात-
श्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च
प्राणाद्वायुरजायत ।।१३।।

चन्द्रमाः।मनसः।जातः।
चक्षोः।सूर्यः।अजायत।
मुखात्।इन्द्रः।च।अग्निः।च।
प्राणात्।वायुः।अजायत।।१३।।

नाभ्या आसीदन्तरिक्ष
शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्
तथा लोकाँ अकल्पयन् ।।१४।।

नाभ्याः।आसीत्।अन्तरिक्षम्।
शीर्ष्णः।द्यौः।सम्।अवर्तत।
पत्ऽभ्याम्।भूमिः।दिशः।श्रोत्रात्।
तथा।लोकान्।अकल्पयन्।।१४।।

सप्तास्यासन्परिधय-
स्त्रिसप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना
अबध्नन्पुरुषं पशुम् ।।१५।।

सप्त।अस्य।आसन्।परिऽधयः।
त्रिः।सप्त।समऽइधः।कृताः।
देवाः।यत्।यज्ञम्।तन्वानाः।
अबध्नन्।पुरुषम्।पशुम्।।१५।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा-
स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।१६।।

यज्ञेन। यज्ञम्। अयजन्त। देवाः।
तानि। धर्माणि। प्रथमानि।
आसन्।
ते। ह। नाकम्। महिमानः। सचन्त।
यत्र। पूर्वे। साध्याः। सन्ति।
देवाः।।१६।।

...

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

## घनान्नदानम् (ऋ० १०.११७)

भिक्षुराङ्गिरसः। घनान्नदानम्। त्रिष्टुप्, १,२ जगती।

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वध ददु-
रुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्य-
त्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते ।।१।।

नावै। ऊँ इति। देवाः। क्षुधम्। इत्। वधम्। ददुः।
उत। आशितम्। उप। गच्छन्ति।
मृत्यवः।
उतो इति। रयिः। पृणतः। न।
उप। दस्यति।
उत। अपृणन्। मर्डितारम्। न।
विन्दते।।१।।

य आघ्राय चक्मानाय पित्वोऽ-
न्नवान्त्सन्रफितायोपजग्मुषे ।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरो-
तो चित्स मर्डितारं न विन्दते ।।२।।

यः। आघ्राय। चक्मानाय। पित्वः।
अन्नऽवान्। सन्। रफिताय। उपऽ-
जग्मुषे ।
स्थिरम्। मनः। कृणुते। सेवते। पुरा।
उतो इति। चित्। सः। मर्डितारम्।
न। विन्दते।।२।।

स इद्भोजो यो गृहवे ददा-
त्यन्नकामाय चरते कृशाय ।
अरमस्मै भवति यामहूता
उतापरीषु कृणुते सखायम् ।।३।।

सः। इत्। भोजः। यः। गृहवे। ददाति।
अन्नऽकामाय। चरते। कृशाय।
अरम्। अस्मै। भवति। यामऽहूतौ।
उत। अपरीषु। कृणुते। सखायम्।।३।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

न स सखा यो न ददाति सख्ये
सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।
अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति
पृणन्तमन्यमरण चिदिच्छेत् ।।४।।

न।सः।सखा।यः।न।ददाति।सख्ये।
सचाऽभुवे।सचमानाय।पित्वः।
अप।अस्मात्।प्र।इयात्।न।तत्।ओकः।
अस्ति।
पृणन्तम्।अन्यम्।अरणम्।चित्।
इच्छेत्।।४।।

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्
द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा-
न्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः।।५।।

पृणीयात्।इत्।नाधमानाय।
तव्यान्।
द्राघीयांसम्।अनु।पश्येत।पन्थाम्।
ओ इति।हि।वर्तन्ते।रथ्याऽइव।
चक्रा।
अन्यम्ऽअन्यम्।उप।तिष्ठन्त।
रायः।।५।।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी।।६।।

मोघम्।अन्नम्।विन्दते।अप्रऽचेताः।
सत्यम्।ब्रवीमि।वधः।इत्।सः।तस्य।
न।अर्यमणम्।पुष्यति।नो इति।
सखायम्।
केवलऽअघः।भवति।केवलऽआदी।।६।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

| | |
|---|---|
| कृ॒षन्नित्फाल॒ आशि॑तं कृणोति॒ | कृ॒षन्।इत्।फाल॑:।आशि॑तम्। कृ॒णो॒ति॒। |
| यन्नध्वा॑न॒मप॑ वृङ्क्ते च॒रित्रै॑: । | यन्।अध्वा॑नम्।अप॑।वृ॒ङ्क्ते॒।च॒रित्रै॑:। |
| वद॑न् ब्र॒ला व॑दतो॒ वनी॑यान् | वद॑न्।ब्र॒ला।अव॑दत:।वनी॑यान्। |
| पृ॒णन्ना॒पि रपृ॑णन्तम॒भि स्या॑त्।।७।। | पृ॒णन्।आ॒पि:।अपृ॑णन्तम्।अ॒भि। स्या॒त्।।७।। |
| एक॑पा॒द्भूयो॑ द्वि॒पदो॒ वि च॑क्रमे | एक॑ऽपात्।भूय॑:।द्वि॒ऽपद॑:।वि। च॒क्र॒मे॒। |
| द्वि॒पात्त्रि॒पाद॑म॒भ्ये॑ति प॒श्चात् । | द्वि॒ऽपात्।त्रि॒ऽपाद॑म्।अ॒भि।ए॒ति॒। प॒श्चात्। |
| चतु॑ष्पादेति द्वि॒पदा॑मभिस्व॒रे | चतु॑:ऽपात्।ए॒ति॒।वि॒ऽपदा॑म्। अ॒भिऽस्व॒रे। |
| स॒ंपश्य॑न्प॒ङ्क्तीरु॑प॒तिष्ठ॑मान:।।८।। | स॒म्ऽपश्य॑न्।प॒ङ्क्ती:।उ॒प॒ऽतिष्ठ॑- मान:।।८।। |
| स॒मौ चि॒द्धस्तौ॒ न स॒मं वि॑विष्ट: | स॒मौ।चि॒त्।हस्तौ॑।न।स॒मम्। वि॒वि॒ष्ट॒:। |
| सं॒मा॒तरा॑ चि॒न्न स॒मं दु॑हाते । | स॒म्ऽमा॒तरा॑।चि॒त्।न।स॒मम्। दु॒हा॒ते॒ इति॑। |
| य॒मयो॑श्चि॒न्न स॒मा वी॒र्या॑णि | य॒मयो॑:।चि॒त्।न।स॒मा।वी॒र्या॑णि। |
| ज्ञा॒ती चित्सन्तौ न स॒मं पृ॑णीत:।।९।। | ज्ञा॒ती इति॑।चि॒त्।सन्तौ॑।न। स॒मम्।पृ॒णी॒त॒:।।९।। |

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

## नासदीयसूक्तम् (ऋ० १०.१२९)

प्रजापतिः परमेष्ठी। भाववृत्तम्। त्रिष्टुप् ।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्
नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ।।१।।

न। असत्। आसीत्। नो इति।
सत्। आसीत्। तदानीम्।
न। आसीत्। रजः। नो इति।
विऽओमा। परः। यत्।
किम्। आ। अवरीवः। इति। कुहः।
कस्य। शर्मन्।
अम्भः। किम्। आसीत्। गहनम्।
गभीरम्। ।१।।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ।।२।।

न। मृत्युः। आसीत्। अमृतम्। न।
तर्हि।
न। रात्र्याः। अह्नः। आसीत्।
प्रऽकेतः।
आनीत्। अवातम्। स्वधया। तत्।
एकम्।
तस्मात्। ह। अन्यत्। न। परः। किम्।
चन। आस। ।२।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तमं आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे-
ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमाइदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्
तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ।।३।।

तमः।आसीत्।तमसा।गूळ्हम्।अग्रे।
अप्रऽकेतम्।सलिलम्।सर्वम्।आः।इदम्।
तुच्छ्येन।आभु।अपिऽहितम्।यत्।
आसीत्।
तपसः।तत्।महिना।अजायत।
एकम्।।३।।

कामस्तदग्रेसमवर्तताधि
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्
हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।।४।।

कामः।तत्।अग्रे।सम्।अवर्तत।अधि।
मनसः।रेतः।प्रथमम्।यत्।आसीत्।
सतः।बन्धुम्।असति।निः।अविन्दन्।
हृदि।प्रतिऽइष्या।कवयः।
मनीषा।।४।।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा-
मधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी
३त् ।
रेतोधा आसन् महिमान आसन्
त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्।५।।

तिरश्चीनः।विऽततः।रश्मिः।
एषाम्।
अधः।स्वित्।आसी३त्।उपरि।
स्वित्।आसी३त्।
रेतःऽधाः।आसन्।महिमानः।आसन्।
स्वधा।अवस्तात्।प्रऽयतिः।
परस्तात् ।।५।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेना-
था को वेद यत आबभूव ।।६।।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्
सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ।।७।।

कः । अद्धा । वेद । कः । इह । प्र ।
वोचत् ।
कुतः । आऽजाता । कुतः । इयम् ।
विऽसृष्टिः ।
अर्वाक् । देवाः । अस्य । विऽअर्जनेन ।
अथ । कः । वेद । यतः । आऽबभूव ।।६।।

इयम् । विऽसृष्टिः । यतः । आऽबभूव ।
यदि । वा । दधे । यदि । वा । न ।
यः । अस्य । अधिऽअक्षः । परमे ।
विऽओमन् ।
सः । अङ्ग । वेद । यदि । वा । न । वेद ।।७।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# दुःस्वप्ननाशनम् (सू० १०.१६४)

प्रचेता आङ्गिरसः। दुःस्वप्ननाशनम्। अनुष्टुप, ३ त्रिष्टुप्, ५ पङ्क्तीः।

अपेहि मनस्पते-
ऽपक्राम परश्चर।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व
बहुधा जीवतो मनः॥१॥

अप। इहि। मनसः। पते।
अप। क्राम। परः। चर।
परः। निःऽऋत्यै। आ। चक्ष्व।
बहुधा। जीवतः। मनेः॥१॥

भद्रं वै वरं वृणते
भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम्।
भद्रं वैवस्वते चक्षुः-
बहुत्रा जीवतो मनः॥२॥

भद्रम्। वै। वरम्। वृणते।
भद्रम्। युञ्जन्ति। दक्षिणम्।
भद्रम्। वैवस्वते। चक्षुः।
बहुऽत्रा। जीवतः। मनः॥२॥

यदाशसा निःशसाभिशसा-
परिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृता-
न्यजुष्टान्यारे अस्मदधातु॥३॥

यत्। आऽशसा। निःऽशसा।
अभिऽशसा।
उपऽआरिम। जाग्रतः। यत्।
स्वपन्तः।
अग्निः। विश्वानि। अप।
दुःऽकृतानि।
अजुष्टानि। आरे। अस्मत्। दधातु॥३॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



यदिन्द्र ब्रह्मणस्पते-
भिद्रोह चरामसि
प्रचेता न आङ्गिरसो
द्विषतां पात्वंहसः ॥४॥

यत्।इन्द्र।ब्रह्मणः।पते।
अभिऽद्रोह्म।चरामसि।
प्रऽचेताः।नः।आङ्गिरसः।
द्विषताम्।पातु।अंहसः॥४॥

अजैष्माद्यासनाम चा-
ऽमूमानागसो वयम् ।
जागृत्स्वप्नः सङ्कल्पः पापो
य द्विष्मस्त स ऋच्छतु
यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ॥५॥

अजैष्म।अद्य।असनाम।च।
अमूम।अनागसः।वयम्।
जागृतऽस्वप्नः।सम्ऽकल्पः।पापः।
यम्।द्विष्मः।तम्।सः।ऋच्छतु।
यः।नः।द्वेष्टि।तम्।ऋच्छतु॥५॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# परमात्मा (यजुः ३२)

स्वयम्भु ब्रह्म। परमात्मा। अनुष्टुप्।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायु-
स्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः
स प्रजापतिः ॥१॥

तत्। एव। अग्निः। तत्। आदित्यः।
तत्। वायुः।
तत्। ऊं इत्यूँ। चन्द्रमाः।
तत्। एव। शुक्रम्। तत्। ब्रह्म। ताः। आपः।
सः। प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः॥१॥

सर्वे निमेषा जज्ञिरे
विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं
न मध्ये परिजग्रभत्॥२॥

सर्वे। निमेषाऽइति निऽमेषाः।
जज्ञिरे।
विद्युताऽइति विऽद्युतः। पुरुषात्।
अधि।
न। एनम्। ऊर्ध्वम्। न। तिर्यञ्चम्।
न। मध्ये। परि। जग्रभत्॥२॥

न तस्य प्रतिमा अस्ति
यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा
मा हिꣳसीदित्येषा यस्मान्न
जात इत्येषः ॥३॥

न। तस्य। प्रतिमेति प्रतिऽमा। अस्ति।
यस्य। नाम। महत्। यशः।
हिरण्यगर्भऽइति हिरण्यऽगर्भः।
इति। एषः। मा।
मा। हिꣳसीत्। इति। एषा।
यस्मात्। न। जातः। इति। एषः॥३॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः
पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ।।४।।

एषः । ह । देवः । प्रदिश इति
प्रऽदिशः । अनु । सर्वाः ।
पूर्वः । ह । जातः । सः । उ इत्यु ।
गर्भे । अन्त रित्यन्तः ।
सः । एव । जातः । सः । जनिष्यमाणः ।
प्रत्यङ् । जनाः । तिष्ठति । सर्वतोमुख
इति सर्वतः ऽमुखः ।।४।।

यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव
य आबभूव भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणः-
स्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ।।५।।

यस्मात् । जातम् । न । पुरा । किम् ।
चन । एव ।
यः । आबभूवेत्याऽऽबभूव । भुवनानि ।
विश्वा ।
प्रजापतिरिति प्रजाऽपतिः ।
प्रजया । सꣳरराण इति ।
सम्ऽरराणः ।
त्रीणि । ज्योतींषि । सचते । सः ।
षोडशी ।।५।।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा
येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।६।।

येन । द्यौः । उग्रा । पृथिवी । च । दृढा ।
येन । स्वरिति स्वः । स्तभितम् ।
येन । नाकः ।
यः । अन्तरिक्षे । रजसः । विमान इति
विऽमानः ।
कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ।।६।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection.

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने
अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।
आपो ह यद्बृहतीर्विश्चदापः ।।७।।

यम्। क्रन्दसी इति क्रन्दसी। अवसा।
तस्तभाने इति तस्तभाने।
अभि। ऐक्षेताम्। मनसा। रेजमाने इति
रेजमाने।
यत्र। अधि। सूरः। उदित इत्युत्-
इतः। विभाति इति विभाति।
कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम।
आपः। ह। यत्। बृहतीः। यः।
चित्। आपः।।७।।

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सत्
यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्
तस्मिन्निदꣳ सं च वि चैति
सर्वमꣳस ओतः प्रोतश्च विभूः
प्रजासु ।।८।।

वेनः। तत्। पश्यत्। निहितमिति
निऽहितम्। गुहा।
सत्। यत्र। विश्वम्। भवति। एक-
नीडमित्येकऽनीडम्।
तस्मिन्। इदम्। सम्। च। वि। च।
एति।
सर्वम्। सः। ओतऽइत्याऽउतः।
प्रोतऽइति प्रऽउतः। च। विभूरिति
विऽभूः। प्रजास्विति प्रऽजासु।।८।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

प्रतद्वोचेदमृतं नु विद्वान्
गन्धर्वो धाम विभृतं गुहासत् ।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य
यस्तानि वेद स पितुः
पिताऽसत्।।९।।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशाना-
स्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त।।१०।।

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्
परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्म-
नाऽऽत्मानमभि स विवेश।।११।।

प्र।तत्।वोचेत्।अमृतम्।नु।
विद्वान्।
गन्धर्वः।धामं।विभृतमिति विऽ-
भृतम्।गुहा।सत्।
त्रीणि।पदानि।निहितेति
निऽहिता।गुहा।अस्य।
यः।तानि।वेद।सः।पितुः।
पिता।असत्।।९।।

सः।नः।बन्धुः।जनिता।सः।
विधातेति विऽधाता।
धामानि।वेद।भुवनानि।विश्वा।
यत्र।देवाः।अमृतम्।आनशानाः।
तृतीये।धामन्।अध्यैरयन्तेत्यधि ऽ
ऐरयन्त।।१०।।
परीत्येति परि ऽइत्य।भूतानि।
परीत्येति परि ऽइत्य।लोकान्।
परीत्येति परि ऽइत्य।सर्वाः।
प्रदिश ऽइति प्र ऽदिशः।दिशः।च।
उपस्थायेत्युप ऽस्थाय।प्रथमजामि-
तिप्रथम ऽजाम्।ऋतस्य।आत्मना।
आत्मानम्।अभि।सम्।विवेश।।११।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा

परि लोकान् परि दिशः परि स्वः।

ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य

तदपश्यत्तदभवत्तदासीत्।।१२।।

सदसस्पतिमद्भुतं
प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषꣳ
स्वाहा।।१३।।

या मेधा देवगणाः

पितरश्चोपासते।

तया मामद्य मेधयाऽग्ने

मेधाविनं कुरु स्वाहा।।१४।।

परि।द्यावापृथिवी ऽइति द्यावा-
पृथिवी।सद्यः।इत्वा।

परि।लोकान्।परि।दिशः।परि।
स्वरितिस्वः।

ऋतस्य।तन्तुम्।विततमितिविऽतं
तम्।विचृत्यैतिं विऽचृत्य।

तत्।अपश्यत्।तत्।अभवत्।तत्।
आसीत्।।१२।।

सदसः।पतिम्।अद्भुतम्।
प्रियम्।इन्द्रस्य।काम्यम्।
सनिम्।मेधाम्।अयासिषम्।
स्वाहा।।१३।।

याम्।मेधाम्।देवगणा इतिं
देवऽगणाः।

पितरः।च।उपासतऽइत्युपऽआसते।

तया।माम्।अद्य।मेधया।अग्ने।
मेधाविनम्।कुरु।स्वाहा।।१४।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


मेधां मे वरुणो ददातु
मेधामग्निः प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च
मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ।।१५।।

मेधाम्। मे। वरुणः। ददातु।
मेधाम्।
अग्निः। प्रजापतिरिति प्रजा ऽ
पतिः।
मेधाम्। इन्द्रः। च। वायुः। च।
मेधाम्। धाता। ददातु। मे। स्वाहा। ।१५।।

हृदं मे ब्रध्नं च कात्रं
चोमे श्रियमश्नुताम् ।
मयि देवा दधतु
श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ।।१६।।

हृदम्। मे। ब्रध्नम्। च। कात्रम्।
च। उ। मे ऽइत्युमे। श्रियम्। अश्नुताम्।
मयि। देवाः। दधतु।
श्रियम्। उत्तमामित्युत ऽतमाम्। तस्यै।
ते। स्वाहा। ।१६।।

::::

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

## इन्द्र (सामवेद: उ०प्र० ५(२),अ०२३(३))

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र:।इन्द्र:।अनुष्टुप्।

| | |
|---|---|
| गायन्ति त्वा गायत्रिणो | गायन्ति।त्वा।गायत्रिण:। |
| चर्त्यर्कमर्किण:। | अर्चन्ति।अर्कम्।अर्किण:। |
| ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत | ब्रह्माण:।त्वा।शतक्रतो इति शत क्रतो। |
| उद्वंशमिव येमिरे ।।१।। | उत्।वंशम् इव।येमिरे।।१।। |
| यत्सानो: सान्वारुहो | यत्।सानो:।सानुम्।आ।अरुह:। |
| भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्। | भूरि।अस्पष्ट।कर्त्वम्। |
| तदिन्द्रो अर्थं चेतति | तत्।इन्द्र:।अर्थम्।चेतति। |
| यूथेन वृष्णिरेजति ।।२।। | यूथेन।वृष्ण:।एजति।।२।। |
| युक्ष्वा हि केशिना हरी | युक्ष्व।हि।केशिना।हरी इति। |
| वृषणा कक्ष्यप्रा। | वृषणा।कक्ष्य प्रा। |
| अथो न इन्द्र सोमपा | अथ।न:।इन्द्र।सोम पा:। |
| गिरामुपश्रुतिं चर ।।३।। | गिराम्।उप श्रुतिम्।चर।।३।। |

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# वरुणः (अथर्व० ४.१६)

ब्रह्मा। वरुणः, सत्यानृतवीक्षणम्। १ अनुष्टुप्, २-४,६ त्रिष्टुप्, ५ भुरिक् त्रिष्टुप, ७ जगती, ८ त्रिपान्महाबृहती, ९ विराण्नाम त्रिपाद् गायत्री।

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्ति-
कादिव पश्यति।
+यस्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं
देवा इदं विदुः ॥१॥

बृहन्। एषाम्। अधिऽस्थाता।
अन्तिकात्ऽइव। पश्यति।
यः। तायत्। मन्यते। चरन्। सर्वम्।
देवाः। इदम्। विदुः॥१॥

+ पा० मे० यस्तायन्मन्यते

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति
यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।
द्वौ सन्निषद्य यन्मन्त्रयेते
राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः॥२॥

यः। तिष्ठति। चरति। यः।
च। वञ्चति।
यः। निऽलायम्। चरति। यः।
प्रऽतङ्कम्।
द्वौ। सम्ऽनिषद्य। यत्। मन्त्रयेते
इति।
राजा। तत्। वेद। वरुणः।
तृतीयः॥२॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ

उत। इयम्। भूमिः। वरुणस्य।
राज्ञः।

उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी

उत। असौ। द्यौः। बृहती। दूरेऽअन्ता।
उतो इति। समुद्रौ। वरुणस्य।
कुक्षी इति।

उतास्मिन्नल्पे उदके निलीनः।।३।।

उत। अस्मिन्। अल्पे। उदके। नि
लीनः।।३।।

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्ता-

उत। यः। द्याम्। अतिऽसर्पात्।
परस्तात्

न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।
दिवः स्पशः प्र चरन्तीदमस्य

नः। सः। मुच्यातै। वरुणस्य। राज्ञः।
दिवः। स्पशः। प्र। चरन्ति। इदम्।
अस्य।

सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम्।।४।।

सहस्रऽअक्षाः। अति। पश्यन्ति।
भूमिम्।।४।।

सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे
यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात् ।

सर्वम्। तत्। राजा। वरुणः। वि। चष्टे।
यत्। अन्तरा। रोदसी इति। यत्।
परस्तात्।

सहस्याता अस्य निमिषो जनाना-

सम्ऽस्याताः। अस्य। निऽमिषः।
जनानाम्।

मृक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति
तानि ।।५।।

मृक्षान्ऽइव। श्वऽघ्नी। नि। मिनोति।
तानि ।।५।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त
त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः।

क्षिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं
यः सत्यवाघति तं सृजन्तु॥६॥

शतेन पाशैरभि धेहि वरुणै-
नं मा ते मोच्यनृतावाङ् नृचक्षाः।

आस्तां जाल्म उदरं अशयित्वा

कोशइवावन्यः परिकृत्यमानः॥७॥

पा० भे० असयित्वा

यः समाभ्यो वरुणो यो
व्याभ्यो यः सन्देश्यो वरुणो

यो विदेश्यः।
यो देवो वरुणो यश्च मानुषः॥८॥

ये।ते।पाशाः।वरुण।सप्तऽसप्त।
त्रेधा।तिष्ठन्ति।विऽसिताः।
रुशन्तः।
क्षिनन्तु।सर्वे।अनृतम्।वदन्तम्।
यः।सत्यऽवादी।अति।तम्।
सृजन्तु॥६॥

शतेन।पाशैः।अभि।धेहि।वरुण।
एनम्।मा।ते।मोचि।अनृतऽवाक्।
नृऽचक्षाः।
आस्ताम्।जाल्मः।उदरम्।अशयित्वा।
कोशःऽइव।अन्यः।परिऽकृत्यमानः॥७॥

यः।समुऽआभ्यः।वरुणः।यः।
विऽआभ्यः।यः।सन्ऽदेश्यः।
वरुणः।
यः।विऽदेश्यः।
यः।देवः।वरुणः।यः।च।
मानुषः॥८॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

तैस्त्वा सर्वैरभिष्यामि
पार्श्वसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र ।

तानु ते सर्वाननुसन्दिशामि ॥६॥

तैः।त्वा।सर्वैः।अभि।स्याामि।
पार्श्वः।असौ।आमुष्यायण।
अमुष्याः।पुत्र।
तान्।उ इति।ते।सर्वान्।
अनु।सन्दिशामि॥६॥

-o-o-o-o-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# भूमिका

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥
—सायणाचार्यः

## श्रीवेदमाहात्म्यम्

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥
ऋ० १०.९०.९

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यो ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ।
यजुः० २६.२

यस्माद्ऋचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकपन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।
अथर्व० १०.७.२०

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥
अथर्व० १९.७१.१

एवं वा अरे महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः ।
श० ब्रा० १४.५.४.१०

तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेऋ ग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ।
श० ब्रा० ११.५.२.३

तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् ।
वैशेषिकदर्शनम् १.१.३

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः । तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः ।
निरुक्तम् १.२०

पुरुषविद्यानित्यत्वात्कर्मसम्पत्तिसंबन्धो वेदे ।
नि० १.२

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ।
मनु० २.१३

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् ।
मनु० २.६

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥
मनु० २.१६८

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥
मनु० १२.१०६

## मन्त्राणामृषिः परमात्मा

बुद्धिदेवतात्वेन हिरण्यगर्भः क्षेत्रज्ञो व्यवस्थितः सर्वभूतानां कर्मविपाकानुरूप्येण यमर्थं शब्दं वा दर्शयति तमितरो विशिष्टकर्मकारी क्षेत्रज्ञो बुद्धिस्थः पश्यति । तत्रैव सति वसिष्ठादिर्मन्त्रदृक् क्षेत्रज्ञस्तेनैवोपदर्शितं मन्त्रं पश्यतीत्युभयमापद्यते ।
दुर्गाचार्य, नि० १.४

## वेदेऽतिनिगूढार्थाः सन्ति

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इत् तद् विदुस्त इमे समासते ॥
ऋ० १.१६४. ३९

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद् ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ।
अत्राह त्वं विजहुर्वेद्याभिरोह ब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ॥
ऋ० १०.७१.८

## अत्र दुर्गाचार्यः

यस्माद् वेदो विधिप्रतिषेधप्रसवनियमपरिसंख्यानपुनर्वचनपरार्थवादगहनोऽर्थवादाश्च यथाश्रुतप्रमाणग्राहिणो विदुषोऽपि परमभ्रान्तिहेतवस्तस्माद् परमदुर्विज्ञानवेदनीयत्वाद् वेदवाक्यानामिमां विद्यामन्तरेण सम्यगर्थावगमो न भवति ।
नि० १३.१३

सोमं मन्यते पपिवान् यत् संषिष्यन्त्योषधिम् ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥

ऋ० १०.८५.३

मन्त्रा मननात् छन्दांसि छादनात् ।

नि० ७.१२

विज्ञायते हि । परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः (श. ब्रा० १४.५.६.२) । सर्वत्रैवं देवताभिधेयेषु । अभिधानत एव देवतात्मनस्तत्त्वमन्तर्णीय व्यवधायात्मनोऽविदुषां परोक्षीकृत्य नित्यं वर्तते । तां तु विद्वांसस्तदभिधानव्युत्पत्तिद्वारेण विवृत्य दैवेन चक्षुषा मनसोपजातदिव्यदृष्टयो तादृङ्नाव्यं प्रतिपद्यन्त इति तदभिधानव्युत्पत्तौ कृत्स्नः पुरुषार्थ आहितः ।

दुर्गाचार्यः, नि० १०.८

इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरेदिति ॥

—महाभारतम्

## वेदप्रयोजनम्

सर्वकामप्राप्त्यादिर्मोक्षान्तः पुरुषार्थो वक्तव्य इति वेदः प्रवृत्तः ।

दुर्गाचार्यः—निरुक्तभाष्यभूमिका

अर्थं वाचः पुष्पफलमाह । याज्ञदैवते पुष्पफले देवताध्यात्मे वा ।

नि० १.२०

## वेदव्याख्या

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाच-
मुत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे
जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥

ऋ० १०.७१.४

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अधेन्वा चरति मायया एष वाचं शुश्रुवां अफलामपुष्पाम् ॥

ऋ. १०.७१.५

स्थाणुरयं भारहारः किलाभू-
दधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ।
योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते
नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥ नि० १.१८

## वेदे रूपकाद्यलङ्कारैरपि बहु कथ्यते

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥

ऋ० १.१६४.२०

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महो देवो मर्त्यां आविवेश ॥

ऋ० ४.५८.३

एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश
स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे ।
तं पाकेन मनसापश्यमन्ति-
स्तंमाता रेळिह स उ रेळिह मातरम् ॥

ऋ० १०.११४.४

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥

ऋ० ७.१०४.२२

(उलूकः=मोहः । शुशुलूकः (वृकः)=क्रोधः । श्वा=ईर्ष्या । कोकः=कामः । सुपर्णः=मदः । गृध्रः=लोभः ।
—योगी)

अपां ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते । तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति (उपमार्थेन=रूपककल्पनया—दुर्गाचार्यः) ।

नि० २.१६

विज्ञायते च तस्मादाहुर्नैतदस्ति यदैवासुरमिति ।

श. ब्रा.—११.१.६.९

सूर्यमस्या (उषसः) वत्समाह साहचर्याद् रसहरणाद् वा ।

नि० २.२०

एतस्मिन् पुरूरवसि जायमाने वर्षकर्मण्यात्मानं प्रतिलभमाने प्रावृट्काले । 'कर्मजन्मानः (नि. ७. ४) इति ह्युक्तम् ।

दुर्गाचार्यः, नि० १०.४७

मध्यम : पुरूरवाः वित्त्वपक्षे ब्रवीति । आत्मनो ज्योतिषः शब्दस्य च विभागमिव कृत्वा ।''' अन्तरिक्षलोकस्य अधिपत्नी योर्वशी (विद्युत्) सा यदैवोदकानि हरन्ती मेघेभ्यः पतन्ती भृशं स्वयं विद्योतते ।

दुर्गाचार्यः, नि० ११.३६

अहोरात्रे मित्रावरुणौ । तयोर्या सन्धिवेला तस्यां

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



प्रथममवश्यायरसानुप्रदानसम्बन्धात् तां मध्यमामदितिमभिप्रेत्योच्यते ।...सन्धिवेलानन्तरमादित्यस्योदयो जन्म । तदेवास्य व्रतं कर्म । तदुक्तम् । 'कर्मजन्मानः' (नि. ७.४)।

दुर्गाचार्यः, नि० ११.२३

सरमा देवशुनीत्यैतिहासिकपक्षेण । माध्यमिका वाङ् नैरुक्तपक्षेण ।

दु०, नि० ११.२४

वाक्पक्षे तु चिरकालीनवृष्ट्युपरमे कदाचिदभिनवमेघसंप्लवे सहसैव स्तनयित्नुमुपश्रुत्य कुत इयं माध्यमिका वाक् चिरेणागतेति विस्मितस्तमसूयन्निव ब्रवीति—'किमिच्छन्ती सरमा' इति ।...वाग्वै सरमा इति हि विज्ञायते (मैत्रा० सं० ४.६.४) ।

दु०, नि० ११.२५

त्रित्वपक्षे तु माध्यमिको यमो माध्यमिकां वाचमुषसमात्मनः प्रविभक्तामिव कृत्वोभयस्थानां तां ब्रवीति ।

दु०, नि० ११.३४

'अधोरामः सावित्रः' इति पशुसमाम्नाये विज्ञायते । 'कस्मात्' गुणसामान्यादिति' । 'अधस्तात् तद्वेलायां तमो भवति' । उपरिष्टाच्च ज्योतिः । शुक्लं तदा दिवि भवति कीर्णरश्मित्वात् तस्याः । अधस्तात् तु भूम्यास्तदा तमो भवति । एतस्मात् कालदेवतागुणसामान्यात् पशुरपि तथारूप एव भवति सावित्रः ।

दु०, नि० १२.१४

स वरुणाख्यो मध्यमः पिता पाता रक्षिता

दु०, नि० १२.३२

सप्त ऋषीणानीन्द्रियाण्येभ्यः पर आत्मा तान्येतान्यस्मिन्नेकं भवन्तीत्यात्मगतिमाचष्टे ।

नि० १०.२६

तत्र गुणवादेन शब्दार्थो योजनीयः । यथा स्तेनाः प्रच्छन्नरूपा एवं मनोऽपीति प्रच्छन्नरूपत्वमत्र गुणः ।

सायणाचार्यः (ऋग्वेदभाष्यभूमिका)

## वेद इतिहासो नास्ति

वेद इतिहासो नास्ति । यास्कदुर्गसायणप्रभृतिविद्वांस इत्येव मतमनुमोदन्ते ।

'अथ को वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः । त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः ।'

निरुक्तम् २.१६

इति हैवमासीदिति यः कथ्यते स इतिहासः ।

(अर्थात् वेदनिगूढभावविशदीकरणाय काचित् कथा कथ्यते—योगी)

दु, नि० २.१०

'आर्भवाणां मन्त्राणां स्वभावप्रदर्शनार्थमाह' (काल्पनिककथाम्)

दुर्गाचार्यः, नि. ११.१६

'इत्यृषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता (ऋषिर्दृष्टार्थो भावस्पष्टीकरणाय लौकिकमुदाहरणं प्रस्तौति)

नि० १०.४६

'यः कश्चिदाध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिको वार्थ आख्यायते दिष्ट्युदितार्थविभासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते । स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो नित्यमविवक्षितस्वार्थस्तदर्थप्रतिपत्तॄणामुपदेशपरत्वात् ।

दु०, नि० १०.२६

ऐतिहासिककथाऽपि रूपकमात्रमेव—

'ऋजुरितिहासार्थः । यथा त्वाष्ट्री सरण्यूर्विवस्वतोढा सा च तस्मान्ननाश ।'

(उषा सूर्येणोढा, सा च तस्मात् पलायिता)

दु०, नि० १२.२०

ऐतिहासिकपक्षाभिप्रायोऽयमर्थवादः ।

दु०, नि० १२.१४

दुर्गाचार्य इतिहासपक्षमुपहसति—

'नैरुक्तपक्षे ज्योत्स्नां सोमाय ददाति । यदुक्तम् । "आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति" (नि० २.६) इति ।... उषसं वा मध्यस्थानाय प्रजापतये ददाति । केचित्त्वैतिहासिकपक्षे इच्छन्ति । तेषामितिहासं शृणु कथमेतदिति ।

दु०, नि० १२.८

'बबरः प्रावाहणिरकामयत' (तै० सं० ७.१.१०.२) ...न तु तत्रानित्यो बबराख्यः कश्चित्पुरुषो विवक्षितः । किन्तु बबर इति शब्दानुकृतिः । तथेति सति बबरेति शब्दं कुर्वन् वायुरित्यभिधीयते । स च प्रावाहणिः । प्रकर्षेण वहनशीलः । एवमन्यत्राप्यूहनीयम् ।'

सायणाचार्यः—ऋग्वेदभाष्यभूमिका

'अदितिः' इत्यनवगतम् । 'अदीना' इत्यवगमः । 'देवमाता' अभिधेयैतिहासिकपक्षेण । नैरुक्तपक्षेण पुनर्यान्येतस्यामृचि वक्ष्यमाणायां द्यौरित्येवमादीनि श्रूयन्ते एतान्येवादितिशब्देनोच्यन्ते ।'

दु०, नि० ४.२२

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


यास्क आर्ष्टिषेणशब्दस्य द्विधा निरुक्तिं करोति । अनेनैव सिध्यति यत्स इतिहासं न स्वीकरोति ।

'आर्ष्टिषेण ऋष्टिषेणस्य पुत्र इषितसेनस्येति वा ।'

नि० २.११

अत्र दुर्गाचार्यः कथयति

'नैरुक्तपक्षे ऋष्टिषेणो मध्यमस्तदपत्यमग्निः पार्थिव आर्ष्टिषेणो देवापिः ।' (एवम् ऋष्टिषेणः=इन्द्रः; देवापिः =अग्निः—योगी)

नि० २.१२

## मन्त्रस्यानेकेऽर्थाः

बहुषु वेदमन्त्रेषु प्रत्येकं मन्त्रमनेके गूढार्थाः सन्ति । तेषामाविष्कारो मनीषिभिः कार्यः, तथा चाग्नीन्द्रसूर्यविष्णुबृहस्पतिप्रभृतिदेवान् उद्दिश्य पठितेषु मन्त्रेषु त्रयस्ततोऽप्यधिका वा अर्था भवन्ति । तेषु मुख्याः—

१. आधिदैविकः (प्रकृतिसंबन्धी) ।
२. आध्यात्मिकः (मनुष्यसंबन्धी) ।
३. आधिभौतिकः (प्राणि-समाज-संबन्धी) ।
४. अधियज्ञीयः (यज्ञसंबन्धी) ।

'विभवो ह्यनुपक्षीणशक्तयो मन्त्रशब्दाः । प्रदर्शनमात्रमत्र क्रियते । । सर्वथैव मन्त्रशब्दानां योऽर्थ उपपद्यते स योज्यो यथासंभवम् इति ।'

दु०, नि० २.२४

'अनुपक्षीणशक्तयो विभवो हि वेदशब्दा यथाप्रज्ञं पुरुषाणामर्थाभिधानेषु विपरिणममानाः सर्वतोमुखा अनेकार्थान् ब्रुवन्तीत्येतदेतेन प्रदर्शितं भवति ।

दु०, नि० १.२०

'क्वचिच्चाध्यात्मिकाधिदैवाधियज्ञोपदर्शनार्थम् । तस्मादेतेषु यावन्तोऽर्था उपपद्येरन्नधिदैवाध्यात्माधियज्ञाश्रयाः सर्व एव ते योज्याः । नात्रापराधोऽस्ति ।'

दु०, नि० २.८

'मन्त्रब्राह्मणार्थपरिज्ञानबद्धश्चाध्यात्माधिदैवाधिभूतपरिज्ञानद्वारेण धर्मार्थकाममोक्षाख्याखिलपुरुषार्थः ।'

दु० निरुक्तभाष्यभूमिका

अतो ह्यध्यात्माधिदैवाधियज्ञाभिधायिनां मन्त्राणामर्थाः परिज्ञायन्ते ।

दु०, नि० १.१७

'एवमेषु निगमेषु शब्दार्थसंकरोऽनेकप्रकार उपेक्ष्यः । दृष्टानुविधानाच्छन्दसि यथासम्भवमनुविधेयः ।'

दु० नि० ४.३

'मन्त्रार्थपरिज्ञानादेव ह्यग्नेरध्यात्माधिदैवाधिभूताधियज्ञेष्ववस्थानं याथात्म्यतो दृश्यते ।

दु० नि० ४.१९

एवं सर्वत्र संभवो यावद्विषयो मन्त्राणां योज्यः ।

दु० नि० १०-२६

आध्यात्मिकोऽर्थः श्रेयान्

'आत्मयाजी श्रेया३न् देवयाजी३'

श० ब्रा० ११.२.२.१३

'अस्या निर्वचनत्रयमधियज्ञाधिदैवाध्यात्मविकल्पेन ॐकार आदित्य आत्मा चेति ।'

दु०, नि० १३.१०

यास्काचार्यो 'येन पावक चक्षसेत्यादि वैदिकमन्त्रं (ऋ० १.५०.६) निरुक्ते (१२. २२, २३, २४, २५) चतुरो वारान् उद्धृत्य चतुरः पृथगर्थान् करोति ।'

'अथाध्यात्मं सुपतनानीन्द्रियाणि । ... ईश्वरः सर्वेषामिन्द्रियाणां गोपायितात्मा ।'

नि० ३.१२

अध्यात्मेऽपि हृद्याकाशाद्यानीन्द्रियाणि प्रसर्पन्ति त एव रश्मयः ।

दु० नि० ३.१२

## देवाः के ?

'एतेऽपि दानादियोगाद्देवा उच्यन्ते ।'

दु० नि० २.२२

'इन्द्रियाण्यत्र देवा उच्यन्ते ।

नि० १३.११

अत्र दुर्गाचार्यः—

'तानि हि विषयेषु द्योतन्त इति देवाः ।'

## इन्द्रः

इन्द्रः=जीवात्मा

इन्द्रियशब्दस्य व्युत्पत्तिं कुर्वन् दुर्गाचार्यः कथयति—

'इन्द्र आत्मा स येन ईयते लिङ्ग्यतेऽनुमीयते वास्त्यसावात्मा कर्ता यस्येदं करणं नाकर्तृकं करणमिति ।

दु० नि० १.२

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



'अधिदेवताभावेन प्राण इन्द्रो व्यवस्थितः ।'

दु० नि० ५.२५

**इन्द्रः=क्षत्रियः; अग्निः=ब्राह्मणः**

'यदिन्द्रश्चाग्निश्च भूयिष्ठभाजौ देवतानां तस्माद् ब्राह्मणश्च राजा च भूयिष्ठभाजौ मनुष्याणाम् ।'

मैत्रा० सं. ४.७.८

**इन्द्रः=मध्यमः प्राणः**

'असुनीतिः' इत्येतद्देवतापदम् । स पुनरयमिन्द्रो मध्यमः प्राणः । स पुनर्यदेतस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथेतरान् प्राणान् 'असून्' अन्यत्र नयति ।

दु० नि० १०.३९

**सोमः**

सोमस्य प्रतीकात्मकोऽर्थो बहुलः, ओषधिपरकोऽर्थोऽत्यल्पः ।

'सोमः सुनोतेर्यदेनमभिषुण्वन्ति । बहुलमस्य नैघण्टुकं वृत्तमाश्चर्यमिव प्राधान्येन ।'

नि० ११.२

श्रीअरविन्दो वेदमन्त्राणां निगूढान् प्रतीकात्मकान् आध्यात्मिकान् वाऽर्थान् स्वीकरोति—

'...परन्तु तेषाम् (बाह्यार्थानाम्) अन्तः सदैव वेदानां सत्यं गूढं च रहस्यमस्ति । गूढशब्दाः ('निण्या वचांसि') ये शुद्धीकृतात्मभ्यः प्रबुद्धीकृतबुद्धिभ्यश्च मनुष्येभ्य उक्ता अभूवन्' ।[1]

—वेदरहस्यम्

**वेदव्याकरणम्**

**सुपां सुलुक्—पा० ७.१.३९**

वेदकाव्य इयं पद्धतिर्ऋषिभिः स्वीकृता यदेकविंशतिविभक्तीनां स्थाने 'सु' (प्रथमैकवचनम्) इत्यपि कर्तुं शक्यते, अर्थात् 'रामः' इत्यस्यार्थः सर्वविभक्तिषु सर्ववचनेषु च कर्तुं शक्यते—यथा 'रामेण', 'रामेभ्यः', 'रामात्', 'रामयोः', तथा 'रामे' इत्याद्यर्थेषु । एतदतिरिक्तं शब्दात् सर्वासां विभक्तीनां लुगपि कर्तुं शक्यते, अर्थात् 'राम' इत्यस्य (अर्थात् विभक्तिरहितस्य प्रातिपदिकस्य) अर्थः पूर्ववत् सर्वविभक्तिषु सर्वेषु च वचनेषु कर्तुं शक्यते ।

एवं पूर्वसवर्णाच्छेयाडित्यादीन्यपि कर्तुं शक्यन्ते, तत्रापि यद् रूपं भविष्यति, तदेकविंशतिविभक्तीनां प्रतिनिधित्वं करिष्यति ।

एवं प्रतीयते काव्यसौष्ठवं ध्वनिसौन्दर्यञ्चाभिलक्ष्य वेदानामृषिभिरयमध्वा स्वीकृतः । यदि कस्मिंश्चिद् वाक्ये कुत्रचिदेवं क्रियतेऽपि, तदार्थावबोधे न किञ्चिदपि काठिन्यमस्ति (अर्थस्तु प्रकरणवशाज्ज्ञायत एव) तथा च ऋषीणां काव्यरचना मनोरमतरा जायते ।

एवं कदाचिद् वेदेषु 'रामः' 'राम' 'रामा', 'रामया' इतिसदृशानि रूपाणि भविष्यन्ति, तत्रार्थानुसारं विभक्तिसन्नमनं कर्तव्यम् ।

कालक्रमेण च भाषासु किंचिद् विभक्तिसंनमनं भवति । यथा—

हिन्दी—मैं रात को खाऊँगा ।

संस्कृतम्—अहं रात्रौ भक्षयिष्यामि ।

आंग्लभाषा—I shall eat at night.

अत्र हिन्दीभाषायां प्रयुक्तायां द्वितीयाविभक्त्याः स्थाने संस्कृताङ्ग्लभाषयोः सप्तमी । तथा संस्कृताङ्ग्लभाषासप्तमीविभक्तिस्थाने हिन्दीभाषायां द्वितीया विभक्तिः । इदमपि विभक्तिसन्नमनम् । परं यदैवं क्रियेत, इदं निर्धार्येत यत् तस्यां तस्यां भाषायामेतादृशं संनमनं जातम् । तस्य तस्य परिस्थितिविशेषस्य नियमविशेषो निश्चेतव्यः ।

उपरिलिखितं सर्वं लक्ष्यीकृत्यैव हि यास्कः—

'यथार्थं विभक्तीः संनमेयत्' ।

एतदतिरिक्तं वेदव्याकरणस्यान्यान्यपि कानिचिद्वैशिष्ट्यानि सन्ति, तानि वेदव्याकरणग्रन्थेषु सविस्तरमध्येतव्यानि स्वाध्यायनिरतचित्तैर्मनीषिभिः ।

**देवा देवताश्च**

अत्र सत्यभूषणयोगिन इदं मतं यदग्नीन्द्रसवितृविष्णुप्रभृतयः प्राकृतिकशक्तयो देवाः । इमे च देवा आधिदैविकार्थेन ( प्राकृतिकार्थेन ) सहाधिभौतिकाध्यात्मिकार्थानभिदधति ।

---

१. ...but behind them there is always the true and still hidden secret of the वेद,—the secret words, निण्या वचांसि, which were spoken for the purified in soul and the awakened in knowledge.

On the Vedas (Ed. 1961) Page 7

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


मन्त्रेषु सूक्तेषु च यस्य विषयस्य वर्णनं स विषयो देवतेति कथ्यते। अत एताद्दृश्यो देवता अपि सन्ति— 'ईर्ष्यानाशनम्', 'भाववृत्तम्' इत्यादि। अग्नीन्द्रप्रभृतयोऽपि यदा मन्त्रेषु वर्ण्यन्ते तदा ते देवतेत्यभिधानं भजन्ते।

एवं प्रतीयते यद् यतो वेदेषु प्रायो देवानामेव वर्णनमतः शनैः शनैर्देवदेवताशब्दौ पर्यायवाचिनौ जातौ। पाणिनिरपि देवशब्दात् स्वार्थे 'तल्' इति प्रत्ययं कृत्वा देवताशब्दसिद्धिं करोति।

यदि सत्यभूषणयोगिमतं स्वीक्रियेत तदा निरुक्ते स्थापितोऽयं पूर्वपक्षः 'अपि ह्यदेवता देवतावत् स्तूयन्ते' इति स्वसत्तामेव न लभेत।

## वेदानामृषयः

हरिशरणसिद्धान्तालङ्कारस्येदं मतं यद् यैर्महापुरुषैस्तत्तत्सूक्तानां शिक्षा सर्वप्रथमं स्वजीवने क्रियात्मकरूपेण प्रदर्शिता, तत्तत्सूक्तस्य स स महापुरुष ऋषिः। हिन्दीभाषया लिखिते 'ऋग्वेद के ऋषि' इत्याख्ये पुस्तके स प्रत्येकमृषेर्नाम्नो व्युत्पत्तिनिर्वचनादिपुरस्सरं व्याख्यां प्रस्तौति।

मम (सत्यभूषणयोगिनः) मतमिदं यत् सूक्तस्य विषयो द्वित्रिशब्देषु संक्षेपेण कथितः। स शब्दस्तौ वा शब्दौ ते वा शब्दा ऋषिरिति नाम्ना कथ्यन्ते। तत्र हि सूक्तस्य सर्वोऽप्यर्थो द्रष्टुं (√ऋष् दर्शने) पार्यते।

## वेदार्थप्रकारः

आप्तप्रमाणम्। तर्कः। प्रकरणम्। प्रतिशब्दनिर्वचनम्। परम्परा।

'इत्ययं मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहोऽभ्यूहोऽपि श्रुतितोऽपि तर्कतः। न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः प्रकरणवश एव तु निर्वक्तव्याः। न ह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा। पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवतीत्युक्तं पुरस्तात्। मनुष्या वा ऋषिपूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन्। को न ऋषिर्भविष्यतीति। तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन् मन्त्रार्थचिन्ताऽभ्यूहमभ्यूहम्। तस्माद् यदेव किंचानूचानोऽभ्यूहत्यार्षं तद् भवति।'

नि० १३.१२

'अथ निर्वचनम्। तद् येषु पदेषु स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेनान्वितौ स्यातां तथा तानि निर्ब्रूयाद्। अथानन्वितेऽर्थेऽप्रादेशिके विकारेऽर्थनित्ये परोक्षेण कर्मवद् वृत्तिसामान्येन। अविद्यमाने सामान्येऽप्यक्षरवर्णसामान्यान्निर्ब्रूयात्। न त्वेव न निर्ब्रूयात्। न संस्कारमाद्रियेत, विषयवत्यो हि वृत्तयो भवन्ति। यथार्थं विभक्तीः संनमयेत्।'

नि० २.१

'धातुरुत्प्रेक्ष्यते। स च पुनः स्वरवर्णक्रियासामान्येन।

दु० नि० १.१०

...यावतामेव धातूनां लिङ्गं रूढिगतं भवेत्।
अर्थश्चाप्यभिधेयस्थस्तावद्भिर्गुणविग्रहः॥

बृ० दे० २.१०४

...तदभिधायिन्यपि च रूढिशब्दे निरुच्यमाने गमिर्हन्तिर्हरतिश्चाहंपूर्विकया संनिपत्य वदन्ति ममानुरूपं मयैतं निर्ब्रूहि मयैतं निर्ब्रूहीति।

दु० नि० १.१

## संक्षेपेण वेदस्योपनिषदां च प्रतिपाद्यम्

ज्ञानबलक्रिया ख्याता स्वाभाविकी परात्मनः।
आत्मनो हि तयैव स्याद् भुक्तिर्मुक्तिश्च शाश्वती॥१॥
अन्नं प्राणा मनो बुद्धिरानन्दश्चेति विग्रहाः।
आत्मनः पञ्च, वेदेभ्यस्तेषां भवति पूर्णता॥२॥
ऋग्वेदे निखिलं ज्ञानं बलमुग्रमथर्वणि।
क्रिया यजुःषु कल्याणी ह्यानन्दः साम्नि सोमदः॥३॥
ज्ञानमग्नौ तथेन्द्रे स्तो नव्ये भव्ये बलक्रिये।
सूर्ये हि सोमधाराऽस्ति दिव्यानन्दप्रदायिनी॥४॥
नरजीवनयात्रायाः सर्वा विज्ञप्तिसारणी।
भगवती श्रुतिर्लोके यशःश्रीपूर्णतामयी॥५॥
वेदेषु ह्यपरा विद्या वेदान्तेषु परा स्मृता।
अपरा भाषते वर्ण्यं परा मूका हि तिष्ठति॥६॥
वेदेषु वर्ण्यते वर्ण्यमवर्ण्यं को नु वर्णयेत्?
अतो वेदैः परा विद्या न वर्ण्यते न वर्ण्यते॥७॥
वेदान्तैर्वर्ण्यते नूनं परा सा, वर्णनं शृणु—
'न शक्यते वर्णयितुं वर्णयितुं न शक्यते॥८॥
नेति नेतीह भो ब्रूत वरं मूका हि तिष्ठत।
यो वर्णयेन्न जानाति, जानाति यो न वर्णयेत्'॥९॥
ज्ञानं वेदेषु वेदान्तविद्यायां ध्यानमीनिता।
योगिना बुद्धमेतावद् वेदवेदान्तविद्ययोः॥१०॥

—सत्यभूषण योगी

## कति देवताः? तिस्रः।

'तिस्र एव देवता' इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रो वाऽन्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः।

नि० ७.५

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



## कति देवताः ? एका।

'स न मन्येतायमेवाग्निरिति । अप्येते उत्तरे ज्योतिषी अग्नी उच्येते ।'

नि० ७.१६

एवमेकैव देवता=अग्निः

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु-
रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्य-
ग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

ऋ० १.१६४.४६

इमम् ऋग्वेदमन्त्रं पुरस्कृत्य सायणः कथयति—

'यद्यपीन्द्रादयस्तत्र तत्र हूयन्ते तथापि परमेश्वरस्यैवेन्द्रादिरूपेणावस्थानादविरोधः ।

(सायण—ऋग्वेदभाष्यभूमिका)

स्वामिदयानन्दोऽपि मन्त्रमिमं पुरस्कृत्येन्द्रादीनि सर्वाणि नामानि परमात्मनः सन्तीति कथयति ।

सायणदयानन्दयोरन्तरमिदं यत्सायण इन्द्रादीनि परमात्मनो रूपाणीति दयानन्दश्चेन्द्रादीनि परमात्मनो नामानीति कथयति ।

परन्तु यास्क इमं मन्त्रं पुरस्कृत्य कथयति यद् इन्द्रादीनि 'अग्ने'रेव नामानि रूपाणि वा सन्ति—

'इममेवाग्निं महान्तमात्मानमेकमात्मानं बहुधा मेधाविनो वदन्ति ।'

नि० ७.१८

अत्र भाष्ये दुर्गाचार्यः—

"इन्द्रं मित्रं वरुणम् इत्येतैरभिधानैः अग्निमाहुः सतत्त्वविदः ।"

अन्यत्र दुर्गाचार्यः—

"अविशिष्टं हि देवतात्वमग्नावेव सर्वदेवताभिवादात् । 'अग्निर्हि सर्वा देवताः' (काठ० सं० १०.१) इति हि विज्ञायते । 'अग्निर्वै देवानां भूयिष्ठभाक्' इति च ।"

दु० नि० ७.४

संभवतः प्रकृतौ मनुष्ये च तेजस्तत्त्वस्य सर्वानिशायित्वाद् 'अग्निः सर्वम्' इत्युक्तम् । परमात्माऽपि सर्वेषु देशेषु सर्वेषु च धर्मेषु 'ज्योतिर्मयः' इति स्वीकृतः । यथाह कविभर्तृहरिः—

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्त्तये ।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥

## मन्त्राणां त्रयोऽर्थाः

प्रतिपादितं हि पुरस्तान्मन्त्रेष्वर्थत्रयत्वम् । अग्नीन्द्रसूर्यविष्णुसवितृबृहस्पतिसोमप्रभृतिदेवान् उद्दिश्य कथितेषु मन्त्रेष्वेवार्थत्रयगवेषणा कार्या (येषु मन्त्रेषु देवा देवतारूपेण सन्ति, तत्रैवार्थत्रयगवेषणा कार्या ।)

अधः केषांचिद्देवानां त्रयोऽर्थाः (त्रीणि रूपाणि) प्रस्तूयन्ते[1]—क्रमश आधिदैविकाध्यात्मिकाधिभौतिकार्थाः—

अग्निः[2]—अग्निः । संकल्पशक्तिः । ब्राह्मणाः, नेतारः, मन्त्रिणः, प्रधानमन्त्री वा ।

इन्द्रः[3]—विद्युत्, वृष्टिदेवः । जीवात्मा । क्षत्रियाः, राजा, राष्ट्रपतिः, प्रधानसेनापतिर्वा ।

मरुतः—वृष्टिवाताः । इन्द्रियाणि प्राणा वा । सैनिकाः ।

विष्णुः[4]—अग्रे गच्छन् सूर्यः । उन्नतिभावना । समाजसुधारकाः ।

सविता[5]—अन्धकारमध्यादागच्छन् प्रकाशः । अन्तःप्रेरणा । संन्यासिनो महात्मानो वा ।

बृहस्पतिः[6]—मेघरवः । बुद्धिः, साहित्यम् । साहित्यकारा गुरवो वा ।

ब्रह्मणस्पतिः—अश्रूयमाणमेघरवः । दर्शनानि । दार्शनिका आचार्या वा ।

वरुणः[7]—आकाशः । न्याय-प्रेम-भावना । न्यायविभागः ।

सोमः[8]—ओषधिरूपः सोमः, चन्द्रः । दिव्यानन्दः । दिव्यानन्दमया योगिनः ।

सूर्यः[9]—सूर्यः । प्राप्तज्योतिर्जीवात्मा । ऋषयः ।

---

१. इमे त्रयोऽर्था मतिजुषां सम्मुखं विचाराय प्रस्तूयन्ते । सिद्धान्तरूपेण किञ्चिन्न कथ्यते । अस्त्येवात्र मतभेदावकाशः ।

२. अर०—मानवसमाजे कार्याणि विदधती दिव्येच्छाशक्तिः ।

३. अर०—प्राप्तज्योतिष्कस्य मनस अध्यक्षतां कुर्वाणा दिव्यशक्तिः ।

४. अर०—सर्वव्यापकः परमात्मा ।

५. अर०—वर्धयिता ।

६. अर०—जीवात्मनः शक्तिः ।

७. अर०—परमात्मनः सक्रियसर्वज्ञतासर्वशक्तिमत्तयोरभिव्यक्तिः ।

८. आनन्दस्यामृतत्वस्य चाधिपतिः ।

९. [illegible] ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


यमः—कालनियामकसूर्यः । संयमः । आचार्यः ।

उषा—उषा । आशा । भावनामय्यः सदासस्मितवदनार्यः ।

अपां नपात्—जलविद्युत् । भावनामयी मेधा । कलाकाराः ।

अश्विनौ[1]—उभौ सन्ध्याकालौ । स्वास्थ्यम् + मनोरञ्जनम्, प्रेमादि । स्वास्थ्यविभागः + मनोरञ्जनविभागः ।

रुद्रः—नीललोहितवर्णा प्रकृतिः, रोदसी । मनुष्यस्य सम्पूर्णं शारीरिकमाध्यात्मिकं च व्यक्तित्वम् । सर्वशक्तिमान् परमात्मा ।

### अ-देवाः

वृत्रः—अवर्षन् मेघः । आसुरी भावना । अदानशीलाः, समाजविरोधिनः, दुष्टाः ।

निगूढार्था वेदमन्त्रा मननेनैव बुध्यन्ते । अन्ते वेदोक्तासु सहस्रशिक्षासु तिस्रः प्रस्तूय विरमामो रमां रामं च स्मरन्तः—

### १. सुजनता

(निरन्तरप्रवृत्तसदसद्युद्धे विजयः)

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत्सत्यं यतरद् ऋजीयस्तदित्सोमो अवति हन्त्यासत् ।।

ऋ० ७.१०४.१२

### २. श्रमः (तपः)

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः

ऋ० ४.३३.११

न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवाः

ऋ० १.१७९.३

वपूंषि स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः

ऋ० ५.५८.७

### ३. सर्वत्रैकात्मदर्शनम्

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।।

ऋ० १०.१९१.२

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ।।

यजुः० ४०.६

—सत्यभूषणयोगी
(कुमारी) वन्दितामधुहासिनीयोगी

---

[1]. अर०—आध्यात्मिकानन्दस्याश्वौ ।

## संकेतसारणी

अथर्व०—अथर्ववेदः
अर०—महर्षिश्रीअरविन्दः
अ०—अष्टाध्यायी
ई० उ०—ईशोपनिषद्
ऋ०—ऋग्वेदः
ऐ० आ०—ऐतरेयारण्यकम्
ऐ० ब्रा०—ऐतरेयब्राह्मणम्
कठ०—कठोपनिषद्
केन०—केनोपनिषद्
ग्रि०, Gr.—श्रीग्रिफिथाचार्यः, Shri Ralph T. H. Griffith
तै० सं०—तैत्तिरीयसंहिता
द०—महर्षिदयानन्दसरस्वती
दु०—श्रीभगवत्पाददुर्गाचार्यः
नि०—निरुक्तम्
पा०—महर्षिपाणिनिः
बृ० उ०—बृहदारण्यकोपनिषद्
बृ० दे०—बृहद्देवता
मनु०—मनुस्मृतिः
मुण्ड०—मुण्डकोपनिषद्
मैत्रा० सं०—मैत्रायणीसंहिता
यजुः०—यजुर्वेदः
या०—महर्षियास्काचार्यः
वा० सं०—वाजसनेयिसंहिता
श० ब्रा०—शतपथब्राह्मणम्
साम०—सामवेदः
सा०—वेदनिधिश्रीसायणाचार्यः

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# इन्द्रः

ऋग्वेदे प्रायः २५० सूक्तानीन्द्रदेवताकानि । येषु च सूक्तेष्विन्द्रोंऽशतः स्तुतस्तानि प्रायः पञ्चाशत् । इन्द्रोऽन्तरिक्षस्थानो देवः । 'वायुर्वेन्द्रो वाऽन्तरिक्षस्थानः' (नि०) । बहुभिर्विशेषणैरिन्द्रो वेदेषु स्तूयते यथा—हरिकेशः, हरिश्मश्रुः, हरिशिप्रः, वज्री, हिरण्यबाहुः, वृत्रहा, हर्यश्वः, वृषा, सोमपाः, वशी, युधः, संसृष्टजित्, उग्रबन्वा, शक्रः, सुमखः, सुतपाः, वृषभः, त्वेषनृम्णः, पुरुहूतः, ऋजीषी,शविष्ठः, संभृतक्रतुः,गोपतिः, शतक्रतुः,अङ्गिरस्वान्, चित्रभानुः, सोमपातमः, मन्दी, शवसस्पतिः, अमितौजाः, अद्रिवा,पुरन्दरः, वावातुर्यः,पुरूवसुः, विश्वायुः, पाकस्थामा, भोजः, सुशिप्रः, सुपारः, 'सुन्वतः सखा', उग्रः, महामहः, सूरः, वृत्रहन्तमः, सुश्रवस्तमः, विपश्चित्, सत्पतिः, शचीपतिः, नव्यः, नरः, नृपादः, मंहिष्ठः, ज्येष्ठराजः, तुविकूर्मिः, अभिभूतिः, पप्रिः, तुविग्रीवः, वपोदरः, आखण्डलः, 'मुनीनां सखा', दिवावसुः, 'युवा सखा', 'रथीतमो रथीनाम्', पुरुनृम्णः, ऋभुक्षा, आजिःतिः, प्रभङ्गी, तुवीमघः, सोमी, हिरण्ययः, अश्व्यः, मृक्षः, शूरः, मायी, महावीरः, मदच्युत्, रातहव्यः, सत्यशुष्मा, मरुत्वान्, खजंकरः, अकल्पः, उरुव्यचाः, वीरः, दानौकाः, गूर्तश्रवाः, दर्मा, ऋग्मियः, सहस्रचेताः, शतनीथः, ऋन्वा, चक्रीषः, पाञ्चजन्यः, तरस्वी, राजेन्द्रः, सप्तरश्मिः, क्षामपः, स्वर्जित्, सम्राजित्, उर्वराजित्, अभिभङ्गः, वेधाः, तुविग्रिः, दुष्टरीतुः, च्यवनः, वृतंचयः, सहुरिः, गम्भीरः, असमशुष्काव्यः, रथ्रचोदः, वीळितस्पृषु, विप्रतमः, सखीयन्, वरेण्यः, सहोदाः, चर्षणीधृत्, शुष्मिन्तमः, धनञ्जयः, चिकित्वान्, स्वयुः, स्वराट्, कनीनः, अर्णवः, शाकी, वाजसनिः, 'शवसः सूनुः', अर्वाचीनः, नर्यः, विभीषणः, धन्वचरः, दानः, कृष्वः, सासह्वान्, ईशानकृत्, सुमन्तुनामा, अच्युतच्युत्, तूर्वन्, प्रत्नः, शतश्रीः घृष्णुः, ओजिष्ठः, व्यासः, अभिभुः, धर्मकृत्, जेता, हेता, शतमूतिः, वज्रदक्षिणः, दीर्घश्रुत्तमः, [illegible] 'विश्वस्माद् उत्तरः' बलविज्ञायः, स्थविरः, प्रवीरः, गोत्रभिद्, वीरेण्यः, 'स हि वीरः,' सुत्रामा, मित्रसखादः, अद्भुतः, स्वस्तिदाः, विमृधः, अधिभूः—इत्यादीनि ।

इन्द्रः क्षत्रियो देवो महावीरो महाशक्तिशाली, न च केनचिदपि पराजेयः । यास्कः कथयति—'या च का च बलकृतिरिन्द्रकर्मैव तत्' । इन्द्रशब्दस्य यास्ककृतानि निर्वचनानीमानि—इरां दृणाति, इरां ददाति, इरां दधाति, इरां धारयते, इन्दवे द्रवति, इन्दौ रमते, इन्धे भूतानि (तद् यदैनं प्राणैः समैन्धत तदिन्द्रस्येन्द्रत्वमिति ह विज्ञायते), इदंकरणादित्याग्रायणः, इदंदर्शनादित्यौपमन्यवः, इन्दतेर्वैश्वर्यकर्मणः, इन्द्धेर्भूतानां दारयिता वा प्रावयिता वा, आदरयिता यज्वनाम्)।

'इन्द्रः शक्तिदेवः' इत्युपरिनिर्दिष्टैर्वेदोल्लिखितैर्विशेषणैरपि स्फुटीभवति ।

अधोनिर्दिष्टाः केचन मन्त्रा मन्त्रखण्डाश्चेन्द्रस्य शक्तिमत्स्वरूपं कथयन्ति—

इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च
ऋ० ८.६३.६

तद् त इन्द्रियं परमम्—ऋ० १.१०३.१
(इन्द्रियम्—इन्द्रशक्तिः)

सु प्रवाचनं तव वीर वीर्यम्
ऋ० २.१३.१

अधा कृणोः प्रथमं वीर्यं महत्
ऋ० २.१७.३

इमे...इन्द्रस्योजसो मिया जिहते
ऋ० ५.३२.६

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावान्
ऋ० ७.२०.१

इन्द्रस्य बाह्वोर्भूयिष्ठभोजः
ऋ० ८.६६.३

न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन
ऋ० १०.१५२.२

CC-0. Bharati Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे
यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम्
अथर्व० ४.२४.६

इन्द्रो जयाति न पराजयाता
अधिराजो राजसु राजयातै
अथर्व० ६.९८.१

इन्द्रो विश्वस्य राजति
यजुः० ३६.८

ऋग्वेदे मनुष्या एवमुद्बोधिताः—

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥
ऋ० १०.१०३.१३

## इन्द्रः शचीपतिः

इन्द्रः शचीपतिरिति कथितः(शची=कर्म, नि० १२.२७) । ऋग्वेदे 'शचीवान्' इति शब्दः प्रायः १५ वारान्, शचीपतिश्चेति शब्दः दशवारान् इन्द्राय प्रयुक्तः ।

इन्द्रस्य शक्तिमत्तामभिलक्ष्यैतरेयब्राह्मणे (८.१२) कथितम् — 'अयं वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतम इममेवाभिषिञ्चामहा इति तथेति तद्वै तदिन्द्रमेव ।' मैत्रा० सं० १६.९ इत्यत्र कथितम्— 'वीर्यं वै प्राणो वीर्यमिन्द्र इति ह विज्ञायते ।'

## इन्द्रस्य युद्धानि रूपकमात्राणि

इन्द्रो वृत्रेण दासादिभिश्च सह युध्यते । ऋग्वेदे कथितं यदिमानि युद्धानि वास्तविकानि न सन्ति—

यदाचरस्तन्वा वावृधानो
बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु ।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहु-
र्नाद्य शत्रुं न पुरा विवित्से ॥
ऋ० १०.५४.२

अत्र दुर्गः—'यानि च युद्धान्याहुरैतिहासिका नानारूपाण्युपप्रदर्शयन्तः साऽपि च तव मायैव' । 'न ह्यत्र यथाभूतं युद्धमस्ति' (नि० २.१६) ।

यास्कः कथयति—'तत्को वृत्रो मेघ इति नैरुक्ता-स्त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः । अपां च ज्योतिषां च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते । तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति (नि० २.१६) ।' अस्य व्याख्यां कुर्वन् दुर्गः कथयति —'अपां च मेघोदरान्तर्गतानां ज्योतिषश्च वैद्युतस्योद्भूतवृत्तेर्मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते । तेन हि वैद्युतेन ज्योतिषा वाय्वावेष्टितेनेन्द्राख्येनोपताप्यमाना आपः प्रस्यन्दन्ते वर्षभावाय प्रकल्पन्ते । तत्रैवं सत्युदकतेजसोरितरेतरप्रतिद्वन्द्विभूतयोरुपमार्थेन रूपककल्पनया युद्धवर्णा भवन्तीति । युद्धरूपकाणीत्यर्थः । न ह्यत्र यथाभूतं युद्धमस्ति ।' शतपथब्राह्मणेऽप्ययमेव विचारः प्रकटीकृतः— 'विज्ञायते च तस्मादाहुर्नैतदस्ति यद्वैवासुरमिति ।'

## वायुरिन्द्रश्च

यास्कः कथयति—'वायुर्वेन्द्रो वाऽन्तरिक्षस्थानः (नि० ७.५) । अनेनेदं सिध्यति यदेकमेव तत्त्वं विभिन्नासु दशासु वायुर्नाम्नेन्द्रनाम्ना वा कथ्यते । अत्र दुर्गः—'मध्यमस्य हि द्वौ कर्मात्मानौ विद्युदाख्यो वाय्वाख्यो । तयोरनित्यदर्शन एको विद्युदाख्यो नित्यदर्शनस्तु वाय्वाख्यस्त्वगिन्द्रियप्रत्यक्षः ।' अन्यत्र

दुर्गः—'तस्मादिन्द्र एव वायुः' (नि० १०.२) ।

## वायुः, वरुणः, रुद्रः, इन्द्रः, पर्जन्यः

दुर्गः—'स एष संभृतोदकगर्भो वायुविवृण्वन्मेघजालेन नभो मध्यमो वरुणः संपद्यते । ततो रुदद्रुद्रः । तत इरां ददद्दिन्द्रः । ततो रसान्प्रार्जयन्पर्जन्यः । एवमादिर्मध्यमस्य जगदनुग्रहाय वर्षप्रदानसिद्धये गुणोपजनक्रमः । अनेनैव गुणोपजनापूर्व्या वायुर्वरुणो रुद्र इन्द्रः पर्जन्य इत्येवमादया समाम्नाये देवतानामानुपूर्वी । नि० १०.१

## इन्द्रः=जीवात्मा

'इन्द्रिय'शब्देन सिध्यति यदाध्यात्मिकदृष्ट्या इन्द्र =जीवात्मा (दृश्यतां भूमिका) । उपरि निर्दिष्टं यद् वायुरिन्द्रश्चाभिन्नौ । यदा कश्चिन्म्रियते तदा कथ्यते—प्राणा (वायुः) निर्गताः, जीवात्मा (इन्द्रः) वा निर्गतः ।

अधोलिखितमन्त्रे मनुष्यः स्वजीवात्मानं (इन्द्रं) प्रार्थयते यत्षट्शत्रुभ्यो मोह-क्रोध-मात्सर्य-काम-मद-लोभेभ्यो मम रक्षां कुरु, एषां च शत्रूणां दृषदेव पेषणं कुरु—

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं
जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं
दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥
ऋ० ७.१०४.२२

यातुः=गतिः । उलूकः=मोहः, अज्ञानम्, अतत्त्व-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



दर्शनम् । शुशुलूकः=वृकः=क्रोधः, हिंस्रप्रवृत्तिः । कोकः =कामः । श्वा=ईर्ष्या, चाटुकारिता । सुपर्णः=मदः । गृध्रः=लोभः (greed) ।

### इन्द्राऽर्जुनो हरिश्च

'अर्जुनम्' इति वज्रस्य विशेषणम् —इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम्...आजत—ऋ० ३.४४.५

'हरी' इतीन्द्रस्याश्वौ । अन्यत्र इन्द्रोऽप्यर्जुन इति कथितः । महाभारतेऽर्जुन इन्द्रपुत्रस्तस्य च सारथिर्हरिः ।

हरिशब्दस्य सोम इत्यप्यर्थः, इन्द्रश्च सोमपाः, एवं हरिरिन्द्रस्य सारथिः (यास्कः—हरिः सोमो हरितवर्णः)

### इन्द्रः सोमश्च

आधिदैविकदृष्ट्येन्द्रवृत्रयुद्धे मानवानां कृते जलं, सोमौषधिश्चन्द्रश्चेति सोमाः । आधिभौतिकदृष्ट्या राज्ञो राष्ट्रसैनिकानां च वीर्यं बलं चेति सोमः । आध्यात्मिकदृष्ट्या दिव्यानन्दः (bliss) सोमः ।

### इन्द्रो मरुतश्च

आधिदैविकदृष्ट्या वृष्टिवाता मरुतः, आधिभौतिकदृष्ट्या राष्ट्रसैनिकाः, आध्यात्मिकदृष्ट्या प्राणा इन्द्रियाणि च ।

### इन्द्रो युद्धदेवः (क्षत्रियदेवः), इन्द्रविष्णुसंबन्धः

इन्द्रमन्त्रेष्वाधिदैविकदृष्ट्या वृष्टिकर्म (विद्युन्मेघस्तनितादिमयं दृश्यम्) इन्द्रस्य कर्म । आधिभौतिकदृष्ट्या देशरक्षक-नृप-राष्ट्रपति-प्रधानसेनापतिप्रभृतय इन्द्राः । आध्यात्मिकदृष्ट्या जीवात्मेन्द्रः स आसुरभावनाभिः सह युध्यते । एवम् इन्द्रो युद्धदेवः । विष्णुरुपेन्द्र (इन्द्रानुजः) इति कथ्यते । विष्णुर्जीवनमार्गेऽग्रे गमनस्य देव इन्द्रश्च संघर्षस्य । पूर्वं संघर्षो भवति, तदनन्तरमग्रे गमनम् । अत आलङ्कारिकदृष्ट्या विष्णुरिन्द्रानुज इति कथ्यते । आधिभौतिकदृष्ट्या विष्णुरग्रे गच्छन् सूर्यः । इन्द्रः सूर्यमार्गान्मेघानपाकरोति । निम्ने मन्त्र इन्द्रविष्णुसम्बन्धः स्पष्टः—

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे
न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां
त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥

ऋ० ६.६९.८

### अस्य (ऋ० १.३२) सूक्तस्य ऋषिः

अस्य सूक्तस्य ऋषिः हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । अङ्गिरसोऽपत्यं पुमान् इत्याङ्गिरसः । अङ्गिरःशब्दविषये यास्कः—'अर्चिषि भृगुः संबभूव भृगुर्भृज्यमानो न देहेऽङ्गारेष्वङ्गिरा अङ्गारा अङ्कना अञ्चना'(नि० ३.१७) । अङ्गिरसां जन्माग्नेर्जातमिति ऋग्वेदः—ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परिजज्ञिरे (ऋ० १०.६२.५) । केचन विद्वांसः 'अङ्गेषु रसो येषां तेऽङ्गिरसः' एवं व्याचक्षते । हिरण्यस्तूपशब्दविषये यास्कः—'हिरण्यस्तूपो हिरण्यमयः स्तूपो हिरण्यमयः स्तूपोऽस्येति वा स्तूपः स्त्यायते संघातः' (नि० १०.३३) । ऋ०१०.१४९.५ मन्त्रे 'हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः' इत्यस्य चर्चा ।

अस्मिन् सूक्तेऽङ्गारवज्जाज्वल्यमानस्य हिरण्यवच्छुद्धस्य हितरमणीयस्य चेन्द्रस्य वर्णनमस्ति ।

### इन्द्रः (ऋ० १.३२)

हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

सा०—इन्द्रस्य नु वीर्याणीति पञ्चदशर्चं द्वितीयं सूक्तम् । आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । इन्द्रो देवता । इन्द्रस्य पञ्चोनेत्यनुक्रमणिका । अग्निष्टोमे माध्यन्दिने सवने निष्केवल्यशस्त्र इन्द्रस्य नु वीर्याणीति निविद्धानीयं सूक्तम् । निष्केवल्यस्येति खण्ड इन्द्रस्य नु वीर्याणीत्येतस्मिन्नैन्द्रो निविदं दध्यात् । आ० ५.१५ । इति ॥ विषुवत्यपि तस्मिन् शस्त्र एतद्विनियुक्तम् । विषुवान्दिवा कीर्त्यं इति खण्डे सूचितम् । इन्द्रस्य नु वीर्याणीत्येतस्मिन्नैन्द्रीं निविदं शस्त्वा । आ० ८.६ । इति ॥ महाव्रते निष्केवल्येऽप्येतदेव विनियुक्तम् । राथन्तरो दक्षिणः पक्ष इति खण्डे चतस्रः सतीः षड् गृहतीः करोतीन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचम् ऐ० आ० ५.२.२ । इति ॥

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं
यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द
प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥१॥

सा०—वज्री वज्रयुक्त इन्द्रः प्रथमानि पूर्वसिद्धानि मुख्यानि वा यानि वीर्याणि पराक्रमयुक्तानि कर्माणि चकार तस्येन्द्रस्य तानि वीर्याणि नु क्षिप्रं प्रब्रवीमि । कानि वीर्याणीति तदुच्यते । अहिं मेघमहन् । हतवान् । तदेकं वीर्यम् । अनु पश्चादपो जलानि ततर्द । हिंसितवान् । भूमौ पातितवानित्यर्थः । इदं द्वितीयं वीर्यम् । पर्वतानां सम्बन्धिनीर्वक्षणाः प्रवहणशीला नदीः प्राभिनत् । भिन्न-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


वान्। कूलद्वयकर्षणेन प्रवाहितवानित्यर्थः। इदं तृतीयं वीर्यम्। एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यम्। वीर्याणि। शूर वीर विक्रान्तौ। ष्यन्तादचो यदिति यत्। णेरनिटीति णिलोपः। तित्स्वरितमिति स्वरितत्वम्। यतोऽनाव इत्याद्युदात्तत्वं न भवति। आद्युदात्तत्वे हि सुशब्देन बहुव्रीहावाद्युदात्तं द्व्यच्छन्दसीत्यनेनैवोत्तरपदाद्युदात्तत्वस्य सिद्धत्वाद्वीरवीर्यौ चेति पुनस्तद्विधानमनर्थकं स्यात्। अतोऽवगम्यते यतोऽनाव इत्याद्युदात्तत्वं वीरशब्दे न प्रवर्तत इति। अतः परिशेषात्तित्स्वरितमिति प्रत्ययस्य स्वरितत्वमेव। वोचम्। अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङिति च्लेरङादेशः। बहुलं छन्दस्यमाङयोगेऽपीत्यडभावः। चकार। णलि लित्स्वरेण प्रत्ययात्पूर्वस्योदात्तत्वम्। यद्वृत्तयोगादनिघातः। अहन्। लङोतश्चेतीकारलोपे हल्ङ्याब्भ्य इति तकारलोपः। अहिम्। आङ्पूर्वाद्धन्तेराङि श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्च। उ० ४. १३७। इतीप्रत्ययः। आङो ह्रस्वत्वं च। चशब्देन वेञो ङित् समाने ण्यश्चोदात्त इति ङित्त्वं पूर्वपदोदात्तत्वं चानुकृष्यते। ततष्टिलोपे पूर्वपदस्योदात्तत्वम्। ततर्द। उतृदिर् हिंसानादरयोः। तिङ्ङतिङ इति निघातः। वक्षणाः। वक्ष रोषे। क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च। पा० ३.२.१५१। इति युच्। चित्स्वरं बाधित्वा व्यत्ययेन प्रत्ययस्वरः।१।

द०—तत्रादाविन्द्रशब्देन सूर्यलोकदृष्टान्तेन राजगुणा उपदिश्यन्ते॥

पदार्थः—(इन्द्रस्य) सर्वपदार्थविदारकस्य सूर्यलोकस्येव सभापते राज्ञः (नु) क्षिप्रम् (वीर्य्याणि) आकर्षणप्रकाशयुक्तादिवत् कर्माणि (प्र) प्रकृष्टार्थे (वोचम्) उपदिशेयम्। अत्र लिङर्थे लुङडभावश्च। (यानि) (चकार) कृतवान् करोति करिष्यति वा। अत्र सामान्यकाले लिट्। (प्रथमानि) प्रख्यातानि (वज्री) सर्वपदार्थविच्छेदककिरणवानिव शत्रूच्छेदी (अहन्) हन्ति। अत्र लडर्थे लङ्। (अहिम्) मेघम्। अहिरिति मेघनामसु पठितम्। निघं० १.१०। (अनु) पश्चादर्थे (अपः) जलानि (ततर्द) तर्दति हिनस्ति। अत्र लडर्थे लिट्। (वक्षणाः) वहन्ति जलानि यास्ता नद्यः (अभिनत्) विदारयति। अत्र लडर्थे लङन्तर्गतो ण्यर्थश्च। (पर्वतानाम्) मेघानां गिरीणां वा। पर्वत इति मेघनामसु पठितम्। निघं० १.१०॥१॥

अन्वयः—हे विद्वांसो मनुष्या यूयं यथा यस्येन्द्रस्य सूर्यस्य यानि प्रथमानि वीर्य्याणि पराक्रमान् प्रवक्तुं तान्यहं नु प्रवोचम् यथा स वज्रयहिमहन् तदवयवा अपोध ऊर्ध्वं चकार तं ततर्द पर्वतानां सकाशात्प्रवक्षणा अभिनत्तथाऽहं शत्रून् हन्याम् तानध ऊर्ध्वमनुतर्दयम् दुर्गादीनां सकाशाद्युद्धायागताः सेना भिन्द्याम्॥१॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः। ईश्वरेणोत्पादितोऽयमग्निमयः सूर्यलोको यथा स्वकीयानि स्वाभाविकगुणयुक्तान्यन्नादीनि प्रकाशाकर्षणादाहच्छेदनवर्षोत्पत्तिनिमित्तानि कर्माण्यहर्निशं करोति तथैव प्रजापालनतत्परैः राजपुरुषैरपि भवितव्यम्॥१॥

Gr.—I will declare the manly deeds of Indra, the first that he achieved the Thunder-Wielder.

He slew the Dragon then disclosed the waters, and cleft the channels of the mountain torrents.

Wilson—वृत्र, sometimes also named अहि, is nothing more than the accumulation of vapour, condensed or figuratively shut up in, or obstructed by, a cloud. Indra, with his thunderbolt, or atmospheric or electrical influence, divides the aggregated mass, and vent is given to the rain which descends upon the earth.

यास्कः—वज्रः— वर्जयतीति सतः (दुर्गः—वियोजयति प्राणैः प्राणिनः)।

अहिः— अयनादेत्यन्तरिक्षे। पर्वतः—पर्ववान्, पर्व पुनः पृणातेः प्रीणातेर्वा।

दुर्गः—प्रथमानि—अकृतपूर्वाण्यन्यैः। वक्षणाः=उदकवहनशिराः। पर्वतानाम्=मेघानाम्।

योगी—बिना किसी संकोच के मैं इन्द्र के महागति से युक्त शक्तिशाली कार्यों का प्र-वचन करता रहता हूँ। ये प्रकृष्टतम कार्य हैं, जिन्हें वह वज्रधारक करता रहता है। अहि का हनन करता रहता है, सर्वत्र व्याप्त(जल इत्यादि) वस्तुओं का तर्दन करता रहता है, पर्वतों की वहनशीलाओं (नदी इत्यादि) का प्रकृष्ट रूप से भेदन करता रहता है॥१॥

तुलना—हननम् (हन् हिंसागत्योः), तर्दनम् (उतृदिर् हिंसानादरयोः), भेदनम् (भिदिर् विदारणे)।

धातुः—अहिः— (अहि गतौ) —वक्रगतौ इति काश-कृत्स्नः।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



विविधास्त्रशस्त्रसंपन्नः शक्तिशाली राजा कुटिलगतिजनान् हन्ति, सर्वत्र व्याप्तान् अव्यवस्थादिदोषान् तृणत्ति, धनादिसुखसुविधासाधनानां चाव्यवहितसंचारं नियोजयति,एतदर्थं च निगृहीतराष्ट्रवैभवचौरान् प्रभिनत्ति।

विविधविचारमननसंयमनिदिध्यासनशक्तिसंपन्नो जीवात्मा कुटिलगतिविचारान् हन्ति जीवने व्याप्तान् असंयमजनितदोषान् तृणत्ति बुद्धेः (पर्वतस्य) भेदनं कृत्वा ज्ञानविवेकानन्दरसधाराः प्रवाहयति ॥१॥

**अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं**
**त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।**
**वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना**
**अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ ॥**

सा०—पर्वते शिश्रियाणमाश्रितमहिं मेघमहन्। हतवान्। अस्मा इन्द्राय स्वर्यं सुष्ठु प्रेरणीयं यद्वा शब्दनीयं स्तुत्यं त्वष्टा विश्वकर्मा वज्रं ततक्ष। तनूकृतवान्। तेन वज्रेण मेघे भिन्ने सति स्यन्दमानाः प्रस्रवणयुक्ता आपः समुद्रमञ्जः सम्यगव जग्मुः। प्राप्ताः। तत्र दृष्टान्तः। वाश्रा वत्सान्प्रति हम्भारवोपेता धेनव इव। यथा धेनवः सहसा वत्सगृहे गच्छन्ति तद्वत् ॥ शिश्रियाणम्। श्रिञ् सेवायाम्। लिटः कानच्। द्विर्भावहलादिशेषेयङादेशाः। चित इत्यन्तोदात्तत्वम्। स्वर्यम्। ऋ गतौ। अस्मात्सुपूर्वाद्ग्हलोर्ण्यदिति ण्यत्। संज्ञापूर्वको विधिरनित्य इति वृद्धयभावः। यद्वा। स्वृ शब्दोपतापयोरित्यस्मात् ण्यति पूर्ववद् वृद्धयभावः। तित्स्वरितमिति स्वरितत्वम्। वाश्यन्त इति वाश्राः। वाशृ शब्दे। स्फायितञ्चीत्यादिना रक्। जग्मुः। उसि गमहनेत्युपधालोपः ॥२॥

द० पुनः स किं करोतीत्युपदिश्यते ॥

**पदार्थः**—(अहन्) हतवान् हन्ति हनिष्यति वा (अहिम्) मेघमिव शत्रुम् (पर्वते) मेघमण्डले इव गिरौ पर्वते। पर्वत इति मेघनामसु पठितम्। निघं. १।१०। (शिश्रियाणम्) विविधाश्रयम् (त्वष्टा) स्वकिरणैः छेदनसूक्ष्मकर्त्ता स्वतेजोभिः शत्रुविदारको वा (अस्मै) मेघाय दुष्टाय वा (वज्रम्) छेदनस्वभावं किरणसमूहं शस्त्रवृन्दं वा (स्वर्यम्) स्वरे गर्जने वाचि वा साधुस्तम्। स्वर इति वाङ्नामसु पठितम्। निघं० १।११। इदं पदं सायणाचार्येण मिथ्यैव व्याख्यातम्। (ततक्ष) छिनत्ति (वाश्राइव) वत्सप्राप्तिमुत्कण्ठिताः शब्दायमाना इव (धेनवः) गावः (स्यन्दमानाः) प्रस्रवन्त्यः (अञ्जः) व्यक्तीनामनशीलाः वा। अञ्जू व्यक्तिकरण इत्यस्य प्रयोगः। (समुद्रम्) जलेन पूर्णं सागरमन्तरिक्षं वा (अव) नीचार्थे (जग्मुः) गच्छन्ति (आपः) जलानि शत्रुप्राणा वा ॥२॥

**अन्वयः**—यथाऽयं त्वष्टा सूर्यलोकः पर्वते शिश्रियाणं स्वर्यमहिमहन् हन्ति। अस्मै मेघाय वज्रं ततक्ष तक्षति। एतेन कर्मणा वाश्रा धेनव इव स्यन्दमाना अञ्जः आपः समुद्रमवजग्मुरवगच्छन्ति। तथैव सभाध्यक्षो राजा दुर्गमाश्रितं शत्रुं हन्यादस्मै शत्रवे वज्रं तक्षेत्तेन वाश्रा धेनव इव स्यन्दमाना अञ्जः आपः समुद्रमवगमयेत् ॥२॥

**भावार्थः**—अत्रोपमालङ्कारः। यथा सूर्यः स्वकिरणैरन्तरिक्षस्थं मेघं भूमौ निपात्य जगज्जीवयति तथा सेनेशो दुर्गपर्वताद्याश्रितमपि शत्रुं पृथिव्यां संपात्य प्रजा सततं सुखयति ॥२॥

Gr.—He slew the Dragon lying on the mountain: his heavenly bolt of thunder Tvashtar fashioned.

Like lowing kine in rapid flow descending the waters glided downward to the ocean.

यास्कः—त्वष्टा—तूर्णमश्नुत इति नैरुक्ताख्यातिर्वा स्याद् दीप्तिकर्मणस्तक्षतेर्वा स्यात्करोतिकर्मणः। धेनुः—धयतेर्वा धिनोतेर्वा। समुद्र—समुद्रवन्त्यस्मादापः समभिद्रवन्त्येनमापः संमोदन्तेऽस्मिन् भूतानि समुदको भवति समुनत्तीति वा।

समुद्रो निघण्टुशब्दकोशेऽन्तरिक्षनामसु पठितः। तत्र यास्कः— तत्र समुद्र इत्येतत्सायणेन समुद्रेण सन्दिह्यते।

**योगो**—पर्वत पर विविध रूप से आश्रय लेनेवाले अहि का इन्द्र शाश्वत काल से हनन करता आया है। इस इन्द्र के लिए स्वष्टा स्वर के लिए हितकर वज्र का तनूकरण करता रहता है। व्याप्त होने वाले [अन्तरिक्ष, जल इत्यादि] समुद्र को इस प्रकार सम्यक्तया प्राप्त हुए, जैसे प्रस्रवणयुक्ता [वत्सों के प्रति] शब्दायमान धेनुएं वत्सों को प्राप्त होती हैं] ॥२॥

**धातुः**—त्वष्टा—ष्टिवा दीप्तौ। स्वर्यः (स्वरे साधुः) स्वरः—स्वृ शब्दोपतापयोः। ततक्ष—तक्ष् तनूकरणे कुटिलगतयश्चौरादयः पर्वतादिगूढप्रदेशेषु निगूढा- स्तिष्ठन्ति, तत्र च स्वकीयं पापार्जितं धनं स्थापयन्ति। राजा तद्धनं गृहीत्वा मनुष्यसमाजे सम्यग् वितरतु।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


जीवात्मा स्वबुद्धिव्याप्तान् कुटिलगतिविचारान् दूरीकरोतु, हृदयसमुद्रे च दिव्यभावनारससंचारं नियोजयतु ॥२॥

**वृषायमाणोऽवृणीत सोमं**
**त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।**
**आ सायकं मघवादत्त वज्र-**
**महन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥३॥**

सा०—वृषायमाणो वृष इवाचरन्निन्द्रः सोममवृणीत । वृतवान् । त्रिकद्रुकेषु । ज्योतिर्गौरायुरित्येतन्नामकास्त्रयो यागास्त्रिकद्रुका उच्यन्ते । तेषु सुतस्याभिषुतस्य सोमस्यांशमपिबत् । पीतवान् । मघवा धनवान्निन्द्रः सायकं बन्धकं वज्रमादत्त । स्वीकृतवान् । तेन च वज्रेणाहीनां मेघानां मध्ये प्रथमजां प्रथमोत्पन्नं मेघमहन् । हतवान् ॥ वृषायमाणः । वृष इवाचरन् । कर्तुः क्यङ् सलोपश्च । पा० ३. १.११ । इति क्यङ् । अकृत्सार्वधातुकयोरिति दीर्घः । अदुपदेशाद्धातोरन्तोदात्तत्वम् । सायकम् । षिञ् बन्धने । सिनोतीति सायकः । ण्वुल् । लित्स्वरेणाद्युदात्तत्वम् । प्रथमजाम् । प्रथमं जायत इति प्रथमजाः । जनसनखनक्रमगमो विट् । विड्वनोरित्यात्वम् ॥३॥

द०—पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते ।

**पदार्थः**—(वृष इवाचरन् (अवृणीत)स्वीकरोति । अत्र लडर्थे लङ् । (सोमम्) सूयत उत्पद्यते यस्तं रसम् (त्रिकद्रुकेषु) त्रय उत्पत्तिस्थितिप्रलयाख्याः कद्रवो विविधकला येषां तेषु कार्यपदार्थेषु । अत्र कदिधातोरौणादिकः क्रुन्प्रत्ययः । पुनः समासान्तः कप् च । (अपिबत्) स्वप्रकाशेन पिबति । अत्र लडर्थे लङ् । (सुतस्य) उत्पन्नस्य जगतो मध्ये (आ) क्रियायोगे (सायकम्) शस्त्रविशेषम् (मघवा) मघं बहुविधं पूज्यं धनं यस्य सः । अत्र भूम्न्यर्थे मतुप् । (अदत्त) ददाति वा । अत्र वर्त्तमाने लङ् । (वज्रम्) किरणसमूहमिवास्त्रम् (अहन्) हन्ति । अत्र वर्त्तमाने लङ् । (एनम्) मेघम् (प्रथमजाम्) प्रथमं जायते तम् । अत्र जनसन० अ० ३।२।६७। अनेन जनधातोर्विट् प्रत्ययः । (अहीनाम्) मेघानाम् ॥३॥

**अन्वयः**—यथा वृषायमाणः इन्द्रः सूर्य्यलोको मेघ इव सुतस्य त्रिकद्रुकेषु सोमं रसमवृणीत स्वीकरोति अपिबत् पिबति मघवा सायकं वज्रमादत्तेऽहीनां प्रथममेनं मेघमहन् हन्ति । एतादृशगुणकर्मस्वभावपुरुषः सेनापतिर्भवेत् ॥३॥

**भावार्थः**—अत्रोपमालङ्कारः । यथा वृषभो वीर्य्यवृद्धिं कृत्वा बलिष्ठो भूत्वा सुखी जायते तथैवायं सेनापती रसं पीत्वा बली भूत्वा सुखी जायेत यथा सूर्यः स्वकिरणैर्जलमाकृष्यान्तरिक्षे स्थापयित्वा वर्षयति तथा शत्रुबलान्याकृष्य स्वबलमुन्नीय प्रजासुखान्यभिवर्षयेत् ॥३॥

Gr.—Impetuous as a bull, he chose the Soma, and in three beakers drank the juices.

Maghavan grasped the thunder for his weapon, and smote to death this firstborn of the dragons.

*Maghavan*—The wealthy and liberal, lord Bountiful.

**यास्कः**—सोमः ओषधिः सोमः सुनोतेर्यदेनमभिषुण्वन्ति बहुलमस्य नैघण्टुकं वृत्तमाश्चर्यमिव प्राधान्येन तस्य पावमानीषु निदर्शनायोदाहरिष्यामः ।

**योगी**—वृष के समान आचरण करते हुए इन्द्र ने सोम का वरण किया, अभिषुत सोम के अंश का त्रिकद्रुकों में पान किया । मघवा ने बांधने वाले वज्र का आदान किया; अहियों में प्रथमोत्पन्न इस [अहि] का हनन किया ॥३॥

**धातुः**—वृषायमाणः— वृषु सेचने; वृष शक्तिबन्धने ।

**कोषः**—त्रिकद्रुकाः—त्रिसंख्याकानि बभ्रुवर्णानि सोमपात्राणि । कद्रु—बभ्रुवर्णः (भूरा रंग)

राजा सोमं (वीर्यशक्तिं) धारयतु, शक्तिशाली च भवतु । तस्य शक्तेर्विस्तरः स्थले जले गगने च त्रिष्वपि स्थानेषु, अथवा क्षत्रियवैश्यशूद्रेषु त्रिषु वर्णेषु, अथवा ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थेषु त्रिष्वाश्रमेषु भवतु (वैदिकविचारधारायां बहवस्त्रिसमूहाः सन्ति, तेषु प्रकरणानुसारमत्र योजनीयाः ।)

जीवात्मा सोमम्(आध्यात्मिकमानन्दं)धारयतु । तस्योन्नतिस्त्रिषु शारीरिकमानसिकबौद्धिकेषु क्षेत्रेषु, अथवा त्रिषु धर्मार्थकामेषु भवतु ॥३॥

**यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीना-**
**मान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।**
**आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं**
**तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥४॥**

सा०—यदिन्द्र हे इन्द्र यद्यदाहीनां मेघानां मध्ये प्रथमजां

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Central Trust, Chennai and Digitized by eGangotri Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
CC-0. Vasishtha Tripathi Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Central Trust, Chennai and Digitized by eGangotri Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Central Trust, Chennai and Digitized by eGangotri Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Central Trust, Chennai and Digitized by eGangotri Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by eGangotri Siddhanta eGangotri Gyaan Central Trust, Chennai and Digitized by eGangotri Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



प्रथमोत्पन्नं मेघमहन् हतवानसि अात् तदनन्तरं मायिनां मायोपेतानामसुराणां सम्बन्धिनीर्मायाः प्रामिनाः प्रकर्षेण नाशितवानसि । अनन्तरं सूर्यमुषसमुषः कालं द्यामाकाशं च जनयन् उत्पादयन्नावरकमेघनिवारणेन प्रकाशयन् वर्तसे । तादीत्ना तदानीमावरकान्धकाराभावाच्छत्रुं घातकं वैरिणं न विवित्से किल । त्वं न लब्धवान्खलु ॥ अहन् । हन्तेर्लङि हल्ङ्याब्भ्य इति सिलोपः । अडागम उदात्तः । यद्वृत्तयोगादनिघातः । मायिनाम् । मायाशब्दस्य व्रीह्यादिषु पाठाद् व्रीह्यादिभ्यश्च । पा० ५.२.११६ । इति मत्वर्थीय इनिः । अमिनाः । मीञ् हिंसायाम् । क्र्यादिकः । मीनातेर्निगमे । पा० ७.३.८१ । इति ह्रस्वत्वम् । तादीत्ना । तदानीमित्यस्य पृषोदरादित्वाद्वर्णविपर्ययः । किल । निपातस्येति दीर्घत्वम् । विवित्से । विदॢ लाभे । क्र्यादिनियमात् प्राप्त इट् व्यत्ययेन न भवति ॥४॥

द०—पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

पदार्थः (यत्) यम् । सुपाम० इत्यमो लुक् (इन्द्र) पदार्थविदारयितः सूर्यलोकसदृश (अहन्) जहि (प्रथमजाम्) सृष्टिकालयुगपदुत्पन्नं मेघम् (अहीनाम्) सर्पस्येव मेघावयवानाम् (आत्) अनन्तरम् (मायिनाम्) येषां मायानिर्मिणं घनाकारं सूर्यप्रकाशाच्छादकं वा बहुविधं कर्म विद्यते तेषाम् । अत्र भूम्न्यर्थ इनिः । (अमिनाः) निवारयेद्वा मीनातेर्निगमे । अ० ७।३।८१ । इति ह्रस्वादेशश्च । (प्र) प्रकृष्टार्थे (उत) अपि (मायाः) अन्धकाराद्या इव (आत्) अद्भुते (सूर्य्यम्) किरणसमूहम् (जनयन्) प्रकटयन् सन् (द्याम्) प्रकाशमयं दिनम् (उषसम्) प्रातःसमयम् । अत्र वर्णव्यत्ययेन दीर्घत्वम् । (तादीत्ना) तदानीम् । अत्र पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् । अ० ६।३।१०९ । अनेन वर्णविपर्यासेनाकारस्थान ईकार ईकारस्थान आकारस्तुडागमः पूर्वस्य दीर्घश्च । (शत्रुम्) वैरिणम् (न) इव (किल) निश्चयार्थे । अत्र निपातस्य च इति दीर्घः । (विवित्से) विन्दसि अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् ॥४॥

अन्वयः—हे सेनाराजँस्त्वमिन्द्रः सूर्य्योऽहीनां प्रथमजां मेघमहन् तेषां मायिनामहीनां मायादीन् प्रामिनाः तादीत्ना यथं सूर्यकिरणसमूहमुषसं द्यां च प्रजनयन् दिनं करोति नैव शत्रून्विवित्से तेषां माया हन्यास्तदानीं न्यायार्कं प्रकटयन् सत्यविद्याचाराख्यं सवितारं जनय ॥४॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा कश्चिच्छत्रोर्बलच्छले निवार्य तं जित्वा स्वराज्ये सुखन्यायप्रकाशौ विस्तारयति तथैव सूर्योऽपि मेघस्य घनाकारं प्रकाशावरणं निवार्य स्वकिरणान् विस्तार्य मेघं छित्त्वा तमो हत्वा स्वदीप्तिं प्रसिद्धीकरोति ॥४॥

Gr.—When, Indra, thou hadst slain the dragons' first-born, and overcome the charms of the enchanters,
Then giving life to Sun and Dawn and Heaven, thou findest not one foe to stand against thee.

यास्कः—माया=प्रज्ञानम्, कर्म, मायाः ।

योगी—हे इन्द्र, जब तूने अहियों में प्रथमोत्पन्न [अहि] का हनन किया, तथा तदनन्तर माया से युक्तों की माया का प्रकर्ष से विनाश किया; तदनन्तर सूर्य, द्युलोक तथा उषा को प्रादुर्भूत करते हुए तूने, यह सर्वविदित तथ्य है कि तब किसी शत्रु की उपस्थिति का साक्षात्कार नहीं किया ॥४॥

धातुः—अमिनाः—मीञ् हिंसायाम् । मायाः—मा माने ।

राजा कुटिलजनान् विनाशयति, तथा च ये स्वकुर्वेर्दुरुपयोगं कुर्वन्ति कपटप्रबन्धकारिणश्च भवन्ति तेषां प्रणाशं करोति । अनेन दिव्यप्रकाशमयसात्विकभावेषां संचारो भवति ।

जीवात्मा कुटिलभावनानाशं करोति बुद्धि सत्यपथे थापयति प्रकाशमयलोके च निवसति ॥४॥

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंस-
मिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णा-
हिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥५॥

अयमिन्द्रो वज्रेण सम्पादितेन महान्वधस्तेन वज्रेण वृत्रतरमतिशयेन लोकानामावरकमन्धकाररूपम् । यद्वा । वृत्रैरावरणैः सर्वाञ्छ्रेष्ठतरति तम् । वृत्रमेतन्नामकमसुरं व्यंसं विगतांसं छिन्नबाहुर्यथा भवति तथाहन् । हतवान् । अयमर्थे दृष्टान्तः । कुलिशेन कुठारेण विवृक्णा विशेषतश्छिन्नानि स्कन्धासीव । यथा वृक्षस्कन्धाश्छिन्ना भवन्ति तद्वत् । तथा सत्यहिर्वृत्रः पृथिव्या उपर्युपपृक् सामीप्येन सम्पृक्तः शयते । शयनं करोति । छिन्नकाण्डवद्भूमौ पतति-त्यर्थः ॥ वृत्रतरम् । वृतु वर्तने । स्फायितञ्चीत्यादिना

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


भावे रक्प्रत्ययान्तो वृत्रशब्दः । वृत्रेणावरणेन सर्वं तरतीति वृत्रतरः । तरतेः पचाद्यच् । परादिश्छन्दसि बहुलमित्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम् । तरपि तु व्यत्ययेन । व्यंसम् । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्व उदात्तस्वरितयोर्यण इति स्वरितत्वम् । वधेन । हनश्च वध इति भावेऽप् । तत्संनियोगेन धातो र्वधादेशः । स चान्तोदात्तः । अन्त्यस्याकारस्यातो लोप इति लोप उदात्तनिवृत्तिस्वरेण प्रत्ययस्योदात्तत्वम् । विवृक्णा श्रोव्रश्चू छेदने । कर्मणि निष्ठा । यस्य विभाषेतीट्प्रतिषेधः । श्रोदितश्च । पा० ८.२.४५ । इति परत्वान्निष्ठानत्वम् । ततो व्रश्चभ्रस्जेति पत्वे प्राप्ते निष्ठादेशः पत्वस्वरप्रत्ययेड्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः । पा० ८.२.६.७ । इति नत्वस्य सिद्धत्वेन झलपरत्वाभावात् पत्वं न भवति । कुत्वे तु कर्तव्ये तदसिद्धमेव । पा० ८.२.१ । इति चोः कुरिति कुत्वम् । शेश्छन्दसि बहुलमिति शेर्लोपः । गतिरनन्तर इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् । शयते । बहुलं छन्दसीति शपो लुगभावः । पृथिव्याः । उदात्तयणो हल्पूर्वादिति विभक्तेरुदात्तत्वम् ॥५॥

द०—पुनः स तं कीदृशं करोतीत्युपदिश्यते ॥

पदार्थः—(अहन्) हतवान् (वृत्रम्) मेघम् । वृत्रो मेघ इति नैरुक्ताः । निरु० २.१६ । वृत्रं जघ्निवानपववार । तद्वृत्रो वृणोतेर्वा वर्ततेर्वा वर्धतेर्वा यदवृणोत्तद्वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते यदवर्त्तत तद्वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते । यदवर्धत तद्वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते । नि०२.१७। वृत्रो ह वा इदं सर्वं वृत्वा शिश्ये । यदिदमन्तरेण द्यावापृथिवी । स यदिदं सर्वं वृत्वा शिश्ये तस्माद् वृत्रो नाम ॥४॥ तमिन्द्रो जघान, स हतः पूतिः सर्वत एवाऽपोऽभि [प्र] सुस्राव सर्वत इव ह्ययं समुद्रस्तस्माद्यु हैका आपो बीभत्सां चक्रिरे ता उपर्युपरि पुप्लुविरे ॥ श० १।१।३।४-५ । एतैर्गुणैर्युक्तत्वान्मेघस्य वृत्र इति संज्ञा । (वृत्रतरम्) अतिशयेनावरकम् (व्यंसम्) विगता अंसाः स्कन्धवदवयवा यस्य तम् (इन्द्रः) विद्युत् सूर्यलोकाख्य इव सेनाधिपतिः (वज्रेण) छेदकेनोष्मकिरणसमूहेन (महता) विस्तृतेन (वधेन) हन्यते येन तेन (स्कन्धांसीव) शरीरावयवबाहुमूलादीनीव । अत्र 'स्कन्देश्च स्वाङ्गे' । उ० ४।२१४ । अनेनासुन्प्रत्ययो धकारादेशश्च । (कुलिशेन) अतिशितधारेण खड्गेन । अत्र 'अन्येषामपि दृश्यते' इति दीर्घः ।(विवृक्णा) विविधतया छिन्नानि । अत्र 'श्रोव्रश्चू छेदन' इत्यस्मात् कर्मणि निष्ठा । 'श्रोदितश्च' [अ० ८।२।४५] इति नत्वम् । 'निष्ठादेशः पत्वस्वरप्रत्ययेड्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः ।' अ० ८।२।६ । इति वार्तिकेन झलि पत्वे कर्त्तव्ये झलपरत्वाभावात् पत्वं न भवति । 'चोः कु' रिति कुत्वं 'शेश्छन्दसि' इति शेर्लोपः । (अहिः) मेघः (शयते) शेते । अत्र 'बहुलं छन्दसि' इति शपो लुङ् न । (उपपृक्) उप सामीप्यं पृङ्क्ते स्पृशति यः सः (पृथिव्याः) भूमेः ॥५॥

अन्वयः—हे सेनापतेऽतिरथ, त्वं यथेन्द्रो महता वज्रेण कुलिशेन विवृक्णा विच्छिन्नानि स्कन्धांसीव व्यंसं यथा स्यात्तथा वृत्रतरं वृत्रमहन् वधेन हतोऽहिर्मेघः पृथिव्या उपपृक् सन् शयते शेत इव सर्वारीन्हन्याः ॥५॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमोपमालङ्कारौ । यथा कश्चिन्महता शितेन शस्त्रेण शत्रोः शरीरावयवान् छित्वा भूमौ निपातयति स हतः पृथिव्यां शेते तथैवायं सूर्य्यो विद्युच्च मेघावयवान् छित्वा भूमौ निपातयति स भूमौ निहतः शयान इव भासते ॥५॥

Gr.—Indra with his own great and deadly thunder Smote into pieces Vritra worst of Vritras.

As trunks of trees, what time the axe hath felled them, low on the earth so lies the prostrate Dragon.

योगी—इन्द्र ने आवरकतर वृत्र को महान् वध रूप वज्र से छिन्नबाहु करते हुए विशेष रूप से छिन्नकर दिया, जैसे कोई कुठार से [वृक्षों के] स्कन्धों इत्यादि को छिन्न कर देता है । [परिणामतः] अहि (कुटिलगति वाला) पृथ्वी के साथ सामीप्य से सम्पृक्त हुआ शयन कर रहा है ॥५॥

धातुः—विवृक्णा—वि—व्रश्चू छेदने, वृक्षोऽप्येतस्मादेव ।

राजा सर्वमावृत्य स्थितान् राष्ट्रशत्रून् छिनत्ति, तान् निगृह्य कारागारे क्षिपति ।

जीवात्मा दुर्भावनाः पूर्णतया छिनत्ति ॥५॥

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे
महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातरीदस्य समृतिं वधानां
संरुजाना पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥६॥

सा०—दुर्मदो दुष्टमदोपेतो दर्पयुक्तो वृत्रोऽयोद्धेव योद्धृरहित इवेन्द्रमा जुह्वे हि । आहूतवान्खलु । कीदृशमिन्द्रम् ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



महावीरं गुणैर्महान्भूत्वा शौर्योपेतं तुविबाधं बहूनां बाधकम् ऋजीषं शत्रूणामपार्जकम् । अस्येदृशस्येन्द्रस्य सम्बन्धिनो ये शत्रुवधाः सन्ति तेषां वधानां समृतिं संगमं नातारीत् । पूर्वोक्तो दुर्मदस्तरीतुं नाशक्नोत् । इन्द्रशत्रुरिन्द्रः शत्रुर्घातको यस्य वृत्रस्य तादृशो वृत्र इन्द्रेण हतो नदीषु पतितः सन् रुजाना नदीः सं पिपिषे । सम्यक् पिष्टवान् । सर्वान् लोकानावृण्वतो वृत्रदेहस्य पातेन नदीनां कूलानि तत्रत्यपाषाणादिकं चूर्णीभूतमित्यर्थः ॥ अयोद्धा इव । न विद्यते योद्धास्येति बहुव्रीहौ नञ्सुभ्यामित्युत्तरपदान्तोदात्तत्वम्, समासान्तविधेरनित्यत्वात् । परि० ८४। नद्यृतश्च । पा० ५.४.१५३ । इति कबभावः । जुह्वे । ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च । अभ्यस्तस्य च । पा० ६.१.३३। इति संप्रसारणम् । उवङादेशाभावश्छान्दसः । यद्वा । छन्दस्युभयथेति सार्वधातुकसंज्ञायां हुश्नुवोः सार्वधातुके । पा० ६.४८७। इति यणादेशः । अत्र लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषा । परि० १०५।लक्ष्यानुरोधान्नाश्रीयते । इतरथा ह्याजुह्वान इत्यादिषु यणादेशो न स्यात् । न चैवं सति सातये हुवे वाम् । ऋग्वे० ६.६०.१३। इत्यादावपि तथा स्यादिति वाच्यम् । अनेकाच्त्वाभावात् । अनेकाच इति हि तत्रानुवर्तते । प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तत्वम् । हि चेति निघातप्रतिषेधः । महावीरम् । महांश्चासौ वीरश्च महावीरः । आन्महतः । पा० ६.३.४६। इत्यात्वम् । तुविबाधम् । बाधृ विलोडने । तुवीन्प्रभूतान्बाधत इति तुविबाधः । पचाद्यच् । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् । समृतिम् । तादौ चेति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् । रुजानाः । रुजो भङ्गे । रुजन्ति कूलानीति रुजाना नद्यः । रुजाना नद्यो भवन्ति रुजन्ति कूलानि । नि० ६.४। इति यास्कः । व्यत्ययेन शानच् । तुदादिभ्यः शः । नुमभावश्छान्दसः । अदुपदेशाल्लसार्वधातुकानुदात्तत्वे विकरणस्वरः । पिपिषे । पिष्लृ संचूर्णने । व्यत्ययेन लिट् । इन्द्रशत्रुः । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ॥६॥

द०—पुनस्तौ कथं युध्येते इत्युपदिश्यते ॥

पदार्थः—(अयोद्धेव) न योद्धा अयोद्धा तद्वत् (दुर्मदः) दुष्टो मदो यस्य सः (आ) समन्तात् (हि) खलु (जुह्वे) आहूतवानस्मि । वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीत्युवङादेशो न । (महावीरम्) महांश्चासौ वीरश्च तमिव महाकर्षणप्रकाशादिगुणयुक्तं सूर्यलोकम् (तुविबाधम्) यो बहून् शत्रून् बाधते तम् (ऋजीषम्) उपार्जकम् । अत्र 'अर्जेर्ऋज् च' उ० ४।२९ । इत्यर्जधातोरीषन् प्रत्यय ऋजादेशश्च । (न) निषेधार्थे (अतारीत्) तरत्युल्लङ्घयति वा । अत्र वर्त्तमाने लुङ् । (अस्य) सूर्यलोकस्य (समृतिम्) सङ्गतिम् (वधानाम्) हननानाम् (सम्)सम्यगर्थे (रुजानाः) नद्यः । रुजाना इति नदीनामसु पठितम् ।१।१३। (पिपिषे) पिष्टः । अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदं च । (इन्द्रशत्रुः) इन्द्रः शत्रुर्यस्य वृत्रस्य सः ॥६॥

अन्वयः—यथा दुर्मदोऽयोद्धेवायं मेघ ऋजीषन्तु विबाधं महावीरमिन्द्रं सूर्यलोकमाजुह्वे यदा सर्वतो रुतवानिनेन हतोयमिन्द्रशत्रुः संपिपिषे स मेघोऽस्येन्द्रस्य वधानां समृतिं नातारीत्समन्तान्नोल्लङ्घितवान् हि खल्वस्य वृत्रस्य शरीरादुत्पन्ना रुजाना नद्यः पर्वतपृथिव्यादिकूलान् छिन्दन्त्यश्चलन्ति तथा सेनासु विराजमानोऽध्यक्षः शत्रुषु चेष्टेत ॥६॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा मेघो जगत्प्रकाशाय प्रवर्त्तमानस्य सूर्य्यस्य प्रकाशमकस्मादुत्थायावृत्य च तेन सह युध्यत इव प्रवर्त्ततेऽपितु सूर्य्यस्य सामर्थ्याय नालम् । यदायं सूर्येण हतो भूमौ निपतति तदा तच्छरीरावयवेन जलेन नद्यः पूर्णा भूत्वा समुद्रं गच्छन्ति तथा राजा शत्रून् हत्वाऽस्तं नयेत् ॥६॥

Gr. He, like a mad weak warrior, challenged Indra, the great impetuous many-slaying Hero.

He, brooking not the clashing of the weapons, crushed—Indra's foe—the shattered forts in falling.

यास्कः—रुजानाः नद्यः 'रुजन्ति कूलानि । दुर्मः—दुर्मद =दुर्मत्तो वाङ्मात्रसारः । ऋजीषम् = ऋजीषिणम् =वज्रिणम् । समृतिम् =समागमम् ।

योगी—उन्मत्त अकुशल योद्धा के समान [वृत्र ने] महान् वीर, अनेक शत्रुओं में उथल पुथल मचा देने वाले, शत्रुओं के अपार्जक इन्द्र को ललकारा । वह इन्द्रशत्रु इस इन्द्र द्वारा किए गए वधों के संगम का मुकाबला नहीं कर सका और [गिरते हुए] उसने नदियों (नदियों के कूलों) को कुचल डाला ॥६॥

धातुः—जुह्वे — ह्वेञ् आह्वाने । रुजानाः रुज् भङ्गे ।

राष्ट्रे दुष्टजना राष्ट्रघातककार्यनिरता भूत्वा जनान् सन्तापयन्ति, आत्मनश्च शूरान् मन्यन्ते । राज्ञ इदं कर्तव्यं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



यत्तेषां प्रबलमनुशासनं विदधातु । इमे जना यदा यदा नष्टा भवन्ति तदा सर्वे दुर्वृत्तताप्रवाहाः स्फुटीभवन्ति, बहूनां कपटप्रबन्धानामनावरणं भवति, येन राज्ञः कृते नियन्त्रणं सुगमतरं भवति ।

दुर्भावना बहुभिरुपायैर्जीवात्मना सह युध्यन्ते । परं मनुष्येणेदमवगन्तव्यं यज्जीवात्मनः शक्तिर्महामहती विद्यते । यदा जीवात्मा स्वपरमात्मरूपं बुध्यति तदा सर्वा दुर्भावनाः प्रवाहिता भवन्ति ॥६॥

**अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्र-**
**मास्य वज्रमधि सानौ जघान ।**
**वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूष-**
**न्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥७॥**

सा०—अपाद्धस्तेन च्छिन्नत्वात्पादरहितः अहस्तो हस्तरहितो वृत्र इन्द्रमुद्दिश्यापृतन्यत् । पृतनां युद्धमैच्छत् । द्वेषाधिक्येन बहुधा विद्धोऽपि युद्धं न परित्यक्तवानित्यर्थः । अस्य हस्तपादहीनस्य वृत्रस्य सानौ पर्वतसानुसदृशे प्रौढस्कन्धेऽध्युपरि वज्रमा जघान । इन्द्र आभिमुख्येन प्रक्षिप्तवान् । अशक्तस्यापि युद्धेच्छायां दृष्टान्तः । वध्रिश्छिन्नमुष्कः पुरुषो वृष्णो रेतःसेचनसमर्थस्य पुरुषान्तरस्य प्रतिमानं सादृश्यं बुभूषन् प्राप्तुमिच्छन् यथा न शक्नोति तद्वदयमिति शेषः । स वृत्रः पुरुत्रा बहुष्ववयवेषु व्यस्तो विविधं क्षिप्तस्ताडितः सन् अशयत् । भूमौ पतितवान् ॥ अपात् । बहुव्रीहौ पादशब्दस्यान्त्यलोपश्छान्दसः । अहस्तः । बहुव्रीहौ नञ्सुभ्यामित्युत्तरपदान्तोदात्तत्वम् । अपृतन्यत् । सुप आत्मनः क्यच् । कव्यध्वरपृतनस्येत्यन्त्यलोपः । बुभूषन् । सनि ग्रहगुहोश्च । पा० ७.२.१२। इतीट्प्रतिषेधः । पुरुत्रा । देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम् । पा० ५.४.५६। इति सप्तम्यर्थे त्राप्रत्ययः । अशयत् । व्यत्ययेन परस्मैपदम् । बहुलं छन्दसीति शपो लुगभावः । व्यस्तः । असु क्षेपणे इत्यस्मात्कर्मणि क्तः । यस्य विभाषेतीट्प्रतिषेधः । गतिरनन्तर इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् । संहितायामुदात्तस्वरितयोर्यण इति परस्यानुदात्तस्य स्वरितत्वम् ॥७॥

द०—पुनः स कीदृशो भूत्वा भूमौ पततीत्युपदिश्यते ॥

पदार्थः—(अपात्) अविद्यमानौ पादौ यस्य सः (अहस्तः) अविद्यमानौ हस्तौ यस्य सः (अपृतन्यत्) आत्मनः पृतनां युद्धमिच्छतीति । अत्र कव्यध्वरपृतनस्येति लोपः । अ०७।४।३९। इत्याकारलोपः । (इन्द्रम्) सूर्यलोकम् (आ) समन्तात् (अस्य) वृत्रस्य (वज्रम्) स्वकिरणाख्यम् (अधि) उपरि (सानौ) अवयवे (जघान) हतवान् (वृष्णः) वीर्यसेक्तुः पुरुषस्य (वध्रिः) बध्यते स वध्रिः । निर्वीर्यो नपुंसकमिव । अत्र बन्धधातोर्बाहुलकादौणादिकः क्रिन् प्रत्ययः । (प्रतिमानम्) सादृश्यं परिमाणं वा (बुभूषन्) भवितुमिच्छन् (पुरुत्रा) बहुषु पतितः सन् । अत्र देवमनुष्यपुरुष० ।५।४।५६। इति त्राप्रत्ययः । (वृत्रः) मेघः (अशयत्) शयितवान् । व्यत्ययेन परस्मैपदम् । बहुलं छन्दसीति शपो लुङ् न । (व्यस्तः) विविधतया प्रक्षिप्तः ॥७॥

अन्वयः—हे सर्वसेनास्वामिंस्त्वं यथा वृत्रो वृष्णः प्रतिमानं बुभूषन् वध्रिरिवयमिन्द्रं प्रत्यपृतन्यदात्मनः पृतनामिच्छँस्तस्यास्य वृत्रस्य सानावधि शिखराकाराघनानामुपरीन्द्रसूर्य्यलोको वज्रमाजघानैतेन हतः सन्वृत्रोऽपादहस्तो व्यस्तः पुरुत्राशयद्बहुषु भूमिदेशेषु शयान इव भवति तथैवंभूतान् शत्रून् भित्त्वा छित्त्वा सतत विजयस्व ॥७॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा कश्चिन्निर्बलो बलवता सह युद्धं कर्त्तुं प्रवर्त्तेत तथैव वृत्रो मेघः सूर्येण सह युद्धकारीव प्रवर्त्तते यथान्ते सूर्येण छिन्नो भिन्नः सन् पराजितः पृथिव्यां पतति तथैव यो धार्मिकेण राज्ञा सह योद्धुं प्रवर्तेत तस्यापीदृश्येव गतिः स्यात् ॥७॥

Gr. Footless and handless still he challenged Indra, who smote him with his bolt between the shoulders.

Emasculate yet claiming manly vigour, thus Vrita lay with scattered limbs dissevered.

योगी—पांवों और हाथों से रहित वृत्र ने इन्द्र से युद्ध करना चाहा । इन्द्र ने इस के पर्वतसदृश प्रौढ़ कन्धे पर वज्र का प्रहार किया । [वृत्र इन्द्र से युद्ध करने चला था] उसका यह कार्य उस नपुंसक के समान था जो वीर्यसेचनसमर्थ पुरुष के समान होना चाहे । [परिणामतः] नाना प्रकार से बहुत अंगों में ताड़ित हुआ हुआ वृत्र धराशायी हो गया ॥७॥

दुष्टजना चिन्तयन्ति यद् 'वयं शक्तिमन्तः स्मः' । वस्तुतस्तु ते पादहस्तहीनाः सन्ति । दुष्कार्यरतास्ते भीरवः प्रच्छन्नास्तिष्ठन्ति, न बहु चलितुं समर्थाः (अपादाः), न

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



च बहु कर्तुं समर्थाः (अहस्ताः)। यदि राजा शक्तिशाली स्यात्, तदा तेषां पूर्णो ध्वंसो भवति। यस्य राज्ञः शासने दुष्टानां निग्रहो न भवति, स राजा वस्तुतो राजपदयोग्यो न भवति। आह कविकुलगुरुः—'क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः। तथा च महाभारते—कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्। इति ते संशयो मा भूद् राजा कालस्य कारणम्।

मनुष्यान्तर्गतदुर्भावना वस्तुतोऽत्यन्तमकिञ्चित्कराः सन्ति। जीवात्मा महाशक्तिशाली वर्त्तत इति मनुष्येण सम्यगवबोध्यम्। मनुष्येण मुहुर्मुहुः प्रतिक्षणं स्ववीर्यवत्स्वरूपं स्मर्तव्यम् ॥७॥

२ ३ १
नदं न भिन्नममुया शयानं
मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठ-
त्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥८॥

सा०—अमुयामुष्यां पृथिव्यां शयानं पतितं मृतं वृत्रमापो जलान्यति यन्ति। अतिक्रम्य गच्छन्ति। तत्र दृष्टान्तः। भिन्नं बहुधा भिन्नकूलं नदं न सिन्धुमिव। यथा वृष्टिकाले प्रभूता आपो नद्यः भित्त्वातिक्रम्य गच्छन्ति तद्वत्। कीदृश्य आपः। मनो रुहाणाः। नृणां चित्तमारोहन्त्यः। पुरा वृत्रे जीवति सति तेन निरुद्धा मेघस्थिता आपो भूमौ वृष्टा न भवन्ति। तदानीं नृणां मनः खिद्यते। मृते तु वृत्रे निरोधरहिता आपो वृत्रशरीरमुल्लङ्घ्य प्रवहन्ति। तदा वृष्टिलाभेन तु मनुष्यास्तुष्यन्तीत्यर्थः। तदेतदुत्तरार्धेन स्पष्टीक्रियते। वृत्रो जीवनदशायां महिना स्वकीयेन महिम्ना याश्चिद्या एव मेघगता अपः पर्यतिष्ठत् परिवृत्य स्थितवान् अहिर्वृत्रो मेघस्तासामपां पत्सुतःशीः पादस्याधःशयानो बभूव। यद्यप्यपां पादो नास्ति तथाप्यद्भिर्वृत्रस्याभिलङ्घितत्वात्पादस्याधः शयनमुपपद्यते॥ भिन्नम्। रदाभ्यां निष्ठातो नः। पा० ८.२.४२। इति नत्वम्। अमुया। सुपां सुलुगिति सप्तम्या याजादेशः। शयानम्। शीङः सार्वधातुके गुणः। पा० ७.४.२१। धातोर्ङित्त्वाल्लसार्वधातुकानुदात्तत्वे धातुस्वरः। रुहाणाः। रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे। व्यत्ययेन शानच्। कर्तरि शपि प्राप्ते व्यत्ययेन शः। अनित्यमागमशासनमिति वचनान्मुगभावः। अदुपदेशाल्लसार्वधातुकानुदात्तत्वे विकरणस्वरे प्राप्ते [illegible] महिना मह पूजायाम्। इन्सर्वधातुभ्यः। उ० ४.११७। इतीन्प्रत्ययः। व्यत्ययेन विभक्तेरुदात्तत्वम्। यद्वा महिना महिम्ना। महच्छब्दस्य पृथ्वादिषु पाठात्तस्य भाव इत्येतस्मिन्नर्थे पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा। पा० ५. १.१२२। इतीमनिच्प्रत्ययः। टेरिति टिलोपः। चित इत्यन्तोदात्तत्वम्। तृतीयैकवचनेऽल्लोपे सत्युदात्तनिवृत्तिस्वरेण तस्योदात्तत्वम्। मकारलोपश्छान्दसः। पत्सुतःशी। पादस्याधः शेत इति पत्सुतःशीः। क्विप्चेति क्विप्। तसि पद्दन्नित्यादिना पादशब्दस्य पदादेशः। शस्प्रभृतिष्विति प्रभृतिशब्दः प्रकारवचन इति शला दोषणीत्यत्रापि दोषन्नादेशो भवति। का० ६.१.६३। इत्युक्तत्वात्। मध्ये सु इति शब्दोपजनश्छान्दसः। यद्वा पादशब्दस्य सप्तम्यर्थबहुवचने पदादेशे कृत इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते। पा० ५.३.१४। इति सप्तम्यर्थे तसिल्। लुगभावश्छान्दसः ॥८॥

द०—पुनस्तौ परस्परं किं कुरुत इत्युपदिश्यते॥

पदार्थः—(नदम्) महाप्रवाहयुक्तम् (न) इव (भिन्नम्) विदीर्णतटम् (अमुया) पृथिव्या सह (शयानम्) कृतशयनम् (मनः) अन्तःकरणमिव (रुहाणाः) प्रादुर्भवन्त्यश्चलन्त्यो नद्यः (अति) अतिशयार्थे (यन्ति) गच्छन्ति (आपः) जलानि। आप इत्युदकनामसु पठितम्। निघं० १.१२। (याः) मेघमण्डलस्थाः (चित्) एव (वृत्रः) मेघः (महिना) महिम्ना। अत्र 'छान्दसो वर्णलोपो वा' इति मकारलोपः। (पर्यतिष्ठत्) सर्वत आवृत्य स्थितः (तासाम्) अपां समूहः (अहिः) मेघः (पत्सुतःशीः) यः पादेष्वधः शेते सः। अत्र सप्तम्यन्तात्पादशब्दात्। इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते। अ० ५।३।१४। इति तसिल्। वा 'छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ती'ति विभक्त्यलुक्। शीङ्धातोः क्विप् च। (बभूव) भवति। अत्र लडर्थे लिट् ॥८॥

अन्वयः—भो महाराज त्वं यथायं वृत्रो मेघो महिना स्वमहिम्ना पर्यतिष्ठन्निरोधको भूत्वा सर्वतः स्थितोऽहिर्हतः सन् तासामपां मध्ये स्थितः पत्सुतःशीर्बभूव भवति तस्य शरीरं मनोरुहाणा याश्चिदेवान्तरिक्षस्था आपो भिन्नशयानं यन्ति नदं नेवामुया भूम्या सह वर्त्तन्ते तथैव सर्वान् शत्रून् बद्ध्वा। वशं नय ॥८॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यावज्जलं सूर्येण छेदितं वायुना सह मेघमण्डलं गच्छति तावत्सर्वं मेघ एव जायते यदा जलाशयोऽतीव वर्धते तदा [illegible] स्वविस्तारेण सूर्यज्योतिर्निरुणद्धि तं यदा सूर्यः स्वकिरणैश्छिनत्ति तदायमितस्ततो जलानि महानदं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



तडागं समुद्रं वा प्राप्य शेरते सोऽपि पृथिव्यां यत्र तत्र शयानः सन् मनुष्यादीनां पादाघ इव भवत्येवमधार्मिकोऽप्येधित्वा सद्यो नश्यति ॥८॥

Gr. There as he lies like a bank-bursting river, the waters taking courage flow above him.

The Dragon lies beneath the feet of torrents which Vritra with his greatness had encompassed.

योगी—[वृत्रवध—वृष्टि–हो जाने पर] जल (व्याप्त हुए हुए जल) इस पृथ्वी के साथ स्थित, भिन्नकूल, नाद करते हुए नद को (नदकूलों को) पार करके चले जाते हैं। [ये जल कुछ काल पूर्व मेघ रूपों में थे और न बरसने के कारण] मनुष्यों के मन पर भारस्वरूप होकर स्थित थे। [वृष्टि से पूर्व] वृत्र ने इन जलों को अपनी महिमा (शक्ति) से थाम (रोक) रखा था। अब वह अहि (वृत्र, मेघ) उन जलों के पांवों के नीचे पड़ा है ॥८॥

राष्ट्रे दुष्टजना घनजनानामुन्मुक्तसंचारं निरुध्य तिष्ठन्ति। अनेन सज्जनानां मनांसि चेखिद्यन्ते। परन्तु यदि राजा शक्तिशाली भवेत्, तदा सर्वे कुटिलगतयो दुर्मतयो दुष्टा भूपतिता भवन्ति।

दुर्भावना जीवात्मानमावृत्य तिष्ठन्ति। कस्मात्? यतस्ता मनो रुहाणाः' सन्ति, मनो वशीकुर्वन्ति। यदा आत्मा जागर्ति तदा दुर्भावना नश्यन्ति उक्तं हि गीतासु—**'यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्। ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥** आत्मैव बोधनीयः—**'उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥' 'बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः। आत्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥८॥**

**नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रे-**
**न्द्रो अस्या अव वधर्जभार।**
**उत्तरा सूरधरः पुत्र आसी-**
**दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥९॥**

सा०—वृत्रपुत्रा वृत्रः पुत्रो यस्या मातुः सेयं माता वृत्रपुत्रा नीचावया न्यग्भावं प्राप्ता हताऽभवत्। पुत्रं प्रहाराद्रक्षितुं पुत्रदेहस्योपरि तिरश्ची पतितवतीत्यर्थः। तदानीमयमिन्द्रो अस्या मातुरवाधोभागे वृत्रस्योपरि वधो हननसाधनमायुधं जभार। प्रहृतवान्। तदानीं सूर्मातोत्तरोपरि स्थितासीत्। पुत्रस्त्वधोभागस्थित आसीत्। सा च दानुर्दानवी वृत्रमाता शये। मृता शयनं कृतवती। तत्र दृष्टान्तः। धेनुर्लोकप्रसिद्धा गौः सहवत्सा न। यथा वत्ससहिता शयनं करोति तद्वत्॥ नीचावयाः। वेति खादतीति वयो बाहुः। श्रीणादिकोऽसिच्प्रत्ययः। न्यञ्चौ वयसौ यस्याः सा नीचावयाः। न्यच्शब्दादुत्तरस्या विभक्तेः सुपां सुपो भवन्तीति तृतीयैकवचनादेशः। अच इत्यकारलोपे चाविति दीर्घत्वम्। अञ्चेश्छन्दस्यसर्वनामस्थानम्। पा० ६.१.१७०। इति तस्योदात्तत्वम्। समासे लुगभावश्छान्दसः बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्। यद्वा नीचौ निकृष्टौ वयसौ यस्याः सा। पूर्वपदस्य दीर्घश्छान्दसः। वधः। हन्यतेऽनेनेति वधः। असुनि हन्तेर्वधादेशः। नित्त्वादाद्युदात्तत्वम्। जभार। हृग्रहोर्भ इति भत्वम्। सूः। षूङ् प्राणिगर्भविमोचने। सूते गर्भं विमुञ्चतीति सूर्माता। विवप्चेति क्विप्। दानुः। दो अवखण्डने। दाभाभ्यां नुः। उ० ३.३२। शये। लटि 'लोपस्त आत्मनेपदेषु'। पा० ७.१.४१। इति तलोपः। शीङ सार्वधातुक इति गुणेऽयादेशः ॥९॥

द०—पुनः स कीदृशो भवतीत्युपदिश्यते॥

पदार्थः—(नीचावयाः) नीचानि वयांसि यस्य मेघस्य सः। (अभवत्) भवति। अत्र वर्त्तमाने लङ्। (वृत्रपुत्रा) वृत्रः पुत्र इव यस्याः सा (इन्द्रः) सूर्य्यः (अस्याः) वृत्रमातुः (अव) क्रियायोगे (वधः) वधम्। अत्र हन्तेर्बाहुलकादौणादिकेऽसुनि वधादेशः। (जभार) हरति। अत्र वर्त्तमाने लिट्। हृग्रहोर्हस्य भश्छन्दसि वक्तव्यमिति भादेशः। (उत्तरा) उपरिस्थाऽन्तरिक्षाख्या (सूः) सूयत उत्पादयति या सा माता। अत्र षूङ्धातोः क्विप्। (अधरः) अधस्थः (पुत्रः) (आसीत्) अस्ति। अत्र वर्त्तमाने लङ्। (दानुः) ददाति या सा। अत्र दाभाभ्यां नुः। उ० ३।३१। इति नुः प्रत्ययः। (शये) शेते। 'अत्र लोपस्त आत्मनेपदेषु'। अ० ७।१।४१। इति लोपः। (सहवत्सा) या वत्सेन सह वर्त्तमाना (न) इव (धेनुः) यथा दुग्धदात्री गौः ॥९॥

अन्वयः—हे सभाध्यक्ष त्वं यथा वृत्रपुत्रा सूर्भूमिरुत्तरान्तरिक्षं वाऽभवदस्याः पुत्रस्य वधो वधमिन्द्रोऽवजभारानेनास्याः पुत्रो नीचावया अधर आसीत्। दानुः सहवत्सा धेनुः स्वपुत्रेण सममिव च शये शेते तथा स्वशत्रून् पृथिव्या सहशयानान् कुरु ॥९॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः। वृत्रस्य द्वे मातरौ वर्त्तेते एका पृथिवी द्वितीयाऽन्तरिक्षं चैतयोर्द्वयोः सकाशादेव वृत्रस्योत्पत्तेः। यथा काचिद् गौः स्ववत्सेन सह वर्त्तते तथैव यदा जलसमूहो मेघ उपरि गच्छति तदाऽन्तरिक्षाख्या माता स्वपुत्रेण सह शयाना इव दृश्यते। अस्य मेघस्य पितृस्थानी सूर्य्योऽस्ति तस्योत्पादकत्वात्। अस्य हि भूम्यन्तरिक्षे द्वे स्त्रियाविव वर्त्तेते यदा स जलमाकृष्य वायुद्वारान्तरिक्षे प्रक्षिपति तदा सपुत्रो मेघो वृद्धिं प्राप्य प्रमत्त इवोन्नतो भवति सूर्यस्तमाहत्य भूमौ निपातयत्येवमयं वृत्रः कदाचिदुपरिस्थः कदाचिदधःस्थो भवति तथैव राजपुरुषैः प्रजाकण्टकान् शत्रूनितस्ततः प्रक्षिप्य प्रजाः पालनीयाः ॥९॥

Gr.—Then humbled was the strength of Vritra's mother : Indra hath cast his deadly bolt against her.

The mother was above, the son was under, and like a cow beside her calf lay Danu.

योगी—वृत्र है पुत्र जिसका ऐसी माता 'निम्न' तथा 'अधः' गति को प्राप्त हुई, इन्द्र ने इसके वध के साधन आयुध से उस पर प्रहार किया, ऊपर जननी थी और नीचे पुत्र था। अन्त में वह दानवी वृत्रमाता मर कर धराशायी हो गई, जैसे कोई वत्स के साथ धेनु ॥९॥

राज्ञ इदं कर्त्तव्यं यदसौ दुष्टानां मातरं (मूलकारणं) विनाशयतु। दुष्टानां निग्रहस्तु श्रेयान् अस्त्येव, परमेतावदेव पर्याप्तं नास्ति। राष्ट्रे समृद्धिवर्धनं सुव्यवस्थास्थापनञ्चापि कर्तव्यम्। यदा राष्ट्रं समृद्धिरहितं भवति, तदापि पापानि (पापाश्च) वर्धन्ते 'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्'। केवलं दण्डधारणेनैव राजा न भवति। आह कविकुलगुरुर्दिलीपविषये—'प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि। स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः'॥ तथा च 'राजा प्रकृतिरञ्जनाद्'। एवं सुशासनस्थापनया प्रजारक्षणमपि राज्ञः परमं कर्तव्यम्। बहून् वारान् उत्पीडिता निर्धनाः सज्जना सन्तोऽपि विवशतया दस्यवो भवन्ति। वृत्रवधस्तु कर्तव्य एव, वृत्रस्य माता (निर्मातृकारणम्) अपि समुच्छेद्या। मातृसहितो वृत्रो हन्तव्यः समृद्धिसुशासनादि प्रथमं कर्तव्यम्, अनेन सार्धमेव दण्डादिभिर्निग्रहः शोभते।

जीवात्मा दुर्भावनानां निग्रहं विधित्सति। परन्तु मुहुर्मुहु र्मनस्ताः प्रति धावति चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्। अस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥ (गीता)

रजोगुणतमोगुणौ दुर्भावनानां मातृरूपेण स्तः। एतदतिरिक्तमज्ञानम् (अविद्या), अतत्त्वदर्शनम्, अप्रबोधः—सर्वाणीमानि दुर्भावनानां मातृरूपाणि—

अज्ञानेना वृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः (गीता)

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणिसस्मसात्कुरुतेऽर्जुन (गीता)

दर्शनेषु त्रिविधदुःखकारणम् (माता) अविद्येति कथितम्। यदाऽविद्या निवर्तते तदा सर्वकर्मशुद्धिर्भवति—न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते (गीता) ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् (गीता) ॥८॥

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां
काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो
दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥१०॥

सा०—वृत्रस्य शरीरमापो वि चरन्ति। विशेषेणोपर्यधश्च प्रवहन्ति। कीदृशं शरीरम्। निण्यं निर्गोपेयम्। अन्तु मग्नत्वेन गूढत्वात्तदीयं नाम न केनापि ज्ञायते। एतदेव स्पष्टीक्रियते। काष्ठानामपां मध्ये निहितं निक्षिप्तम्। कीदृशानां काष्ठानाम्। अतिष्ठन्तीनां स्थितिरहितानाम्, अनिवेशनानामुपवेशनरहितानाम्। प्रवहणस्वभावात्तासां मनुष्यवन्न क्वापि स्थितिः सम्भवति। इन्द्रभयपूर्वं मेघो जलमध्ये शरीरे प्रक्षिप्ते सति दीर्घं तमो दीर्घं निद्रात्मकं मरणं यथा भवति तथा आशयत्। सर्वतः प्रतिशेते॥ अतिष्ठन्तीनाम्। अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्। अनिवेशनानाम्। निविशन्तेऽस्मिन्निति निवेशनं स्थानम्। करणाधिकरणयोश्चेत्यधिकरणे ल्युट्। तद्रहितानाम्। बहुव्रीहौ नञ्सुभ्यामित्युत्तरपदान्तोदात्तत्वम्। कात्वा स्थिताः काष्ठाः। पृषोदरादि। निहितम्। गतिरनन्तर इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम्॥ अत्र यास्कः। अतिष्ठन्तीनामनिविशमानानामित्यस्थावराणां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरं मेघः। शरीरं शृणातेः शम्नातेर्वा। वृत्रस्य निण्यं निर्णामं विचरन्ति विजानन्त्यापः इति दीर्घं द्राघतेस्तमस्तनोतेः राशयदाशेतेरिन्द्रशत्रुरिन्द्रोऽस्य शमिता वा शातयिता वा तस्मादिन्द्रशत्रुः। तत्को वृत्रो मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः। नि. २.१६। इति ॥१०॥

द०—पुनस्तस्य शरीरं कीदृशं क्व तिष्ठतीत्युपदिश्यते॥

पदार्थः—(अतिष्ठन्तीनाम्) चलन्तीनामपाम् (अनिवेशनानाम्) अविद्यमानं निवेशनमेकत्र स्थानं यासां

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



तासाम् (काष्ठानाम्) काश्यन्ते प्रकाश्यन्ते यासु ता दिशः। काष्ठा इति दिङ्नामसु पठितम्। निघं० १।६। अत्र हनिकुषि० । उ० २।२ इति क्थन् प्रत्ययः। (मध्ये) अन्तः (निहितम्) स्थापितम् (शरीरम्) शीर्यते हिंस्यते यत्तत् (वृत्रस्य) मेघस्य (निण्यम्) निश्चिन्तान्तर्हितम्। निण्यमिति निर्णीतान्तर्हितनामसु पठितम्। निघं० ३।२५। (वि) (चरन्ति) विविधतया गच्छन्त्यागच्छन्ति (अपः) जलानि (दीर्घम्) महान्तम् (तमः) अन्धकारम् (आ) समन्तात् (अशयत्) शेते। बहुलं छन्दसीति शपो लुङ् न। (इन्द्रशत्रुः) इन्द्रः शत्रुर्यस्य स मेघः यास्कमुनिरेवमिमं मन्त्रं व्याचष्टे। अतिष्ठन्तीनामनिविशमानानामित्यस्थावराणां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरं मेघः शरीरं शृणातेः शम्नातेर्वा वृत्रस्य निण्यं निर्णामं विचरन्ति विजानन्त्याप इति दीर्घं द्राघतेस्तमस्तनोतेराशयदाशेतेरिन्द्रशत्रुरिन्द्रोस्य शमयिता वा शातयिता वा तस्मादिन्द्रशत्रुस्तत्को वृत्रो मेघ इति नैरुक्ताः। निरु० २।१६।—॥१०॥

**अन्वयः**—भोः सभेश त्वया यथा यस्य मेघस्य निवेशनानामतिष्ठन्तीनामपां निण्यं शरीरं काष्ठानां दिशां मध्ये निहितमस्ति यस्य च शरीराख्या आपो दीर्घं तमो विचरन्ति स इन्द्रशत्रुर्मेघस्तासामपां मध्ये समुदायावयविरूपेणाशयत् समन्ताच्छेते तथा प्रजायाः द्रोग्धारः ससहायाश्शत्रवो वदध्वा काष्ठानां मध्ये शाययितव्याः ॥१०॥

**भावार्थः**—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। सभापतेर्योग्यमस्ति यथाऽयं मेघोऽन्तरिक्षस्थास्वप्सु सूक्ष्मत्वान्न दृश्यते पुनर्यदा घनाकारी वृष्टिद्वारा चलसमुदायरूपो भवति तदा दृष्टिपथमागच्छति परन्तु या इमा आप एकं क्षणमपि स्थितिं न लभन्ते किन्तु सर्वदैवोपर्यधो गच्छन्त्यागच्छन्ति च याश्च वृत्रस्य शरीरं वर्तन्ते ता अन्तरिक्षे स्थिता अतिसूक्ष्मा नैव दृश्यन्ते तथा महाबलान् शत्रून् सूक्ष्मबलान् कृत्वा वशं नयेत् ॥१०॥

Gr—Rolled in the midst of never-ceasing currents flowing without a rest forever onward, The waters bear off Vritra's nameless body: the foe of Indra sank to during darkness.

**योगी**—न ठहरती हुई [अतः] एक निश्चित स्थान पर न रहने वाली (गृहविहीन) जलधाराओं के मध्य में [वृत्र का] शरीर स्थापित है। वृत्र के नामधेयरहित (अथवा छिपे हुए) [शरीर] पर जल-धाराएं विचरण करती हैं, इन्द्रशत्रु (वृत्र) दीर्घ अन्धकार में सोया पड़ा है ॥१०॥

काष्ठानाम्—सा० अपाम्, द० दिशानाम् (नि० काष्ठा=दिशा)।

राष्ट्रे दस्यूनां निग्रहो दुष्करो जायते, यतस्ते सदैवेतस्ततो भ्रमन्ति, नैकस्मिन् निश्चिते स्थाने गृहे वा वसन्ति, सदैवान्धकारे तिष्ठन्ति, न प्रकाशे समायान्ति। राज्ञ इदं कर्त्तव्यं यदसौ गुप्तचराणां साहाय्येन तान् जानातु समुन्मूलयतु च—'राजानश्चारचक्षुषः'। यस्मिन् राज्ये गुप्तचरविभागः शिथिलो भवति, तत्र दुष्टनिग्रहोऽसंभाव्य एव।

मानवस्य हृदये दुर्भावना गुप्तास्तिष्ठन्ति। उपरिदृष्ट्या तु ताः प्रायो दुर्भावना एव न भासन्ते, यतस्ता अतिमोहनरूपं धारयित्वा संमुखमागच्छन्ति। जीवात्मन इदं कर्त्तव्यं यत्स तासां वास्तविकरूपं सावधानजागरूकदृष्ट्या जानातु; यतः—

**यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति। यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥** (ऋग्वेदः) ॥१०॥

**दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।**
**अपां बिलमपिहितं यदासीद्**
**वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥११॥**

सा० —दासपत्नीः। दासो विश्वोपक्षपणहेतुर्वृत्रः पतिः स्वामी यासामपां ता दासपत्नीः। अत एवाहिगोपाः। अहिर्वृत्रो गोपा रक्षको यासां ताः। गोपनं नाम स्वच्छन्देन यथा न प्रवहन्ति तथा निरोधनम्। एतदेव स्पष्टीक्रियते। आपो निरुद्धा अतिष्ठन्निति। तत्र दृष्टान्तः। पणिनेव गावः। पणिनामकोऽसुरो गा अपहृत्य बिले स्थापयित्वा बिलद्वारमाच्छाद्य यथा निरुद्धवांस्तथेत्यर्थः। अपां यद्बिलं प्रवहणद्वारमपिहितं वृत्रेण निरुद्धमासीत् तद्बिलं प्रवहणद्वारं वृत्रं जघन्वान्हतवानिन्द्रोऽप ववार। अपवृतमकरोत्। वृत्रकृतमपां निरोधं परिहृतवान्। अत्र यास्कः। दासपत्नीर्दासाधिपत्न्यो दासो दस्यतेरुपदासयति कर्माण्यहिगोपा अतिष्ठन्नहिना गुप्ताः। अहिरयनादेत्यन्तरिक्षेऽयमपीतरोऽहिरेतस्मादेव निर्हंसितोपसर्ग आहन्तीति। निरुद्धा आपः पणिनेव गावः। पणिर्वणिग्भवति पणिः पणनाद्वणिक् पण्यं नेनेक्ति। अपां बिलमपिहितं यदासीत्। बिलं भरं भवति बिभर्तेर्वृत्रं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



जघ्निवानपववार तद्वृत्रो वृणोतेर्वा वर्ततेर्वा वर्धतेर्वा यदवृणोत्तद्वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते । यदवर्तत तद्वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते । यदवर्धत तद्वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते । नि० २.१७। इति ॥ दासपत्नीः । दसु उपक्षये । दासयतीति दासो वृत्रः । पचाद्यच् । चित इत्यन्तोदात्तत्वम् । दासः पतिर्यासां 'विभाषा सपूर्वस्य' । पा० ४.१.३४) इति ङीप् । तत्सन्नियोगेनेकारस्य नकारः । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । यद्वा । दासस्य पालयित्र्यः । पत्यावैश्वर्य इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । अहिगोपाः । गुपू रक्षणे । गोपायतीति गोपाः । आयादय आर्धधातुके वा । पा० ३.१.३१। इत्यायप्रत्ययः । ततः क्विप् । अतो लोपः । वेरपृक्तलोपाद्वलि लोपो बलीयानिति पूर्वं यकारलोपः । पा० ६-१.६६-६७। न चाचः परस्मिन्नित्यतो लोपस्य स्थानिवत्त्वम् । न पदान्तद्विर्वचनेति प्रतिषेधात् । अहिर्गोपाः यासाम् पूर्ववत्स्वरः । निरुद्धाः । रुधिर् आवरणे भ्रुस्तथोर्धोऽधः । पा० ८.२.४०। इति निष्ठातकारस्य धकारः । गतिरनन्तर इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् । जघन्वान् । हन्तेर्लिटः क्वसुः । अभ्यासाच्च । पा०७.३.५५ । इत्यभ्यासादुत्तरस्य हकारस्य कुत्वम् । क्रादिनियमप्राप्तस्येटो विभाषा गमहनेत्यादिना । पा० ७.२.६८। विकल्पविधानादभावः । संहितायां नकारस्य रुत्वानुनासिकावुक्तौ ॥११॥

द०—पुनः सूर्यस्तं प्रति किं करोतीत्युपदिश्यते ॥

पदार्थः—दासपत्नीः दास आश्रयदाता पतिर्यासां ताः । अत्र सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णादेशः । (अहिगोपाः) अहिना मेघेन गोपा गुप्ता आच्छादिताः (अतिष्ठन्) तिष्ठन्ति । अत्र वर्त्तमाने लङ् । (निरुद्धाः) संरोधं प्रापिताः (आपः)जलानि (पणिनेव) गोपालेन वणिग्जनेनेव (गावः) पशवः) (अपाम्) जलानाम् (बिलम्) गर्त्तम् (अपिहितम्) आच्छादितम् (यत्) पूर्वोक्तम् (आसीत्) अस्ति । अत्र वर्त्तमाने लङ् । (वृत्रम्) सूर्यप्रकाशावरकं मेघम् (जघन्वान्) हन्ति । अत्र वर्त्तमाने लिट् । (अप) दूरीकरणे (तत्) द्वारम् (ववार) वृणोत्युद्घाटयति । अत्र वर्त्तमाने लिट् । वाक्यमुनिरिमं मन्त्रमेवं व्याचष्टे । दासपत्नीर्दासाधिपत्न्यो दासो दस्यते क्षयं दासयति कर्मण्यहिगोपा अतिष्ठन्नहिना गुप्ताः । अहिर्यनादेत्यन्तरिक्षेऽयमपीतरोऽहिरेतस्मादेव निह्नुतोपसर्गं आहन्तीति । निरुद्धा आपः पणिनेव गावः । पणिर्वणिग्भवति पणिः पणनाद्वणिक् पण्यं नेनेक्ति । अपां बिलमपिहितं यदासीत् । बिलम्भरं भवति बिभर्त्ति वृत्रं जघ्निवानपववार। निरु० २।१७।—॥११॥

अन्वयः—हे सभापते यथा पणिनेव गावो दासपत्न्योऽहिगोपा येन वृत्रेण निरुद्धा आपोऽतिष्ठन् तिष्ठन्ति तासामपां यद् बिलमपिहितमासीदस्ति तं सविता जघन्वान् हन्ति हत्वा तज्जलगमनद्वारमपववारावृणोत्युद्घाटयति तथैव दुष्टाचाराव् शत्रून्निरुध्य न्यायद्वारं प्रकाशितं रक्ष ॥११॥

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । यथा गोपालः स्वकीया गाः स्वाभीष्टे स्थाने निरुणद्धि पुनर्दोरं चोद्घाट्य मोचयति यथा वृत्रेण मेघेन स्वकीयमण्डलेऽपां द्वारमावृत्य ता वशं नीयन्ते यथा सूर्यस्तं मेघं विदार्यति तज्जलद्वारमपावृत्यापो विमोचयति तथैव राजपुरुषैः शत्रून्निरुध्य सततं प्रजाः पालनीयाः ॥११॥

Gr.—Guarded by Ahi stood the thralls of Dasas, the waters stayed like kine held by the robber.

But he, when he had smitten Vritra opened the cave wherein the floods had been imprisoned.

योगी—जलधाराएं, जिनका पति विघ्नकारणहेतु वृत्र है, तथा अहि जिनका रक्षक है, निरुद्ध हुई ठहरी थीं, जैसे पणि के द्वारा [निरुद्ध] गौएं [ठहरी हैं] । जलधाराओं का जो बिल [वृत्र के द्वारा] निरुद्ध था, इन्द्र ने वृत्र का हनन किया और उस [बिल] को अनावृत कर दिया (खोल दिया) ॥११॥

पणिः=वाक्—पणिक्, द०—पणिक् अथवा गोपालः, सा०—पणिनामकोऽसुरः ।

राष्ट्रस्य जीवनधारा दस्युभिर्निरुद्धा तिष्ठति । इमे दस्यवः संग्रहशीलत्वात् सर्वस्य राष्ट्रस्योपक्षयितारो (दसु उपक्षये) भवन्ति, तथा चाहुयः (कुटिलगतय उपहन्तारो वा) भवन्ति । राष्ट्रे ये वणिग्वृत्तयो जना भवन्ति, ते यथा राष्ट्रधनं निरुद्धीकृत्य तिष्ठन्ति, एवमेवेमे दस्यवोऽपि । राज इदं कर्त्तव्यं यत् स एतादृशानां दस्यूनां हननं करोतु, तथा च राष्ट्रसंपत्तेः प्रवाहं संचारयतु ।

जीवात्मनो ज्ञानं (आपः=ज्ञानम्=सरस्वती) दुर्भावनाभिर्निरुद्धं तिष्ठति । हृदयशुद्धया बुद्धिशुद्धिः

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



(बुद्धि-शुद्धया हृदयशुद्धिरपि) दृश्यताम् ऋ.१.३५.१०।हृदय-शुद्धयर्थं कुटिलता (अहित्वं) त्याज्या, ऋजुत्वं चाङ्गीकरणीयम्—

**सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते । तयोर्यत्सत्यं यतरद् ऋजीयस्तदित्सोमो अवति हन्त्यासत् ॥ (ऋग्वेदः) ॥११॥**

**अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र**
**सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः ।**
**अजयो गा अजयः शूर सोम-**
**मवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२॥**

सा०—सृके वज्रे । सृको वृक इति वज्रनामसु पठितत्वात्। देवो दीप्यमानः सर्वायुधकुशल एकोऽद्वितीयो वृत्रो यद्यदा त्वा त्वां प्रत्यहन् प्रतिकूलत्वेन प्रहृतवान् तत्तदानीं त्वमश्व्यो वारोऽश्वसम्बन्धी वालोऽभवः । यथाश्वस्य वालोऽनायासेन मक्षिकादीन्निवारयति तद्वद् वृत्रमगणयित्वा निराकृतवानित्यर्थः । किञ्च गाः पणिनापहृतास्त्वमजयः । जितवान् । हे शूर शौर्ययुक्तेन्द्र सोममजयः । जितवान् । तथा च तैत्तिरीयाः त्वष्टा हतपुत्र इत्यस्मिन्नुपाख्याने समामनन्ति । स यज्ञवेशसं कृत्वा प्रासहा सोममपिबत् । तै० सं. २.४.१२.१। इति । सप्त सिन्धून् इमं मे गङ्गे । ऋग्वे० १०.७५.५। इत्यस्यामृच्याम्नाता गङ्गाद्याः सप्तसङ्ख्यका नदीः सर्तवे सर्तुं प्रवाहरूपेण गन्तुमवासृजः । त्यक्तवान् । वृत्रकृतं प्रवाहनिरोधं निराकृतवानित्यर्थः ॥ अश्व्यः । अश्वे भवः । भवे छन्दसीति यत् । यतोऽनाव इत्याद्युदात्तत्वम् । वारयति दंशमशकानिति वारः । पचाद्यच् । कपिलकादित्वाल्लत्वविकल्पः । म०८.२.१८। वृषादित्वादाद्युदात्तत्वम् । प्रत्यहन् । यद्वृत्तान्नित्यमिति निघातप्रतिषेधः । तिङि चोदात्तवतीति गतेरनुदात्तत्वम् । अजयः । गा इत्यस्य वाक्यान्तरगतत्वात्तदपेक्षयास्य तिङ्ङतिङ इति निघातो न भवति । समानवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः । पा० १.१.१८.५। इति वचनात् । सर्तवे । तुमर्थे सेसेनिति तवेन्प्रत्ययः । नित्त्वादाद्युदात्तत्वम् ॥१२॥

द०—पुनस्तौ परस्परं किं कुरुत इत्युपदिश्यते ॥

**पदार्थः**—(अश्व्यः) योऽश्वेषु वेगादिगुणेषु साधुः(वारः) वरीतुमर्हः (अभवः) भवति । अत्र सर्वत्र वर्त्तमाने लङ् व्यत्ययश्च । (तत्) तस्मात् (इन्द्र) शत्रुविदारक (सृके) वज्र इव किरणसमूहे । सृक इति वज्रनामसु पठितम् (निघं० २।२०। (यत्) यः । अत्र सुपामिति सोर्लुक् । (त्वा) त्वां सभेशं राजानं (प्रत्यहन्) प्रतिहन्ति (देवः) दानादिगुणयुक्तः (एकः) असहायः (अजयः) जयति (गाः) पृथिवीः (अजयः) जयति (शूर) वीरवन्निर्भय (सोमम्) पदार्थरससमूहम् (अव) अधोऽर्थे (असृजः) सृजति (सर्त्तवे) सर्त्तुं गन्तुम् । अत्र तुमर्थे से० इति तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः । (सप्त सिन्धून्) भूमौ महाजलाशयसमुद्रनदीकूपतडागस्थाँश्चतुरोऽन्तरिक्षे निकटमध्यदूरदेशस्थाँस्त्रींश्चेति सप्तजलाशयान् ॥१२॥

**अन्वयः**—हे शूरसेनेशेन्द्र त्वं यथा यद् योऽश्व्यो वार एको देवो मेघः सूर्येण सह योद्धाऽभवो भवति सृके स्वघनदलं प्रत्यहन् किरणान्प्रति हन्ति सूर्यस्तं मेघं जित्वा गा अजयो जयति सोममजयो जयति एवं कुर्वन् सूर्यो जलानि सर्त्तवे सर्त्तुमुपर्यधो गन्तुं सप्त सिन्धूनवासृजः सृजति तथैव शत्रुषु चेष्टसे तत्तस्मात्त्वा त्वां युद्धेषु वयमधिकुर्मः ॥१२॥

**भावार्थः**—अत्रोपमालङ्कारः । यथायं मेघः सूर्यस्य प्रकाशं निवारयति तदा सूर्यः स्वकिरणैस्तं छित्त्वा भूमौ जलं निपातयत्यत एवायमस्य जलसमूहस्य गमनागमनाय समुद्राणां निष्पादनहेतुर्भवति तथा प्रजापालको राजाऽरीन्निरुध्य शस्त्रैश्छित्त्वाऽधो नीत्वा प्रजाया धर्म्ये मार्गे गमनहेतुः स्यात् ॥१२॥

Gr.—A horse's tail wast thou when he, O Indra, smote on thy bolt; thou, God without a second,

Thou hast won back the kine, hast won the soma; thou hast let loose to flow the seven Rivers.

**योगी**—हे इन्द्र तब तू अश्व-सम्बन्धी वार (बाल, पूंछ) बन गया, जब [वृत्र ने] तेरे वज्र पर प्रहार किया, [जो तू] अद्वितीय देव है । हे शूर, तू गौओं को जय कर के लाया [और] सोम को जय करके लाया, तूने सरण करने के लिए सात सिन्धुओं को उन्मुक्त कर दिया ॥१३॥

शक्तिशालिनो धर्मात्मनो राज्ञः संमुखं दस्यवोऽनायासं पराजिता भवन्ति । अस्य राज्ये दुग्धघृतादिबाहुल्यं भवति, पृथ्वी च शस्यशामला (सोमवती) भवति, सर्वत्र नदीनां कुल्यानां च जलेन कृषिसमृद्धिर्भवति ।

प्रबुद्धो जीवात्मा दुर्भावना नाशयति । तस्य ज्ञानं (गाः) समृद्धं भवति, तथा च स आध्यात्मिकानन्दम्(सोमम्)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



अधिगच्छति । तस्य पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि मनो बुद्धिश्चेति सप्त सिन्धव उन्मुक्तभावेन कार्यं विदधति ॥१२॥

**नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध**
**न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च ।**
**इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चो-**
**तापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥१३॥**

सा०—इन्द्रं निषेद्धुं वृत्रो यान्विद्युदादीन्मायया निर्मितवान् ते सर्वेऽप्येनं निषेद्धुमशक्ताः । सोऽयमर्थोऽनेन मन्त्रेणोच्यते । अस्मै इन्द्रार्थं निर्मिता विद्युन्न सिषेध । इन्द्रं न प्राप्नोत् । तथा तन्यतुर्गर्जनं यां मिहं सेचनं यां वृष्टिमकिरत् वृत्रो विक्षिप्तवान् सापि वृष्टिर्न सिषेध । ह्रादुनिं चाशनिमपि यां वृत्रः प्रयुक्तवान् सापि न सिषेध । इन्द्रश्चाहिश्चेन्द्रवृत्रावुभावपि यद्यदा युयुधाते युद्धं कृतवन्तौ । तदानीं विद्युदादयो न प्राप्ता इति पूर्ववान्वयः । उतापि च मघवा धनवानिन्द्रोऽपरीभ्योऽपराभ्योऽन्यासामपि वृत्रनिर्मितानां मायानां सकाशाद्वि जिग्ये । विशेषेण जितवान् ॥ सिषेध । षिधु गत्याम् । मिहम् । मिह सेचने । मेहति सिञ्चतीति मिट् वृष्टिः । क्विप्चेति क्विप् । अकिरत् । कॄ विक्षेपे । तुदादिभ्यः शः । ऋत इद्धातोरितीत्वम् । अडागम उदात्तः । यद्वृत्तयोगादनिघातः । युयुधाते । युध संप्रहारे । लिटि प्रत्ययस्वरः । जिग्ये । सन्लिटोर्जेः । पा०७.३, ५७ । इत्यभ्यासादुत्तरस्य जकारस्य कुत्वम् ॥१३॥

द.—एतयोरस्मिन् युद्धे कस्य विजयो भवतीत्युपदिश्यते ॥

पदार्थः—(न) निषेधार्थे (अस्मै) इन्द्राय सूर्यलोकाय (विद्युत्) प्रयुक्ता स्तनयित्नुः (न) निषेधे (तन्यतुः) गर्जनसहिता (सिषेध) निवारयति । अत्र सर्वत्र लडर्थे लङ्लिटौ । (न) निवारणे (याम्) वक्ष्यमाणाम् (मिहम्) मेहति सिञ्चति यया वृष्ट्या ताम् (अकिरत्) किरति विक्षिपति (ह्रादुनिम्) ह्रादतेऽव्यक्ताञ् शब्दान् करोति यया वृष्ट्या ताम् । अत्र ह्रादधातोर्बाहुलकादौणादिक उनिः प्रत्ययः । (च) समुच्चये (इन्द्रः) सूर्यः (च) पुनरर्थे (यत्) यः । अत्रापि सुपां सु० इति सोर्लुक् । युयुधाते युध्येते (अहिः) मेघः (च) अन्योन्यार्थे (उत) अपि (अपरीभ्यः) अपूर्णाभ्यः सेनाभ्यः । अत्र पृधातोः । अच इः । उ० ४।१३९ । अनेन इः प्रत्ययः । कृदिकारादक्तिनः । अ० ४।१।४५ । अनेन ङीष् प्रत्ययः । पूर्ववत् सायणाचार्येणाप्रमाणादपराभ्य इत्यशुद्धं व्याख्यातम् । (मघवा) मघं पूज्यं बहुविधं प्रकाशो धनं विद्यते यस्मिन् सः । अत्र भूम्न्यर्थे मतुप् । (वि) विशेषार्थे (जिग्ये) जयति ॥१३॥

अन्वयः—हे सेनापते त्वं यथा तेनाहिनास्मा इन्द्राय प्रयुक्ता विद्युदेनं न सिषेध निवारयितुं न शक्नोति । तन्यतुर्गर्जना प्यस्मै प्रयुक्ता न सिषेध निषेद्धुं समर्था न भवति योऽहिर्यां ह्रादुनिं मिहं वृष्टिं चाकिरत् प्रक्षिपति साऽप्यस्मै न सिषेध । अयमिन्द्रः परीभ्यः पूर्णाभ्यः सेनाभ्यो उताप्यपरीभ्यः सेनाभ्यो ऽहिर्मेघश्च परस्परं युयुधाते । यद्यस्मादधिकबलयुक्तत्वान् मघवा तं मेघं विजिग्ये विजयते तथैव पूर्णं बलं सम्पाद्य शत्रून् विजयस्व ॥१३॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा वृत्रस्य यावन्ति विद्युदादीनि युद्धसाधनानि सन्ति तावन्ति सूर्यापेक्षया क्षुद्राणि वर्त्तन्ते सूर्यस्य तानु युद्धसाधनानि तदपेक्षया महान्ति सन्ति । अत एव सर्वदा सूर्यस्य विजयो वृत्रस्य पराजयश्च भवति तथैव धर्मेण शत्रुविजयः कार्य्यः ॥१३॥

Gr.—Nothing availed him lightning, nothing thunder, hailstorm or mist which he had spread around him :

When Indra and the Dragon strove in battle, Maghavan gained the victory for ever.

योगी—इस इन्द्र पर न तो [वृत्र की] विद्युत्, न गर्जन, न वृष्टि, न ही बरसते हुए तुषार का कोई प्रभाव हुआ । जब इन्द्र और अहि (वृत्र) का युद्ध हुआ तो बहुविध ऐश्वर्य से सम्पन्न इन्द्र अपूर्ण शक्ति वाली वृत्रकी सेनाओं से जीत गया ॥१३॥

दस्यवो बहुविधशक्तिसंग्रहं कृत्वा राष्ट्रे चौर्यादिकर्म कुर्वन्ति । स एव यथार्थनामा राजा यस्य शक्तिस्तेभ्योऽधिकतरा स्यात् ।

मानवस्यान्तर्जगति निरन्तरं प्रवर्तमाने युद्धे दुर्भावना महाबलवत्यो भूत्वा जीवात्मानमाक्राम्यन्ति । परन्तु मनुष्येणेदं ज्ञातव्यं यज्जीवात्मनः शक्तिमहती वर्तते । मनुष्येण सदा यतितव्यं यज्जीवात्मा प्रबुद्धो जागरूकश्च निष्टेष्टुं [illegible] सिंहोऽपि सरलतया पराजितो भवति ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


दुर्भावनानां शक्तिविषये विभिन्नग्रन्थेषु सविस्तरं कथितम्—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥
(गीता)

दुर्भावनाशक्तिविषय ऋग्वेदेऽन्यत्र—

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा
सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे
स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥ ८६.६॥

परन्तु दुर्भावनानां शक्तिर्जीवात्मनः सम्मुखमपरी (अपूर्णा)वर्तते । इन्द्रसूक्तेषु जीवात्मनो महाशक्तेः सविस्तरं वर्णनमस्ति । मायावशात् तच्छक्तेरज्ञानमेव जीवात्मनोऽधोगतिकारणम् ॥१३॥

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र
हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः
श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४॥

सा०—हे इन्द्र जघ्नुषो वृत्रं हतवतस्तव हृदि चित्ते यद्यदि भीरगच्छत् न हतवानस्मीति बुद्धया भयं प्राप्नुयात् तर्ह्यहेर्वृत्रस्य यातारं हन्तारं कमपश्यः । त्वत्तोऽन्यं कं पुरुषं दृष्टवानसि । तादृशस्य पुरुषान्तरस्याभावान्मा भूत्तव भयमित्यर्थः । यद्यस्मात्कारणात्त्वं नव च नवतिं च स्रवन्तीरेकोनशतसङ्ख्याकाः प्रवहन्तीर्नदीः प्राप्य रजांसि तत्रत्यान्युदकान्यतरः । तीर्णवानसि । तत्र दृष्टान्तः । श्येनो न । श्येननामको बलवान्पक्षीव । दूरगमनात्तव भयमासीदिति गम्यते । तद् भयं मा भूदित्यभिप्रायः । तच्च दूरगमनं ब्राह्मणे समाम्नातम् । इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा नास्तृपीति मन्यमानः पराः परावतोऽगच्छत् । ऐ० ब्रा० ३. १५। इति । तैत्तिरीयाश्चामनन्ति । इन्द्रो वृत्रं हत्वा परां परावतमगच्छदपराधमिति मन्यमानः । तै० ब्रा० १.६.७.४। इति ॥ हृदि । पद्दन्नित्यादिना हृदयशब्दस्य हृदादेशः ऊडिदमित्यादिना विभक्तेरुदात्तत्वम् । जघ्नुषः । हन्तेर्लिटः क्वसुः । षष्ठ्यां क्वचने वसोः सम्प्रसारणमिति सम्प्रसारणपरपूर्वत्वे । शासिवसिघसीनां चेति षत्वम् । न च षत्वतुकोरसिद्धः । पा० ६.१.८६। इत्येकादेशस्यासिद्धत्वात् षत्वं न प्राप्नुयादिति वाच्यं सम्प्रसारणाश्रयस्यैकादेशस्य [illegible] का० ६.१.८६.१। इत्यसिद्धवद्भावस्य प्रतिषिद्धत्वात् । गमहनेत्यादिनोपधालोपः । न चासिद्धवदत्राभादिति सम्प्रसारणस्यासिद्धवद्भावः । भिन्नाश्रयत्वात् । सम्प्रसारणं हि षष्ठ्यां क्वचने उपधालोपस्तु वसाविति भिन्नाश्रयत्वम् । स्रवन्तीः । स्रु गतौ । शप्श्यनोर्नित्यम् । पा० ७.१.८१ । इति नुमागमः । शपः पित्त्वादनुदात्तत्वम् । शतुश्च लसार्वधातुकस्वरेणाद्युदात्तत्वम् । अतरः । यङ्लुक्योगादनिघातः ॥११॥

द०—पुनस्तयोः परस्परं किं भवतीत्युपदिश्यते ॥

पदार्थः—(अहेः) मेघस्य (यातारम्) देशान्तरे प्रापयितारम् (कम्) सूर्यादन्यम् (अपश्यः) पश्येत् । अत्र लिङर्थे लङ् । (इन्द्र) शत्रुदलविदारक योद्धः (हृदि) हृदये (यत्) धनम् (ते) तव (जघ्नुषः) हन्तुः सकाशात् (भीः) भयम् (अगच्छत्) गच्छति प्राप्नोति । अत्र सर्वत्र वर्त्तमाने लङ् । (नव) सङ्ख्यार्थे (च) पुनरर्थे (स्रवन्तीः) गमनं कुर्वन्तीर्नदीर्नाडीर्वा । स्रवन्त्य इति नदीनामसु पठितम् । निघं० १.१३। स्रु धातोर्गत्यर्थत्वाद्बहिरप्राणगमनमार्गा जीवनहेतवो नाड्योऽपि गृह्यन्ते । (श्येनः) पक्षी (न) इव (भीतः) भयं प्राप्तः (अतरः) तरति (रजांसि) सर्वाँल्लोकान् लोका रजांस्युच्यन्ते । निरु० ४।१९॥१४॥

अन्वयः—हे इन्द्र योद्धर्यस्य शत्रून् जघ्नुषस्ते तव प्रभावोऽहेर्मेघस्य विद्युद्गर्जनादिविशेषात् प्राणिनो यद् या भीरगच्छत् प्राप्नोति विद्वान् मनुष्यस्तस्य मेघस्य यातारं देशान्तरे प्रापयितारं सूर्यादन्यं कमप्यर्थं न पश्येत् । स सूर्येण हतो मेघो भीतो नेव श्येनादिव कपोतः भूमौ पतित्वा नवनवतिर्नदीर्नाडीर्वा स्रवन्तीः पूर्णाः करोति यद्यस्मात्सूर्यः स्वकीयैः प्रकाशाकर्षणच्छेदनादिगुणैर्महान्वर्त्तते तत्तस्माद्रजांस्यतरः । सर्वाँल्लोकान् सन्तरतीवास्ति स त्वं हृदि यं शत्रुमपश्यः पश्येस्तं हन्याः ॥१४॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः—यथा केनचित् प्रहृतो भययुक्तः श्येनः पक्षी इतस्ततो गच्छति तथैव सूर्येण हत आकर्षितश्च यो मेघ इतस्ततः पतन् गच्छति स स्वशरीराख्येन जलेन लोकलोकान्तरस्य मध्येऽनेका नद्यो नाड्यश्च पिपर्त्ति । अत्र नवनवतिमितिपदमसङ्ख्यातार्थेऽस्त्युपलक्षणत्वान्न ह्येतस्य मेघस्य सूर्यादिन्नं किमपि निमित्तमस्ति । यथाऽन्धकारे प्राणिनां भयं

CC-0. Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


जायते तथा मेघस्य सकाशाद्विद्युद्गर्जनादिभिश्च भयं जायते। तन्निवारकोपि सूर्य एव तथा सर्वलोकानां प्रकाशाकर्षणादिभिर्व्यवहारहेतुरस्ति तथैव शत्रून् विजयेरन् ॥१४॥

Gr.—Whom sawest thou to avenge the Dragon Indra, that fear possessed thy heart when thou hadst slain lion;

That, like a hawk affrighted through the regions, thou crossedst nine-and-ninety flowing rivers.

**योगी**—हे इन्द्र, तूने अहि के याता के रूप में किसे देखा, जो उसे (अहि, वृत्र को) मार चुकने के पश्चात् तेरे हृदय में भय का उद्भव हो गया ? तथा तू ९९(=अनेक, बहुसंख्यक) नदियों तथा लोकों को भयभीत श्येन के समान पार कर गया (=दूर चला गया, इतस्ततः आत्मरक्षा के प्रयत्न में भटकता फिरा) ॥१४॥

याता=ग्रि० प्रतिशोधग्रहीता; सा० हन्ता; द० देशान्तरे प्रापयिता० योगी आक्रान्ता—अहेः पक्षं स्वीकृत्य य आक्राम्यति।

कदाचिदेवमपि भवति, यद् राष्ट्रे दस्यूनां शक्तिः प्रबला जायते। राजा कस्य चिच्छक्तिशालिनो दस्योर्हननेकृतकार्योऽपि भवति, परन्तु तस्य दस्योः समर्थकास्तं राजानमाक्राम्यन्ति। अस्मिन् मन्त्रे राजानम् (इन्द्रम्) प्रतीदं कथनम्—यन्न भेतव्यं, न च राज्यं त्यक्त्वा पलायितव्यं, स्वकर्त्तव्यपालनं कर्त्तव्यम्—

'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्' (गीता०)। तथा 'कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्। अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥' (गीता)

राज्ञो राष्ट्ररक्षकक्षत्रियाणां चेदं कर्तव्यं यत्ते दस्यूनामुन्मूलनं कुर्वन्तु, इदं मनसि सम्यङ् निधेयं यदन्ते सत्यस्य विजयोऽवश्यंभावी—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥
(गीता)

जीवात्मा यदा मनोमोहकदुर्भावनाकामनावासनादीनामुन्मूलनं करोति, तदा चिराजितसंस्काराभ्यासवशात् मनुष्यः पीडामनुभवति, कदाचित्तेन चित्तमपि क्षिप्तं संयमम् यदि मया संयमः क्रियते तदा सर्वथाऽऽनन्दविहीनो नीरसश्च भविष्यामीत्यादि। दुर्भावनावासनादश्च सुन्दरसाधुरूपं धारयित्वाऽऽगच्छन्ति कथयन्ति च—'इदं मधुरं, नात्र पापम्।' परन्तु जागरूको जीवात्मा तत्त्वं जानाति, एतु तथाकथितरसेषु गूढं घातकं विषं परिचिनोति, अतस्तस्य भीजयिते, आत्मरक्षार्थं च स प्रयतते ॥१४॥

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा
शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीना-
मरान्न नेमिः परि ता बभूव ॥१५॥

सा०—वज्रबाहुरिन्द्रः शत्रौ हते सति निःसपत्नो भूत्वा यातो गच्छतो जङ्गमस्यावसितस्यैकत्रैव स्थितस्य स्थावरस्य शमस्य शान्तस्य शृङ्गराहित्येन प्रहरणादावक्षमस्यावसितस्य पशुभेदः शृङ्गिणः शृङ्गोपेतस्योग्रस्य महिषकक्षीवादेश्च राजाभूत्। सेदु स एवेन्द्रश्चर्षणीनां मनुष्याणां राजा भूत्वा क्षयति निवसति। ता तानि पूर्वोक्तानि जङ्गमादीनि सर्वाणि परि बभूव। व्याप्तवान्। तत्र दृष्टान्तः। अरान्न नेमिः। यथा रथचक्रस्य परितो वर्तमाना नेमिरारान्नाभौ संलिप्तान्काष्ठविशेषान्व्याप्नोति तद्वत्॥ यातः। या प्रापणे। क्तिच्। गच्छतीति यात्॥ सदः। षद्लृ। सर्वधातुभ्य इन्। विभक्तेरुदात्तत्वम्। सः। सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्। सोर्लोपः। ता। शेश्छन्दसि बहुलमिति शेर्लोपः। बभूव। भवतेर्लिटो णलि भवतेरः। पा० ७.४.७३। इत्यभ्यासस्यात्वम्। कृताकृतप्रसङ्गित्वेन पुनरागमस्य नित्यत्वाद्धेः पूर्वं पुनरागमः। यद्वा। इन्धिभवतिभ्यां च। पा० १.२.६. इति लिटः कित्त्वाद्गुणाभावः। न शसिददवादिगुणानामिति तस्यासिद्धत्वादुवङादेशः शक्नुवोः। वुग्सुटावुवङवयोः सिजौ भवतः। पा० ६.४.२२.१४। इति तस्य सिज्भावात्। सिच्लिटि इति निघातः ॥१५॥

द०—पुनः सूर्यः कीदृश इत्युपदिश्यते॥

पदार्थः—(इन्द्रः) सूर्यलोक एव सभासेनापती राज्यं प्राप्तः (यातः) गमनादिव्यवहारप्रापकः (अवसितस्य) निश्चितस्य चराचरस्य जगतः (राजा) यो राजते दीप्यते प्रकाशते सः (शमस्य) शाम्यन्ति येन तस्य शान्तियुक्तस्य मनुष्यस्य (च) समुच्चये (शृङ्गिणः) शृङ्गयुक्तस्य गवादेः पशुसमूहस्य (वज्रबाहुः) वज्रः शस्त्रसमूहो बाहौ यस्य सः (सः) (इत्) एव (उ) अप्यर्थे (राजा) न्यायप्रकाशकः

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


संभाध्यक्षः (क्षयति) निवासयति गमयति वा। (चर्षणीनाम्) मनुष्याणाम् (अरान्) चक्रावयवान् (न)इव (नेमिः) रथाङ्गम् (परि) सर्वतोऽर्थे (ता) तानि यानि जगतो दुष्टानि कर्माणि पूर्वोक्तांल्लोकान्वा। अत्र शेश्छन्दसि बहुलमिति शेर्लोपः। (बभूव) भवेः। अत्र लिङर्थे लिट् ॥१५॥

अन्वयः—सूर्य्य इव वज्रबाहुरिन्द्रो यातः सभापतिरवसितस्य शमस्य शृङ्गिणश्चर्षणीनां च मध्येऽरान्नेमिर्नेव ता तानि रजांसि परिक्षयति सचेदु—उतापि सर्वेषां राजा बभूव भवतु ॥१५॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः। अत्र पूर्वमन्त्रात् रजांसीति पदमनुवर्त्तते। राजा यथा रथचक्रमरान् धृत्वा चालयति यथायं सूर्य्यश्चराचरस्य शान्ताशान्तस्य जगतो मध्ये प्रकाशमानः सन् सर्वांल्लोकान् धरन् स्वस्वकक्षासु चालयति न चैतस्माद्विना कस्यचित्सन्निहितस्य मूर्तिमतो लोकस्य धारणाकर्षणप्रकाशमेघवर्षणादीनि कर्माणि संभवितुमर्हन्ति तथा धर्मेण राज्यं पालयेत् ॥१५॥

Gr.—Indra is king of all that moves and moves not, of creatures tame and horned, the thunder-wielder.

Over all living men he rules as sovran, containing all as spokes within the felly.

योगी—वज्रबाहु इन्द्र जङ्गम तथा स्थावर का, शान्त (अहिंसक) प्राणियों तथा शृङ्गियों (हिंसक प्राणियों) का राजा है। वही मनुष्यों का राजा बनकर निवास करता है। संसार की सब वस्तुओं को उसने ऐसे थामा हुआ है या व्याप्त किया हुआ है जैसे कि रथनेमि ने अरों को ॥१५॥

राज्ञैवं शक्तिशालिना भवितव्यं यद् राष्ट्रे सर्वे तस्य शासनस्य संमुखं नतमस्तकाः स्युः। एतादृशो राजैव लोकपालनसमर्थः।

जीवात्मैवं शक्तिशाली स्याद् यन्मनुष्यस्य सर्वमपि जीवनं तेन नियन्त्रितं स्यात्—गतिः, स्थितिः, शान्तिर्हिंसा चेत्यादि। यदा यदुचितं तत्क्रियेत। कदाचित् कर्मोचितं कदाचिदकर्म, कदाचित्प्रेमोचितं कदाचिद्धिंसा—

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥

(गीता)

---

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# रुद्रः

ऋग्वेदे चत्वारि रुद्रसूक्तानि । एकस्मिन् सूक्तेऽशतो रुद्रवर्णनम् । तथा चैकस्मिन् सूक्ते स सोमेन सह स्तुतः । यजुर्वेदेऽथर्ववेदे च संमेल्य शतादधिका रुद्रमन्त्राः सन्ति । चतुर्षु वेदेषु कतिपयेऽन्ये मन्त्रा अपि सन्ति, येषां साक्षादसाक्षाद्वा संबन्धो रुद्रेण सह मन्यते ।

वेदपरवर्तिवाङ्मये रुद्रस्य निरतिशयं महत्त्वमस्ति । त्रिमूर्तौ (ब्रह्माविष्णुमहेशेषु) रुद्रस्यैवाधिकं महत्त्वम् । अन्ये देवाः, परन्तु रुद्रो महादेवः ।

पाश्चात्यविदुषां मतेन वेदेषु रुद्रस्यामुख्यमेव स्थानमस्ति । त एवमप्यभिदधति यत्केनचिदार्येतरदेवेन सह वैदिकरुद्रस्य सम्मेलनादेकस्य नूतनस्य महादेवस्य सृष्टिर्जाता ।

अस्माकं मतेन वेदेषु यदि रुद्रमन्त्राणां संख्या स्वल्पाऽस्ति, अनेनास्यामुख्यता न सिध्यति । वेदेषु विभिन्नविषयान् अधिकृत्य मन्त्राः सन्ति; मन्त्राणां संख्याऽऽवश्यकताद्दृष्ट्या न्यूनाऽधिका वास्ति । अन्येषु मन्त्रेषु प्रकृतेः परमात्मशक्तीनां च वर्णनमस्ति । रुद्रमन्त्रेषु परमात्मनश्चर्चैवास्ति, तस्य वाचामगोचरत्वात् । रुद्रः=परमात्मा=ईशः=ईशानः । ऋग्वेद ईशानशब्दस्य, यजुर्वेदे 'ईश' शब्दस्य प्रयोगः । अद्यापि परमात्मनः कृत 'ईश'शब्दो बहुप्रचलितः । इदमेवाभिलक्ष्य कथयति कविकुलगुरुः—

यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः ।

निरुक्तकारो यास्कोऽपि रुद्रस्य परमात्मत्वं समर्थयन्निव प्रतिभाति—'रोदसी रुद्रस्य पत्नी' (दुर्गः—'रुद्रस्य पत्नी=रुद्रस्य विभूतिः)—नि० ११.४६ एवं द्यावापृथिव्यौ रुद्रस्य विभूतिरूपेण स्तः । कोऽन्यः परमात्मानमपहाय रुद्रः स्यात् ? इदमेवाभिलक्ष्य कथयति कालिदासः—'वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी' । संस्कृतव्याकरणे 'रोदस्' इति मूलशब्दः क्लीबे मन्यते । 'रोदसी' इति प्रथमाद्वितीययोर्द्विवचने रूपम् । यास्को 'रोदसी' इति शब्दं स्त्रीकरोति, स्त्रीलिङ्गे प्रथमैकवचनेऽपि । वेदेष्वपि रोदसी स्त्रीलिङ्गे प्रथमैकवचने एव प्राप्यते । अनेकेषु स्थानेषु प्रथमाद्वितीययोर्द्विवचने 'रोदसी' इति प्राप्यते 'रोदस्यौ' इत्यस्य स्थाने । (ऋ० ५.५६.८ इत्यादि) ।

रुद्रशब्दविषये यास्कः—'रुद्रो रौतीति सतो रोरूयमाणो द्रवतीति वा रोदयतेर्वा यदरुदत्तद् रुद्रस्य रुद्रत्वमिति काठकम् । यदरोदीत् तद् रुद्रस्य रुद्रत्वमिति हारिद्रविकम्' —नि० १०५.

ऋग्वेदे (५-४८.८) कतिपयदेवपत्नीनां चर्चा । व्याख्यां कुर्वन् यास्कः—

" 'इन्द्राणी' इन्द्रस्य पत्नी । 'अग्नायी' अग्नेः पत्नी । 'अश्विनी' अश्विनोः पत्नी । 'रोदसी' रुद्रस्य पत्नी । 'वरुणानी' वरुणस्य पत्नी" (नि० १२. ७६) । अत्र दुर्गः—'अथर्वणे रोदसीत्यप्रगृह्यं पदम् । तदेकैकवचनेन भाष्यकारो निराह । (परन्तु ऋग्वेदेऽप्येकवचनेन कथनम् —ऋ० ५.५६.८ इत्यादि—तस्मिन् ऋग्वेदे 'रोदसी' इति रोदस्यौ' इत्यस्य कृते समायाति यथा ऋ० १७-१३६.१ इत्यादि । परन्त्वत्र प्रकरणे 'रोदस्' शब्दस्य नपुंसके लिङ्गे द्वितीयाद्विवचने रूपमिति प्रतीयते—योगी)

वेदेषु रुद्रस्य 'नीललोहितः' इति नामापि प्राप्यते । कालिदासोऽभिज्ञानशाकुन्तलस्यान्तिमे पद्येऽस्य शब्दस्य प्रयोगं करोति ('ममापि क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवम्') वस्तुतः परमात्मनः स्वरूपमेव नीललोहितम् । वनस्पतिशस्यश्यामला वसुन्धरा, समुद्रः, आकाशः—सर्वमपि नीलवर्णम्—उषा, सन्ध्या, सूर्यः, चन्द्रः, तारकाणि—सर्वमपि लोहितम् । इदं सर्वं परमात्मनो नीललोहितशरीरम्—'प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः' । शिवस्य मूर्तिरपि तत्र सर्वदेवानामावासं प्रकटयति ॥ शिरसि सोमो मस्तकेऽग्निः तस्य शरीरं नीलवर्णम्, तच्च नीलवर्णं शिरःस्थेन सोमेन तथा मस्तकस्थेनाग्निना लोहित-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


वर्णभूषितम्। अथर्ववेदे कथितम्—नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् (अथर्व० १५.१ ७

वेदेषु रुद्रस्याल्पानि सूक्तानि। अधिकानि नैव भवितुं पारयन्ति, यतो हि परमात्मा वाचामविषयः। परमात्मविषये केवलमस्पृसंकेत एव कर्तुं शक्यते।

अधोलिखितमन्त्रेण रुद्रस्य परमात्मस्वरूपं स्फुटीभवति

मा त्वा रुद्र चुकुधामा नमोभि-
र्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती।
उन्नो वीरां अर्पय भेषजेभि-
र्भिषक्तमं त्वां भिषजां शृणोमि॥

ऋ० २.३३.४.

परमात्मा केवलं नमोभिः क्रुध्यति यतः स कर्मकृतो जनान् इच्छति न भिक्षुकान्। अथर्ववेदे (२.२७.६) रुद्रः स्वयं 'कर्मकृत्' इति कथितम्। तथा यो जनः कर्म न करोति केवलं शिरोऽवनमनं कृत्वा याचते, रुद्रस्य मतेन तस्य स्तुतिर्दुष्टुतिर्भवति। रुद्रोऽद्वितीयोऽस्ति सर्वाधीश्वरः, अतः तेन सह कस्यचित् हूतिः (स-हूतिः) न संभाव्यते। रुद्रो भिषक्तमो वर्तते। मनुष्यो विविधशारीरिकमानसिक-बौद्धिकात्मिकरोगैर्ग्रस्तोऽस्ति। सर्वेषामाधिव्याधीनां निवारकः परमात्मा रुद्र एव।

मनुष्यः सर्वाधिकं मृत्योर्बिभेति। मृत्युं दृष्ट्वा स्मृत्वा वा परमात्मनः सत्तां स्वीकरोति। महामृत्युञ्जयमन्त्रोऽपि रुद्रं संबोध्यैव वर्तते—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

ऋ० ७.५९.१२

अथो रुद्रस्य वेदेषु कतिपयविशेषणानि प्रस्तूयन्ते—मीढ्वान्, मीळ्हुतमः, प्रचेताः, तव्यान्, जलाषभेषजः, 'श्रेष्ठो देवानां वसुः', कपर्दी मरुत्वान्, वक्रुः, भिषक्तमः, 'अस्य भूरेर्भुवनस्येशानः' त्र्यम्बकः, कृत्तिवासाः, नीललोहितः, नीलग्रीवः, विलोहितः, ताम्रः, अरुणः, बभ्रुः, गिरिशन्तः, गिरिचरः, भवः, शर्वः, पशुपतिः, क्षुल्लः वामनः, धृष्णुः, शङ्करः, मयस्करः, 'मरुतां पिता,' महादेवः, ईशानः—इत्यादीनि।

अधोलिखितेषु वेदानां मन्त्रेषु मन्त्रखण्डेषु च रुद्रस्य स्वरूपं स्फुटीभवति—

त्वा दत्तेभी रुद्र शंतमेभिः
शतं हिमा अशीय भेषजेभिः

ऋ० २.३३.२

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि
तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति
विश्वा अभीती रपसो युयोधि॥

ऋ० २.३३.३

कुमारश्चित् पितरं वन्दमानं
प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम्।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे
स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे॥

ऋ० २.३३.१२

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्
यजुर्वेद १६.५४

(एक एव रुद्रः सर्वव्यापकतयाऽसंख्यातेषु रूपेषु दृश्यते)

रुद्रो मरुतां पतिर्मरुत्वांश्च कथ्यते। प्राकृतिकक्षेत्रे तीव्रप्रबलप्रभञ्जनानि परमात्मनोऽदम्यशक्त्याः प्रतिनिधिरूपेण सन्ति। यास्कमतेन 'अग्निरपि रुद्र उच्यते' (नि० १०.७)। संसारे परमात्मनो याऽपि कल्पना भवति सा प्रकाशरूपेण भवति। दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद् युगपदुत्थिता यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मनः॥ तथा च। 'यद् यद् विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥ (गीता)

रुद्रविषये श्रीअरविन्दस्य मतम्—

रुद्रो विश्वेऽवतरन् देवः, विष्णुः, स एव देवो योऽवतरणशक्तीनां सहायको भवति ताश्च प्रेरयति (Rudra is the dev or Deity ascending in cosmos, विष्णु the same dev or Deity helping and evoking the powers of the ascent.)' अग्रे श्रीअरविन्दः कथयति—"It was a view long popularised by European scholars that the greatness of विष्णु and शिव was a later development and that in the Rig these gods have a quite minor posi-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



tion and are inferior to इन्द्र and अग्नि. It has even become a current opinion among many scholars that शिव was a later conception borrowed from the Dravidians and represents a partial conquest of the Vedic religion by the indigenous culture it had invaded. These errors arise inevitably as part of the total misunderstanding of the Vedic thought for which the old Brahmanic ritualism is responsible and which European scholarship by the exaggeration of a minor and external element in the Vedic mythology has only given a new and yet more misleading form.

"The importance of Vedic gods can not be measured by the numbers of hymns to them...but by the functions which they perform."

(On the Veda Ed. 1964, page 359)

"योरोपीयविद्वद्भिर्बहोः कालाद् अस्य विचारस्य प्रचारः कृत आसीद् यत् पौराणिकदेववर्णनेषु विष्णो रुद्रस्य च यन्माहात्म्यं जातं, तत् परवर्तिविकासः, तथा वेद इमौ देवा अत्यन्तानुख्यस्थितिमन्ता इन्द्राच्चाग्नेश्च हीनतरौ। बहुषु विद्वत्स्वियं प्रचलिता सम्मतिरपि जाता यत् 'शिवः' द्रविडजनेभ्य ऋणरूपेण स्वीकृता परवर्तिधारणाऽस्ति, तथा चानेनेदं सिध्यति, यदंशतो वैदिकधर्मस्तया स्थानीयसंस्कृत्या विजितो या तेनाक्रान्ता बभूव। इमा भ्रान्तयो वैदिकविचारस्य पूर्णतया विपरीतबोधाद् अनिवार्यरूपेणोत्पन्ना भवन्ति। अस्य विपरीतबोधस्यैकमात्रोत्तरदायी वर्त्तते ब्राह्मणानां प्राचीनः कर्मकाण्डः। अस्मै विपरीतबोधाय योरोपीयविद्वद्भिर्वैदिकदेवशास्त्रे गौणस्य बाह्यस्य च तत्त्वस्यातिशयोक्त्यैकं नूतनं परन्त्वधिकतरं भ्रान्तिजनकं रूपं प्रदत्तम्।

"वैदिकदेवानां महत्त्वमनेन न मेयं, यत्तेषां कृते कति सूक्तानि लिखितानि, तैः कार्यैर्मेयं यानि ते कुर्वन्ति।"

"For the upward movement of ब्रह्मणस्पति's formations रुद्र supplies the force" (ibid p. 359) —ब्रह्मणस्पतेर्निर्माणानामूर्ध्वगतये शक्तिं रुद्रः प्रयच्छति।

अग्नि and मरुत्s are the [illegible] fierce struggle upward from रुद्र's first earthly, obscure creation to the heavens of thought, the luminous words (ibid, p. 359,300)—

रुद्रो विचारस्वर्गाणां—ज्योतिर्मयलोकानां यां प्रथमामस्फुटां सृष्टिं पृथिव्यां विदधाति, तस्याः कृते यः प्रबलः संघर्षः क्रियते, अग्निर्मरुतश्च तस्य (संघर्षस्य) नेतारौ।"

(अस्य विषयस्य सविस्तरज्ञानाय मनीषिपाठकाः श्री अरविन्दस्य 'वेदरहस्यम्' ('ऑन दि वेद') इति पुस्तकस्य कतिपयपृष्ठानि (३५८—३६४) अवश्यं पठन्तु—योगी)

अस्य सूक्तस्य (ऋ० १.११४) ऋषिः कुत्स आङ्गिरसः। कुत्सः=वज्रः (निघ० २.२०.१०)। अत्र यास्कः —'तत्र कुत्स इत्येतत् कृन्ततेः। ऋषिः कुत्सो भवति। कर्ता स्तोमानामित्यौपमन्यवः। अत्राप्यस्य वधकर्मैव भवति। तत्सख इन्द्रः शुष्णं जघान (नि० ३.११)। 'आङ्गिरस' इत्यविकृत्यैकसूक्ते सविस्तरं लिखितं पुरस्तात्। रुद्रस्तेजस्वी, संसारे सर्वो रसस्तस्यैव, तथा चासौ सन्मार्गस्थापनायैव वज्रधारी भयङ्करोऽपि जायते। 'परित्राणाय साधूनामाङ्गिरसस्तथा च विनाशाय दुष्कृताम्' कुत्सः।

सा०—इमा रुद्रायेत्येकादशर्चं नवमं सूक्तं कुत्सस्यार्षम्। दशम्येकादश्यौ त्रिष्टुभौ। शिष्टा नव जगत्यः। रुद्रो देवता। तथा चानुक्रान्तम्। इमा एकादश रौद्रं द्वित्रिष्टुबन्तमिति॥ शूलगवादिषु रुद्रदेवत्येषु कर्मस्वनेन सूक्तेन द्वियुपस्थेया। तथा च सूत्रितम्। कद्रुद्रायेमा रुद्राया ते पितरिमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिर इति सर्वरुद्रयज्ञेषु दिशामुपस्थानम्। आ० गृ० ४.२१। इति॥

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने
क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे
विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्॥१॥

सा०—रुद्राय। रोदयति सर्वमन्तकाल इति रुद्रः। यद्वा। रुत्संसाराख्यं दुःखम्। तद् द्रावयत्यपगमयति विनाशयतीति रुद्रः। यद्वा। रुतः शब्दरूपा उपनिषदः। ताभिर्द्रूयते गम्यते प्रतिपाद्यत इति रुद्रः। यद्वा। रुत् शब्दात्मिका वाणी तत्प्रतिपाद्यात्मविद्या वा। तामुपासकेभ्यो राति [illegible]। रुणद्ध्यावृणोतीति रुदन्धकारादि।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


तद्दृणाति विदारयतीति रुद्रः। यद्वा। कदाचिद्देवासुरसंग्रामेऽग्न्यात्मको रुद्रो देवैर्निक्षिप्तं धनमपहृत्य निरगात्। असुराञ्जित्वा देवा एनमन्विष्य दृष्ट्वा धनमपाहरन्। तदानीमरुदत्। तस्माद्रुद्र इत्याख्यायते। तथा च तैत्तिरीयकम्। सोऽरोदीद् यदरोदीत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्। तै० सं० १.५.१.१। इति। तस्मै रुद्राय मतीर्मननीया इमाः स्तुतीः प्र भरामहे। प्रकर्षेण निष्पादयामः। कीदृशाय। तवसे प्रवृद्धाय कपर्दिने जटिलाय क्षयद्वीराय क्षयन्तो विनश्यन्तो वीरा यस्मिन् तादृशाय। यद्वा। क्षयतिरैश्वर्यकर्मा। क्षयन्तः प्राप्तैश्वर्या वीरा मरुद्गणाः पुत्रा यस्य तस्मै। यथा येन प्रकारेण शं शमनीयानां रोगाणामुपशमनं द्विपदेऽस्मदीयाय मनुष्याय चतुष्पदे गवाश्वप्रभृतये चासत् भवेत्। तेन प्रकारेण स्तुतीः कुर्म इत्यर्थः। अतोऽस्मिन्नस्मदीये ग्रामे वर्तमानं विश्वं सर्वं प्राणिजातमनातुरम्। आतुरा रुग्णाः। तै रहितं सत् पुष्टं प्रवृद्धं भवतु॥ रुद्राय। रोदेर्णिलुक्च। उ० २.२२। इति रक्। तवसे। तवतिर्वृद्ध्यर्थः सौत्रो धातुः। औणादिकोऽसिप्रत्ययः। क्षयद्वीराय। क्षि क्षये। लटः शतृ। छन्दस्युभयथेति शतुरार्धधातुकत्वेनादुपदेशाल्लसार्वधातुकानुदात्तत्वाभावात्तस्यैव स्वरः शिष्यते। बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्। असत्। अस भुवि। लेट्यडागमः। इतश्च लोप इतीकारलोपः। द्विपदे। द्वौ पादावस्य। सङ्ख्यासुपूर्वस्येति पादशब्दस्यान्त्यलोपः समासान्तः। चतुर्थ्येकवचने भसंज्ञायां पादः पदिति पद्भावः। एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात्। परि० ३७। द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्धसु बहुव्रीहावित्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम्। चतुष्पदे। स्वरवर्जं पूर्ववत्। बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्। पूर्वपदं च नृः सङ्ख्यायाः। फि० २.५। इत्याद्युदात्तम्॥

द०—अथ विद्वद्विषयमाह॥

पदार्थः—(इमाः) प्रत्यक्षतयाऽऽप्तोपदिष्टा वेदादिशास्त्रोत्थबोधसंयुक्ताः (रुद्राय) कृतचतुश्चत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्य्याय (तवसे) बलयुक्ताय (कपर्दिने) ब्रह्मचारिणे (क्षयद्वीराय) क्षयन्तो दोषनाशका वीरा यस्य तस्मै (प्र) भरामहे (धरामहे) (मतीः) प्रज्ञाः (यथा) (शम्) सुखम् (असत्) भवेत् (द्विपदे) मनुष्याद्याय (चतुष्पदे) गवाद्याय (विश्वम्) सर्वं जीवादिकम् (पुष्टम्) पुष्टिं प्राप्तम् (ग्रामे) शालासमुदाये नगरादौ (अस्मिन्) संसारे (अनातुरम्) दुःखवर्जितम्॥१॥

अन्वयः—वयमध्यापका उपदेशका वा यथा द्विपदे चतुष्पदे शमसदस्मिन् ग्रामे विश्वमनातुरं पुष्टमसत्तथा तवसे क्षयद्वीराय रुद्राय कपर्दिन इमा मतीः प्रभरामहे॥१॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः। यदाऽऽप्ता वेदविदः पाठका उपदेष्टारश्च पाठिका उपदेष्ट्र्यश्च सुशिक्षया ब्रह्मचारिणीः श्रोत्रीश्च विद्यायुक्ताः कुर्वन्ति तदैवेमे शरीरात्मबलं प्राप्य सर्वं जगत् सुखयन्ति॥१॥

Gr.—To the Strong Rudra bring we these our songs of praise, to him the Lord of Heroes with the braided hair.

That it be well with all our cattle and our men, that in this village all be healthy and well-fed.

योगी—शक्तिशाली कपर्दशोभित क्षयद्वीर रुद्र के लिए हम इन मतियों का प्रकर्ष से आहरण करते हैं, जिससे कि दोपायों और चौपायों के लिए शम् हो और इस ग्राम में सब पुष्ट और अनातुर हों॥१॥

कपर्दी—कपर्दों से युक्त=जटाओं से युक्त, जटिल,। क्षयद्वीर–सा० ऐश्वर्ययुक्त हैं पुत्र (मरुतः) जिसके, द० दोषनाशक हैं वीर जिसके। मतिः=सा० स्तुति, द० प्रज्ञा। वीर. वीर विक्रान्तौ, अथवा वि ईर गतौ कम्पने च।

संपूर्णं वनस्पतिजगद्, ऊर्मिमालासंकुलः समुद्रः, प्रावृषि वारिदमाला चेत्यादि सर्वं परमात्मनो जटारूपम्। ये जना परमात्मानं पितृरूपेण मन्यन्ते, तेषामैश्वर्यमुत्तरोत्तरं वर्धते। परन्तु परमात्मा वीरजनान् एव पुत्ररूपेण स्वीकरोतीति मनसि सदावधेयम्। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' (मु. उ. ३.२.४) 'तस्माद् ब्राह्मणः·····बाल्येन तिष्ठासेत् (बृ० उ०। ३.५.१ (बाल्यम्=बलभावः); 'आत्मना विन्दते वीर्यम् (केन० २.४.)। परमात्मनः कृपायाः प्राप्तेरयमेव मार्गो यन्मनुष्यो वीरः स्यात् तथा सदैव मननशीलः (मतिमान्) तिष्ठेत्। वीरता वीरेन्द्रस्य गुणः—'या च का च बलकृतिरिन्द्रकर्मैव तत् (यास्कः) तथा मतिरग्नेर्गुणः। अग्नीन्द्रगुणसहित एव जनो रुद्रस्य प्रियः। शारीरिकमानसिकबौद्धिकात्मिकसर्वविधपुष्टिस्वास्थ्यादीनामयमेवोपायः। कपर्दिशब्देन परमात्मनो

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



विस्तृतं सर्वव्यापि रूपं मनोगोचरीभवति । मानवस्य मनसि सदायं विचारः प्रबुद्धस्तिष्ठेद् यदहं रुद्रपुत्रो महान् हि मेऽस्त्युत्तराधिकारः (शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः — ऋ० १०.१३.१) अहं महान्ति कार्याणि करिष्यामीत्यादि । मतिमान् वीरश्च मनुष्य एव सर्वविधां शान्तिं पुष्टिं नैरोग्यं चाधिगच्छति । वीरकार्यैः सह घोरकष्टसहनमनिवार्यम् । इदमेव रुद्रस्य रोदयितृत्वम् । यदि रुद्रस्यारुणवर्णेन (red वर्णेन) सह सम्बन्धः स्थाप्यते तदा रुद्रः = तेजस्वी ।

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि
क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता
तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥२॥

सा०—हे रुद्र नोऽस्मभ्यमस्मदर्थं मृळ । त्वं सुखयिता भव । उतापि च तदनन्तरं नोऽस्माकं मयः सुखं कृधि । कुरु । वयं च क्षयद्वीराय क्षपितसर्ववीरं प्राप्तैश्वर्यैर्मरुद्भिर्युक्तं वा ते त्वां नमसा हविर्लक्षणेनान्नेन नमस्कारेण वा विधेम । परिचरेम । विधतिः परिचरणकर्मा । अपि च पितोत्पादको मनुः स्वकीयाभ्यः प्रजाभ्यः शं रोगाणां शमनं योश्च भयानां यावनं च यदेतद् द्वयमायेजे देवेभ्यः सकाशात्प्राप्य दत्तवान् हे रुद्र तव प्रणीतिषु प्रकृष्टनयनेषु सत्सु तद्वयमश्याम । व्याप्नुयाम ॥ मृळ । मृड सुखने । तौदादिकः । द्व्यचोऽतस्तिङ इति संहितायां दीर्घः । कृधि । करोतेर्लोटि बहुलं छन्दसीति विकरणस्य लुक् । श्रुशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दसीति हेर्धिः । अतः कृकमीति मयसो विसर्जनीयस्य सत्वम् । क्षयद्वीराय । क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यमिति कर्मणः सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी । विधेम । विध विधाने । तौदादिकः । आयेजे । यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु । लिटि संज्ञापूर्वकस्य विधेरनित्यत्वात्सम्प्रसारणाभाव एत्वाभ्यासलोपौ । अश्याम । अशू व्याप्तौ । व्यत्ययेन परस्मैपदम् । बहुलं छन्दसीति विकरणस्य लुक् ।

द०—अथ राजविषयः प्रोच्यते ॥

पदार्थः—(मृड) सुखय । अत्र दीर्घः । (नः) अस्मान् (रुद्र) दुष्टान् शत्रून् रोदयितः (उत) अपि (नः) अस्मभ्यम् (मयः) सुखम् (कृधि) कुरु (क्षयद्वीराय) क्षयन्तो विनाशिताः शत्रुसेनास्था वीरा येन तस्मै (नमसा) अन्नेन सत्कारेण वा (विधेम) सेवेमहि (ते) तुभ्यम् (यत्) (शम्) रोगनिवारणम् (च) ज्ञानम् (योः) दुःखवियोजनम् । अत्र युधातोर्डोसिः प्रत्ययः । (च) गुणप्रापणसमुच्चये (मनुः) मननशीलः (आयेजे) समन्ताद्याजयति (पिता) पालकः (तत्) (अश्याम) प्राप्नुयाम । अत्र व्यत्ययेन श्यन् परस्मैपदं च । (तव) (रुद्र) न्यायाधीश (प्रणीतिषु) प्रकृष्टासु नीतिषु ॥२॥

अन्वयः—हे रुद्र ये वयं क्षयद्वीराय ते तुभ्यन्नमसा विधेम तान्नस्त्वं मृड नोस्मभ्यं मयस्कृधि च । हे रुद्र मनुः पितेव भवान् यच्छं च योश्चायेजे तदश्याम त उत वयं तव प्रणीतिषु वर्त्तमानाः सततं सुखिनः स्याम ॥२॥

भावार्थः—राजपुरुषाः स्वयं सुखिनो भूत्वा सर्वाः प्रजाः सुखयेयुः, नैवात्र कदाचिदालस्यं कुर्युः, प्रजाजनाश्च राजनीतिनियमेषु वर्तित्वा राजपुरुषान् सदा प्रीणयेयुः ॥२॥

Gr.—Be gracious unto us, O Rudra, bring us joy; thee, Lord of Heroes, thee with reverence will we serve.

Whatever health and strength our father Manu won by sacrifice may we, under thy guidance, gain.

योगी—हे रुद्र, हमारे लिए सुखयिता बन, तथा हमारे लिए सुख (की परिस्थितियाँ) उत्पन्न कर । हम तुझ क्षयद्वीर के लिए नमस् के द्वारा कार्यनिरत होते हैं (उपस्थित होते हैं) जिस शम् (रोगशमन) तथा 'योः' (भययावन) को हमारा पिता मनु प्रदान करता रहता है, हे रुद्र तेरे प्रकृष्ट प्रणयनों में (मार्ग-प्रदर्शनों में) हम उसे प्राप्त करें ॥१०॥

क्षयद्वीराय—दृश्यतां प्रथममन्त्रः । परमात्मा सदैव सुखयिताऽस्ति, यदि मनुष्यो वीरः स्यात् तथा सदैव मननशीलः (मनुपुत्रो भूत्वा) तिष्ठेत्, तस्य (परमात्मनः) च प्रेरणां प्राप्नोतु । गायत्रीमन्त्रेऽस्यै प्रेरणाया एव प्रार्थना ।

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया
क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरा-
रिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥३॥

सा०—हे मीढ्वः सेक्तः कामाभिवर्षक नित्यतरुण वा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


रुद्र क्षयद्वीरस्य क्षपितप्रतिपक्षस्य मरुद्भिर्युक्तस्य वातव सुमतिं शोभनां कल्याणीमनुग्रहात्मिकां बुद्धिं ते त्वत्सम्बन्धिनो वयं देवयज्यया देवयागेन त्वद्देवत्येन यज्ञेनाश्याम । प्राप्नवाम । त्वं चास्माकं विशः प्रजा अभिलक्ष्याचर । आगच्छ । किं कुर्वन् । सुम्नायन्नित् । सुम्नमिति सुखनाम । तासां प्रजानां सुखमिच्छन्नेव । सुखप्रद एव भवेत्यर्थः । ततो वयमरिष्टवीराः । वीर्याज्जायन्त इति वीराः प्रजाः । अरिष्टा अहिंसिता वीरा येषां तथाभूताः सन्तस्ते तुभ्यं हविश्च पुरोडाशादिकं जुहवाम । चोदित आधारे प्रक्षिपाम ॥ सुमतिम् । मतिर्मननम् । शोभनं मननं यस्यां बुद्धौ सा सुमतिः । नञ्सुभ्यामित्युत्तरपदान्तोदात्तत्वम् । देवयज्यया । छन्दसि निष्टर्क्येत्यादौ यजेर्यप्रत्ययो निपात्यते स्त्रीलिङ्गता च । मीढ्वः । मिह सेचने । दाश्वान्साह्वान्मीढ्वानिति क्वसुप्रत्ययान्तो निपातितः । सम्बुद्धौ मतुवसो रुरिति रुत्वम् । सुम्नायन् । सुम्नं परेषामिच्छति । छन्दसि परेच्छायामपीति क्यच् । न च्छन्दस्यपुत्रस्येतीत्वदीर्घयोर्निषेधः । देवसुम्नयोर्यजुषि काठके । पा० ७.४.३८ । इति विधीयमानमात्वं व्यत्ययेनात्रापि द्रष्टव्यम् ।

द०—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

**पदार्थः**—(अश्याम) प्राप्नुयाम (ते) तव (सुमतिम्) शोभनां बुद्धिम् (देवयज्यया) विदुषां सङ्गत्या सत्कारेण च (क्षयद्वीरस्य) क्षयन्तो निवासिता वीरा येन तस्य (तव) (रुद्र) रुतः सत्योपदेशान् राति ददाति तत्सम्बुद्धौ (मीढ्वः) सुखैः सिञ्चन् (सुम्नयन्) सुखयन् (इत्) अपि (विशः) प्रजाः (अस्माकम्) (आ) (चर) (अरिष्टवीराः) अरिष्टा अहिंसिता वीरा यासु ताः (जुहवाम) दद्याम (ते) तुभ्यम् (हविः) ग्रहीतुं योग्यं करम् ॥३॥

**अन्वयः**—हे मीढ्वो रुद्र सभाध्यक्ष राजन् वयं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव सुमतिमश्याम यः सुम्नयँस्त्वमस्माकमरिष्टवीरा विश आचर समन्तात्प्राप्नुयाः तस्य ते तव वयमिदश्याम ते तुभ्यं हविर्जुहवाम च ॥३॥

**भावार्थः**—राज्ञा प्रजाः सततं सुखयितव्याः प्रजाभी राजा च । यदि राजा प्रजाभ्यः करं गृहीत्वा न पालयेत्तर्हि स राजा दस्युवद्विज्ञेयः । याः पालिताः प्रजा राजभक्ता न स्युस्ता अपि चोरतुल्या बोध्या [illegible] ददति यतोऽयमस्माकं पालनं कुर्य्यात्, राजाप्येतत्प्रयोजनाय पालयति यतः प्रजा मह्यं करं प्रदद्युः ॥३॥

Gr.—By worship of the Gods may we, O Bounteous one, O Rudra, gain thy grace, Ruler of valiant men.

Come to our families, bringing them bliss : may we, whose heroes are uninjured, bring thee sacred gifts.

**योगी**—देवों की संगति तथा सत्कार के द्वारा हे रसवर्षक रुद्र, हम तुझ क्षयद्वीर की अनुग्रहात्मिका बुद्धि को प्राप्त करें, हमारी प्रजाओं में सुख प्रदान करता हुआ संचरण कर, नहीं हिंसित हुए हैं वीर जिनके ऐसे हम तुझे आत्मसमर्पण करें ॥३॥

क्षयद्वीरस्य—दृश्यतां प्रथमो मन्त्रः ।

यदि परमात्मनोऽनुग्रहात्मिका बुद्धिरिष्यते, तदा मनुष्येण दिव्यभावनायुक्तानां महात्मनां विदुषां च संगतिर्विधेया । परमात्मानं प्रति पूर्णमात्मसमर्पणं कर्तव्यम् । परमात्मानं प्रत्यात्मसमर्पणस्य भावोऽयं नास्ति यन्मनुष्यः स्वतन्त्रेच्छाशक्तिं त्यजतु, वैदिकदर्शनानुसारं स्वातन्त्र्यं तु विकासायानिवार्यम् । परन्तु परमात्मा मार्गदर्शकरूपेणास्ति, घनान्धकारेऽसौ दीपकं करे गृहीत्वाऽऽस्माकं मार्गेऽस्माभिः सह चलति, स मार्गो निरन्तरं द्रष्टव्यः । एतदेवाभिलक्ष्येयं प्रार्थना—'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय' । यो जनः परमात्मप्रकाशं पश्यति, सोऽरिष्टवीरस्तिष्ठति ।

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं
वङ्कुं कविमवसे निह्वयामहे ।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु
सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥४॥

सा०—अवसे रक्षणाय रुद्रं महादेवं निह्वयामहे । नितरामाह्वयामः । कीदृशम् । त्वेषं दीप्तं यज्ञसाधं यज्ञस्य साधयितारम् । एष हि यज्ञं स्विष्टं करोति । तथा च तैत्तिरीयके देवा वै यज्ञाद्रुद्रमन्तरायन्नित्युपक्रम्याम्नातम् । स्विष्टं वै न इदं भविष्यति यदिमं राधयिष्याम इति तत्स्विष्टकृत्त्वम् । तै० सं० २.६.८.३ । इति । वङ्कुं कुटिलगन्तारं [illegible] । स च रुद्रो दैव्यं देवस्य द्योतमानस्य

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



सम्बन्धिनं हेलः क्रोधमस्मदारेऽस्मत्तो दूरदेशेऽस्यतु। प्रेरयतु। अस्य महादेवस्य सुमतिमित् शोभनामनुग्रहरूपां बुद्धिमेव वयमा वृणीमहे। आभिमुख्येन सम्भजामहे॥ यज्ञसाधम्। यज्ञं साधयतीति यज्ञसात्। षिधू संराद्धौ। सिध्यतेरपारलौकिक इत्यात्वम्। यद्वा राध साध संसिद्धौ। अस्माद् ण्यन्तात् क्विप्। वङ्कुम्। वकि कौटिल्ये। औणादिक उप्रत्ययः। नि ह्वयामहे। निसमुपविभ्यो ह्व इत्यात्मनेपदम्। दैव्यम्। देवादघञौ। पा० ४.१.८५। इति प्राग्दीव्यतीयो यञ्। अस्यतु। असु क्षेपणे। दैवादिकः। वृणीमहे। वृङ् सम्भक्तौ। क्रयादिकः॥

द०—पुनस्तमेव विषयमाह॥

**पदार्थः**—(त्वेषम्) विद्युन्न्यायदीप्तिमन्तम् (वयम्) (रुद्रम्) शत्रुरोद्धारम् (यज्ञसाधम्) यो यज्ञं प्रजापालनं साध्नोति तम् (वङ्कुम्) दुष्टशत्रून् प्रति कुटिलम् (कविम्) सर्वेषां शास्त्राणां क्रान्तदर्शिनम् (अवसे) रक्षणाद्याय (नि) (ह्वयामहे) स्वसुखदुःखनिवेदनं कुर्महे (आरे) दूरे (अस्मत्) (दैव्यम्) देवेषु विद्वत्सु कुशलम् (हेडः) धार्मिकाणामनादरकर्तॄनधार्मिकाञ्जनान् (अस्यतु) प्रक्षिपतु (सुमतिम्) धर्म्यां प्रज्ञाम् (इत्) एव (वयम्) (अस्य) (आ) समन्तात् (वृणीमहे) स्वीकुर्महे॥४॥

**अन्वयः**—वयमवसे यं त्वेषं वङ्कुं यज्ञसाधं दैव्यं रुद्रं निह्वयामहे तथा वयं यस्यास्य सुमतिमावृणीमहे स इदेव सभाध्यक्षो हेडोऽस्मदारे अस्यतु॥४॥

**भावार्थः**—यथा प्रजास्था जना राजाज्ञां स्वीकुर्वन्ति तथा राजपुरुषा अपि प्रजाज्ञां मन्येरन्॥४॥

Gr.—Hither we call for aid the wise, the wanderer, impetuous Rudra, perfecter of sacrifice.

May he repel from us the anger of the Gods : verily we desire his favourable grace.

**योगी**—हम दीप्तिमान्, यज्ञ को पूर्ण करने वाले वङ्कु तथा कवि रुद्र को सहायता (रक्षा) के लिए आग्रहपूर्वक आहूत करते हैं। वह दैव्य क्रोध को हमसे दूर प्रक्षिप्त कर दे, हम इसकी अनुग्राहिका बुद्धि का ही वरण करते हैं॥४॥

वङ्कुः—वक्रगतिः। कविः—क्रान्तदर्शी।

परमात्मा पूर्णशक्तिशाली वीर्यवान् दीप्ति-

मांश्चास्ति। मनुष्यस्य सर्वाणि धर्मानुकूलकार्याणि तस्य कृपया सिध्यन्ति। केचन जना एवं चिन्तयन्ति यत्ते तं छलयितुं प्रभवन्ति तथा च ते वक्रतामाचरन्ति। एताहृशैर्जनैरिदमवगन्तव्यं यदसौ वङ्कूनां कृते महावङ्कुरस्ति तथा चासौ महान् क्रान्तदर्शी, न किंचिदपि तस्या दृष्टेरविषयः। यो वक्रगतिमाचरति, तस्य दैव्यः क्रोधस्तस्मिन् पतति। मनुष्येण सदाचारपरायणेनैव सर्वथा स्थातव्यम्। अयमेव मार्गो येन परमात्मनः सुमतिः प्राप्यते। —'ईश्वरोऽपि महावङ्कुर्योगिन् स हि पिता तव। अन्तः-पापं मनुष्यस्य दृश्यते मुखदर्पणे॥ (योगी प्रभु भी काइयां वह है तेरा बाप। वदन-मुकुर में दीखता अन्तर का सब पाप॥) 'परमात्मा वङ्कु' रित्यस्यायं भावोऽपि स्यात् यत्तस्य गतिर्विधि मनुष्यो नावगच्छति। कदाचिन्महाधर्मात्मानो जना दुःखसागरनिमग्ना दृश्यन्ते, पापाश्च सुखलीनाः। परमात्मनस्तु सर्वमपि गतिविधिजातं ऋजुनियममेवास्ति। धर्मात्मने दुःखं दीयते। कारणमिदं भवति यदसौ तस्मिन् वातावरणे संघर्षं कृत्योन्नतिं करिष्यति, एवमेव सुखलीनः पापोऽनिष्टमाचरिष्यति—इत्यादि सर्वमपि सुखदुःखात्मकं दृश्यं रहस्यमयम्, अज्ञातमार्गयामेकोक्तिः—God moves in a mysterious way (परमात्मा रहस्यमयेन मार्गेण संचरति)। यद्यपि परमात्मनः कार्यजातं सरलं यथानियमं चास्ति, तथा च तस्योद्देश्यं मनुष्याणामात्यन्तिकं हितमेव, परन्तु मनुष्या नावबोद्धुं पारयन्ति, अतः स वङ्कुरिति प्रतिभाति। अतः वेदमन्त्रा काव्यमयभाषया कथयन्ति मन्त्रेऽपि 'वङ्कुं कविम्' इति।'

74

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं
त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे।
हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि
शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत्॥५॥

सा०—वराहं वराहारमुत्कृष्टभोजनम्। यद्वा। वराहवद् दृढाङ्गम्। अरुषमारोचमानं कपर्दिनं जटाभिर्युक्तं त्वेषं तेजसा दीप्यमानं रूपं निरूपणीयं वेदान्तैरधिगम्यम् एवंभूतं रुद्रं नमसा हविर्लक्षणेनान्नेन नमस्कारेण वा दिवो द्युलोकसकाशान्नि ह्वयामहे। नितरामाह्वयामः। स आहूतो रुद्रो हस्ते स्वकीये बाहौ वार्याणि सर्ववरणीयानि भेषजा औषधानि, रोगशमनहेतुभूतानि बिभ्रत् धारयन् अस्मभ्यं

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection.

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


स्तोतृभ्यः शर्मारोग्यलक्षणं सुखं वर्मायुधानां निवारकं कवचं छर्दिः । गृहनामैतत् । गृहं च यंसत् । प्रयच्छतु ॥ बिभ्रत् । डुभृञ् धारणपोषणयोः । जौहोत्यादिकः । लटः शतृ । भृञामिदित्यभ्यासस्येत्वम् । भेषजा । भिषज् चिकित्सायाम् । कण्ड्वादिः । पचाद्यच् । अतो लोपयलोपौ । सुमङ्गलभेषजाच्च । पा० ४.१.३० । इति निपातनाद्रूपसिद्धिः । शेश्छन्दसि बहुलमिति शेर्लोपः । वार्याणि । वृङ् सम्भक्तौ । ऋहलोर्ण्यत् । ईडवन्देत्याद्युदात्तत्वम् । छर्दिः । उछृदिर् दीप्तिदेवनयोः । छृद्यते दीप्यते सुवर्णादिभिर्वनैः प्रकाश्यत इति च्छर्दिर्गृहम् । अर्चिशुचिहुसृपिच्छादिच्छर्दिभ्य इसिः । यंसत । यम उपरमे । लेटच्डागमः । सिब्बहुलं लेटीति सिप् । इतश्च लोप इतीकारलोपः ॥५॥

द०—अथ वैद्यविषयमाह ॥

पदार्थः—( दिवः ) विद्यान्यायप्रकाशितव्यवहारान् (वराहम्) मेघमिव (अरुषम्) अश्वादिकम् (कपर्दिनम्)कृतब्रह्मचर्यं जटिलं विद्वांसम् (त्वेषम्) प्रकाशमानम् (रूपम्) सुरूपम् (नमसा) अन्नेन परिचर्यया च (नि) (ह्वयामहे) स्पर्द्धामहे (हस्ते) करे (बिभ्रत्) धारयन् (भेषजा) रोगनिवारकाणि (वार्याणि) ग्रहीतुं योग्यानि साधनानि (शर्म) गृहं सुखं वा (वर्म) कवचम् (छर्दिः) दीप्तियुक्तं शस्त्रास्त्रादिकम् (अस्मभ्यम्) (यंसत्) यच्छेत् ॥५॥

अन्वयः—वयं नमसा यो हस्ते भेषजा वार्याणि बिभ्रत् सन् शर्म वर्म छर्दिरस्मभ्यं यंसत् तं कपर्दिनं वैद्यं दिवो वराहमरुषं रूपं च निह्वयामहे ॥

भावार्थः—ये मनुष्या वैद्यमित्राः पथ्यकारिणो जितेन्द्रियाः सुशीला भवन्ति त एवास्मिञ्जगति नीरोगा भूत्वा राज्यादिकं प्राप्य सुखमेधन्ते ॥५॥

Gr.—Him with the braided hair we call with reverence down, the wild-boar of the sky, the red, the dazzling shape.

May he, his hand full of sovran medicines, grant us protection, shelter, and a home secure.

वराहः—या०—वराहो मेघो भवति वराहारः... अयमपीतरो वराह एतस्मादेव वरमाहारमाहार्षीरिति च ब्राह्मणम्, बृहति मूलानि वरं वरं मूलं बृहतीति वा... अङ्गिरसोऽपि वराहा उच्यन्ते । अथाप्येते माध्यमका देवगणा वराहा उच्यन्ते ।

दु०—माध्यमका देवगणाः=मरुतो रुद्रा एवमादयः ।

योगी—द्युलोक के आरोचमान, कपर्दी, दीप्तिमान्, निरूपणीय (अथवा सुरूप) वराह को नमस् के द्वारा प्रकृष्ट रूप से आहूत करते हैं । हाथ में वरणीय भेषजों को धारण करता हुआ [वह] हमें सुख, कवच और गृह (अथवा दीप्ति) का दान करे ॥५॥

वर्म=कवचम्=सुरक्षा, संसारे निरन्तरमस्मान् प्रत्यागच्छद्भिराघातैरक्षतत्वम्, वृञ् वरणे । छर्दिः=गृहम्—छृदि दीप्तिदेवनयो; छृदी सन्दीपने ।

कपर्दी—दृश्यतां प्रथमो मन्त्रः ।

वराहः—दुर्दमशक्तिर्महानन्दश्च, तारकगणो विद्युल्लसितमेघः, सूर्यश्च ।

यदि भगवतो महिमा द्रष्टव्यो यदि वा भगवान् साक्षात्करणीयस्तदा द्युलोको लोचनगोचरीकरणीयः—तारकमण्डितो द्युलोक आरोचमानो दीप्तिमान् अत्यन्तं सुन्दरश्च प्रतिभाति । विभिन्नपशुपक्षिसमाकाराणि तारकाणि दृश्यन्ते । दिवसे सूर्य एकाकी परिभ्रमति दीप्तिमानारोचमानो महासुन्दरश्च । कदाचिदाकाशे विद्युल्लसिता मेघाः (वराहाः) मनो हरन्ति । इदं सर्वं विशालमारोचमानं जगत् यद् वयं स्वःशिरस उपरि पश्यामः, तस्य भगवतः सुन्दरलीलाया अल्पोंऽशः । एतादृशः शाश्वतसुन्दरो महाशक्तिशाली (वन्यवराहवदनिरुद्धः) भगवान् अस्माकं पिता । यदि वयमात्मरूपं परिचिनुमस्तदा महाशक्तिसंपन्ना भूत्वा शाश्वते सुखे निवत्स्यामः । सर्वेषां रोगदुःखानां दूरीकर्ताऽपि रुद्र एव ।

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः
स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं
त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥६॥

सा०—इदं स्तुतिलक्षणं वचो मरुतामेकोनपञ्चाशत्सङ्ख्याकानां देवविशेषाणां पित्रे जनकाय रुद्रायेश्वरायोच्यते । उच्चार्यते । कीदृशम् । स्वादोः स्वादीयो रसवतो मधुघृतादेरपि स्वादुतरम् । अतिशयेन हर्षजनकमित्यर्थः । वर्धनं स्तुत्यस्य प्रवर्धकम् । स्तोत्रेण हि देवता हृष्टा सती प्रवर्धते ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



रुद्रस्य च मरुतां पितृत्वमेवमाख्यायते । पुरा कदाचिदिन्द्रो ऽपुराञ्जिगाय । तदानीं दितिरसुरमातेन्द्रहननसमर्थं पुत्रं कामयमाना तपसा भर्तुः सकाशाद् गर्भं लेभे । इमं वृत्तान्तमवगच्छन्निन्द्रो वज्रहस्तः सन् सूक्ष्मरूपो भूत्वा तस्या उदरं प्रविश्य तं गर्भं सप्तधा बिभेद । पुनरप्येकैकं सप्तखण्डमकरोत् । ते सर्वे गर्भैकदेशा योनेर्निर्गत्यारुदन् । एतस्मिन्नवसरे लीलार्थं गच्छन्तौ पार्वतीपरमेश्वराविमान् ददृशतुः । महेशं प्रति पार्वत्येवमवोचत् । इमे मांसखण्डा यथा प्रत्येकं पुत्राः सम्पद्यन्तामेवं त्वया कार्यं मयि चेत्प्रीतिरस्तीति । स च महेश्वरस्तान्समानरूपान् समानवयसः समानालङ्कारान् पुत्रान्कृत्वा गौर्यै प्रददौ तवेमे पुत्राः सन्त्विति । अतः सर्वेषु मारुतेषु सूक्तेषु मरुतो रुद्रपुत्रा इति स्तूयन्ते । रौद्रेषु च मरुतां पिता रुद्र इति । अपि च हे अमृत मरणरहित रुद्र मर्तभोजनं मर्तानां मनुष्याणां भोगपर्याप्तमन्नं नोऽस्मभ्यं रास्व । प्रयच्छ । तथा त्मने आत्मने । द्वितीयार्थे चतुर्थी । मां तोकाय तोकं पुत्रं तनयाय तत्पुत्रं च मृळ । सुखय ॥ पित्रे । उदात्तयण इति विभक्तेरुदात्तत्वम् । रास्व । रा दाने । व्यत्ययेनात्मनेपदम् । त्मने । मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मन इत्यत्राङोऽन्यत्रापि च्छन्दसि दृश्यते । का० ६.४.१४१.१ । इति वचनादात्मन आकारलोपः ॥

द०—पुनर्वैद्योपदेशकौ कथं वर्त्तेयातामित्युपदिश्यते ॥

पदार्थः—(इदम्) (पित्रे) पालकाय (मरुताम्) ऋतावृतौ यजतां विदुषाम् (उच्यते) उपदिश्यते (वचः) वचनम् (स्वादोः) स्वादिष्ठात् (स्वादीयः) अतिशयेन स्वादु प्रियकरम् (रुद्राय) सभाध्यक्षाय (वर्धनम्) वृद्धिकरम् (रास्वा) देहि । अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः । (च) अनुक्तसमुच्चये (नः) अस्मभ्यमस्माकं वा (अमृत) नास्ति मृतं मरणदुःखं येन तत्सम्बुद्धौ (मर्तभोजनम्) मर्त्तानां मनुष्याणां भोग्यं वस्तु (त्मने) आत्मने (तोकाय) ह्रस्वाय बालकाय (तनयाय) यूने पुत्राय (मृड) सुखय ॥६॥

अन्वयः—हे अमृत विद्वन् वैद्यराजोपदेशक वा त्वं नोऽस्मभ्यमस्माकं वा त्मने तोकाय तनयाय च स्वादोः स्वादीयो मर्त्तभोजनं रास्व यदिदं मरुतां वर्धनं वचः पित्रे रुद्राय त्वयोच्यते तेनास्मान् मृड ॥६॥

भावार्थः—वैद्यस्योपदेशकस्य चेयं योग्यतास्ति स्वयमरोगः सत्याचारी भूत्वा सर्वेभ्यो मनुष्येभ्य औषधदानेनोपदेशेन चोपकृत्य सर्वान् सततं रक्षेत् ॥६॥

Gr—To him the Maruts, Father is this hymn addressed, to strengthen Rudra's might, a song more sweet than sweet.

Grant us, Immortal One, the food which mortals eat : be gracious unto me, my Seed, my progeny.

मरुतः—या०—'अथातो मध्यस्थाना देवगणास्तेषां मरुतः प्रथमागामिनो भवन्ति मरुतो मितराविणो वा मितरोचिनो वा महद् द्रवन्तीति वा ।

दु०—वायुरेव भेदेनापेक्ष्यमाणो मरुदभिधानो बहुवचनभाग् भवति । (मितराविणः) 'अमितराविणः' इति केचिदिच्छन्ति ।

योगी—मरुतों के पिता (रुद्र) के लिए यह वचन कहा जाता है, [यह] स्वादु से अधिक स्वादु है [तथा] रुद्र के लिए वृद्धि को करने वाला है। हे अमृत (रुद्र), हमारे लिए मर्त्यभोजन दे [तथा] हमारे लिए तथा हमारे पुत्रों और पौत्रों के लिए सुख की व्यवस्था कर ॥६॥

रुद्रः—दृश्यतां प्रथममन्त्रः ।

अहं रुद्रस्य महामहिमानं जानामि । तं महिमानं मनोगोचरीकृत्य प्रेमप्रशंसादिभावनिमग्नो भवामि । मधुरतमशब्देषु मम हृदयात् काव्यं प्रवर्त्तते । रुद्रोऽमृतः । मर्त्योऽहम् । मर्त्येभ्यः स्वाभाविकेच्छा मम मनस्युद्भवन्ति । तासामिच्छानां पूर्तिरपि मयेष्यते, यतो हि पञ्चभूतशरीरं मया सह संलग्नमस्ति । अस्यापीच्छाः सन्ति । अस्य कृते मर्त्यभोजनम् इष्यते ।

टिप्पणी—अस्मिन् मन्त्रेऽयं भावो यन्मर्त्यस्य कृते सांसारिकभोगाः परित्याज्या न सन्ति—'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' (वैशे० द०) । चतुर्वर्गप्राप्तिरेव पुरुषार्थः; (चतुर्वर्गमध्येऽर्थकामौ); 'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ (गीता); 'भोगयोगपरो भव' (योगवाशिष्ठम्), ईशोपनिषद्यविद्याविद्ययोः समन्वयः प्रतिपादितः —'विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह । अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥" जीवात्मा यदि स्वामी भूत्वा भोगाश्वमधिरोहति, तदा स तस्याश्वस्य साहाय्येन लक्ष्यं प्राप्नोति । भोगाश्वस्य नाशेनापि न लक्ष्यप्राप्तिः ।

आध्यात्मिकदृष्ट्येन्द्रियाणि मरुतः । एषामिन्द्रियाणां

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

पिता (पाता=रक्षकः) परमात्मैव । यदि मनुष्य इन्द्रिय-निग्रहमिच्छति तदाऽसौ परमात्मप्रकाशप्रेप्सया प्रयत्नं करोतु ।

**मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं**
**मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।**
**मा नो वधीः पितरं मोत मातरं**
**मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिष ॥७॥**

सा०—हे रुद्र नोऽस्माकं मध्ये महान्तं वृद्धं मा वधीः । मा हिंसीः । उतापि च नोऽस्माकमर्भकं बालं मा हिंसीः । तथा नोऽस्माकं मध्य उक्षन्तं सेक्तारं मध्यवयस्कं युवानं मा वधीः । उतापि च नोऽस्माकमुक्षितं गर्भरूपेण स्त्रीषु निषिक्तमपत्यं मा वधीः । तथा नोऽस्माकं पितरं जनकं मा वधीः । तथा मातरं जननीं मा वधीः । तथा च नोऽस्माकं प्रियाः स्नेहविषयास्तन्वः शरीराणि तनूषु भवाः प्रजा वा हे रुद्र मा रिरिषः । मा हिंसीः । वधीः ॥ हन्तेर्माङि लुङि चेति वधादेशः । स चादन्तः । सिच इट् । अतो लोपस्य स्थानिवद्भावाद्वृद्ध्यभावः । रिरिषः । रिष हिंसायाम् । ण्यन्ताल्लुङि चङि णिलोपोपधाह्रस्वत्वादीनि । छान्दसः पदकालीनोऽन्यासह्रस्वः ॥

द०—अथ न्यायाधीशः कथं वर्त्तेतेत्युपदिश्यते ॥

पदार्थः—(मा) निषेधे (नः) अस्माकम् (महान्तम्) वयोविद्यावृद्धं जनम् (उत) अपि (मा) (नः) अर्भकम् बाल्यावस्थापन्नम् (मा) (नः) (उक्षन्तम्) वीर्यसेचनसमर्थं युवानम् (उत) (मा) (नः) (उक्षितम्) वीर्यसेचनस्थितं गर्भं (मा) (नः) (वधीः) हिन्धि (पितरम्) पालकं जनकं विद्वांसं वा (मा) (उत) (मातरम्) मानसन्मानकर्त्रीं जननीं विदुषीं वा (मा) (नः) (प्रियाः) अभीप्सिताः (तन्वः) तनूः शरीराणि (रुद्र) न्यायाधीश दुष्टरोदयितः (रीरिषः) जहि । अत्र तुजादित्वाद्दीर्घः ॥७॥

अन्वयः—हे रुद्र त्वं नोऽस्माकं महान्तं मा वधीरुतापि नोऽर्भकं मा वधीः । न उक्षन्तं मा वधीरुतापि न उक्षितं मा वधीः नः पितरं मा वधीः उत मातरं मा वधीः नः प्रियास्तन्वस्तनूः मा वधीरन्यायकारिणो दुष्टांश्च रीरिषः ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्या यथा जगदीश्वरः पक्षपातं विहाय धार्मिकानुत्तमकर्मफलदानेन सुखयति पापिनश्च पापफलदानेन पीडयति तथैव यूयं प्रयतध्वम् ॥७॥

Gr.—O Rudra, harm not either great or small of us, harm not the growing boy, harm not the full grown man.

Slay not a sire among us, slay no mother here, and to our own dear bodies, Rudra, do no harm.

उक्षन्तम्—या०—उक्षतिर्वृद्धिकर्मा ।

योगी—हे रुद्र, हममें से बड़े, छोटे को; वृद्धि को प्राप्त होते हुए, वृद्धि को प्राप्त हुए को; हमारे पिता, माता को नष्ट न कर [तथा] हमारे प्रिय शरीरों को हिंसित न कर ॥७॥

उक्षन्तम्—या० उक्षतिर्वृद्धिकर्मा; धातुपाठे —उक्ष् सेचने ।

मनुष्यस्य जीवने प्रतिक्षणं सदसतोः संघर्षः । यः परमात्मनियमान् अनुसरति स सदैवाहिंसितस्तिष्ठति ।

**मा नस्तोके तनये मा न आयौ**
**मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।**
**वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्**
**हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥८॥**

सा०—हे रुद्र नोऽस्माकं तोकादिविषये मा रिरिषः । मा हिंसीः । तोकशब्दः पुत्रवाची । तनयस्तत्पुत्रः । आयुरित्यन्तोदात्तो मनुष्यनाम । पुत्रपौत्रव्यतिरिक्तो योऽस्मदीयो मनुष्यस्तस्मिन् गोषु पश्वादिष्वश्वेषु च मा रिरिषः । हिंसां मा कृथाः । तथा हे रुद्र वीरान् विक्रान्तान् शौर्योपेतानस्मदीयान् भामितः क्रुद्धः सन् मा वधीः । मा हिंसीः । वयं च हविष्मन्तो हविर्भिर्युक्ताः सन्तः सदमित् सर्वदैव त्वां हवामहे । आह्वयामहे ॥ आयौ । इण् गतौ । छन्दसीण इत्युण्प्रत्ययः । भामितः । भाम क्रोधे क्रोधिकरणे चेति कर्तरि क्तः । हवामहे । ह्वेञो लटि बहुलं छन्दसीति सम्प्रसारणम् ॥

द०—पुनः राजजनाः कथं वर्त्तेरन्नित्युपदिश्यते ॥

पदार्थः—(मा) (नः) अस्माकम् (तोके) सद्योजाते-ऽपत्ये पुत्रे (तनये) अतीतशैशवावस्थे (मा) (नः) (आयौ) जीवनविषये (मा) (नः) (गोषु) धेनुषु (मा) (नः) (अश्वेषु) वाजिषु (रीरिषः) हिंस्याः (वीरान्) (मा) (नः) अस्माकम् (रुद्र) (भामितः) क्रुद्धः सन् (वधीः) हन्याः (हविष्मन्तः)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



हवींषि प्रशस्तानि जगदुपकरणानि कर्माणि विद्यन्ते येषां ते (सदम्) स्थिरं वर्त्तमानं ज्ञानमाप्तम् (इत्) एव (त्वा) त्वाम् (हवामहे) स्वीकुर्महे ॥८॥

**अन्वयः**—हे रुद्र हविष्मन्तो वयं यतस्सदं त्वामिदमेव हवामहे तस्माद्भामितस्त्वं नस्तोके तनये मा रीरिषो न आयौ मा रीरिषः। नो गोषु मा रीरिषः। नोऽश्वेषु मा रीरिषः नो वीरान् मा वधीः ॥८॥

**भावार्थः**—न कदाचिद्राजपुरुषैः क्रुद्धैः सद्भिः कस्याप्यन्यायेन हननं कार्य्यं गवादयः पशवः सदा रक्षणीयाः प्रजास्थैर्जनैश्च राजाश्रयेणैव निरन्तरमानन्दितव्यम्। सर्वैर्मिलित्वैवं जगदीश्वरः प्रार्थनीयश्च हे परमेश्वर भवत्कृपया वयं बाल्याऽवस्थायां विवाहादिभिः कुकर्मभिः पुत्रादीनां हिंसनं कदाचिन्न कुर्य्याम पुत्रादयोऽप्यस्माकमप्रियं न कुर्य्युः। जगदुपकारकान् गवादीन् पशून् कदाचिन्न हिंस्यामेति ॥८॥

Gr.—Harm us not, Rudra, in our seed and progeny, harm us not in the living, nor in cows or steeds.

Slay not our heroes, in the fury of thy wrath. Bringing oblations evermost we call to thee.

**योगी**—हे रुद्र हमारे पुत्र, पौत्र तथा अन्य [बन्धु] मनुष्य के विषय में तथा हमारी गौओं और अश्वों के विषय में हिंसायुक्त न हो। क्रुद्ध हुआ तू हमारे वीरों का वध न कर। हवि से युक्त हुए हम सदैव तेरा आह्वान करते हैं ॥८॥

गतमन्त्रे प्रार्थनाऽऽसीत्—'रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनम्', अष्टममन्त्रो 'मर्तभोजनम्' इत्यस्य विस्तरः। यदा मनुष्यो दुष्कर्माणि करोति, तदासौ पुत्रपौत्रबन्धुजनगवाश्ववीररहितो भवति। अस्मिन् संसारे भोगस्य (भोजनस्य) इमानि साधनानि। भोगरहितो मनुष्यो योगसाधनं कर्तुं न पारयति (अत्रेदमवधेयं यद् भोगान् अनावश्यकान् मत्वा भोगत्यागी जनस्तु योगसाधनं कर्तुमलमेव)।

उप ते स्तोमान्पशुपा इवाकरं
रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमा-
था वयमव इत्ते वृणीमहे ॥९॥

**सा०**—हे रुद्र स्तोमान् स्तुतिरूपान्मन्त्रान् ते तुभ्यमुपाकरम्। उपाकरोमि। समर्पयामि। तत्र दृष्टान्तः। पशुपा इव। यथा पशूनां पालयिता गोपः प्रातःकाले स्वस्मै समर्पितान्पशून् सायंकाले स्वामिभ्यः प्रत्यर्पयति एवं त्वत्सकाशाल्लब्धान् स्तुतिरूपान्मन्त्रान् स्तुतिसाधनतया तुभ्यं प्रत्यर्पयामीत्यर्थः। हे मरुतां पितर्मरुत्संज्ञानां देवानामुत्पादक रुद्र नोऽस्मभ्यं सुम्नं सुखं रास्व। देहि। अपि च ते त्वदीया सुमतिः कल्याणी बुद्धिर्मृळयत्तमातिशयेन सुखयितृतमा। अतएव भद्रा भजनीया हि। यस्मादेवं तस्मादथानन्तरं वयं ते त्वदीयमवो रक्षणं वृणीमहे। सम्भजामहे ॥ अकरम्। छन्दसि लुङ्लङ्लिट इति वर्तमाने लुङ्। कृमृदृरुहिभ्य इति च्लेरङादेशः। ऋदृशोऽङि गुणः। पितर्मरुताम्। परमपि च्छन्दसीति परस्याः षष्ठ्याः पूर्वामन्त्रितानुप्रवेशे सत्यामन्त्रितस्य चेति पदद्वयमप्यनुदात्तम्। अस्मे। सुपां सुलुगिति चतुर्थीबहुवचनस्य शेआदेशः। मृळयत्तमा। मृड सुखने। अस्माद् ण्यन्ताल्लटः शतृ। तस्य च्छन्दस्युभयथेत्यार्धधातुकत्वाल्लसार्वधातुकानुदात्तत्वाभावे प्रत्ययस्वरः शिष्यते ॥

**द०**—पुना राजप्रजाजनाः परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्युपदिश्यते ॥

**पदार्थः**—(उप) (ते) तुभ्यम् (स्तोमान्) स्तुत्यान् रत्नादिद्रव्यसमूहान् (पशुपाइव) यथा पशुपालको गवादिभ्यो दुग्धादिकं गृहीत्वा गोस्वामिने समर्पयति (आ) (अकरम्) करोमि (रास्व) देहि द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः। (पितः) पालयिता रुद्र (मरुताम्) ऋत्विजाम् (सुम्नम्) सुखम् (अस्मे) मह्यम् (भद्रा) कल्याणरूपा (हि) यतः (ते) तव (सुमतिः) शोभना प्रज्ञा (मृडयत्तमा) अतिशयेन सुखकर्त्री (अथ) अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। (वयम्) (अवः) रक्षणादिकम् (इत्) एव (ते) तव (वृणीमहे) स्वीकुर्महे ॥९॥

**अन्वयः**—हे मरुतां पितर्ह्यहं पशुपाइव स्तोमांस्त उपाकरमतस्त्वमस्मे मह्यं सुम्नं रास्वाथ या ते तव मृडयत्तमा भद्रा सुमतिर्यत् ते तवावोऽस्ति तां तच्च वयं यथा वृणीमहे तथैवमस्मान् स्वीकुरु ॥९॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । प्रजापुरुषा राजपुरुषेभ्यो राजनीतिं राजपुरुषाः प्रजापुरुषेभ्यः प्रजाव्यवहारं बुद्ध्वा विदितवेदितव्याः सन्तः सनातनं धर्ममाश्रयेयुः ॥९॥

Gr.—Even as a herdsman I have brought thee hymns of praise: O Father of the Maruts, give us happiness.

Blessed is thy most favouring benevolence, so, verily, do we desire thy saving help.

स्तोमः—या०—स्तोमः स्तवनात्, स्तोमः=अर्कः ।

द्व०—स्तुतिः, स्तोत्रम् ।

योगी—हे मरुतों के पिता रुद्र, पशुपालक के समान मैं तेरे लिए स्तोमों को लाता हूँ, तू हमें सुख दे। हम तेरी सर्वाधिक निरन्तर सुख देती हुई भद्र सुमति का दृढ निश्चय से वरण करते हैं ॥९॥

मरुतः—दृश्यतां षष्ठो मन्त्रः ।

सुमतिः—दृश्यतां तृतीयो मन्त्रः ।

मनुष्य एवमाचरणं करोतु यदसौ रुद्रस्य सुमतौ तिष्ठतु । यदि मनुष्यः परमात्मानं वाचा स्तौति (स्तोमेन सह तमुपतिष्ठते), परं तस्य कृते नानासत्कार्यरूपिदुग्धमिष्टान्नाद्युपायनं न ददाति, तदाऽसौ तस्य (रुद्रस्य) सुमतौ न तिष्ठति । यथा कश्चित् कस्यचित् समीपे समागत्य स्तुतिगानं प्रारभते, परं तस्य स्तुत्यस्य कृते तदुचितकरं वस्तुजातं न समर्पयेत् अथवा तस्य कृतेऽनुकूलं कार्यजातं न कुर्यात्, तदा स्तुतः प्रसन्नो न भवति । यो जनः 'पशुपाः' भवति, गवां दुग्धादिवस्तुजातं तस्य स्वप्रेमपात्रस्य कृते समानयति । परमात्मनः पक्षे स मनुष्यः पशुपा यो पशुसदृशात्मेन्द्रियाणां नियन्त्रणं करोति ।

**आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं**
**क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।**
**मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवा-**
**धा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥१०॥**

सा०—हे क्षयद्वीर क्षपितसर्वजनशत्रो रुद्र ते त्वदीयं गोघ्नं यद् गोहननं यद्वा गोहननसाधनमायुधम् उतापि च पूरुषघ्नं पुरुषहननं तत्साधनमायुधं वा तदुभयमारे दूरेऽस्मत्तो विप्रकृष्टदेशे भवतु । अस्मे अस्मासु ते त्वदीयं सुम्नं सुखमस्तु । भवतु । अपि च नोऽस्माकं मृळ । सुखसिद्धयर्थं प्रसन्नो भव । हे देव द्योतमान रुद्र नोऽस्मानधि ब्रूहि च । अधिवचनं पक्षपातेन वचनं ब्राह्मणायाधि ब्रूयात् । तै० सं० २.५.११.९ । इति यथा । अध चानन्तरं च द्विबर्हाः द्वयोः स्थानयोः पृथिव्यामन्तरिक्षे च परिवृढः । यद्वा । द्वयोर्दक्षिणोत्तरमार्गयोर्ज्ञानकर्मणोर्वा परिवृढः स्वामी । स त्वं नोऽस्मभ्यं शर्म सुखं यच्छ । देहि । । गोघ्नम् । हन हिंसागत्योः । अस्माद्धनर्थे कविधानमिति भावे करणे वा कप्रत्ययः । गमहनेत्युपधालोपः । हो हन्तेरिति कुत्वम् । द्विबर्हाः । बृह वृहि वृद्धौ । द्वयो स्थानयोर्वर्हते प्रवर्धत इति द्विबर्हाः । असुन् । कुदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् ॥

द०—पुना राजप्रजाधर्म उपदिश्यते ॥

पदार्थः—(आरे) समीपे दूरे च (ते) तव सकाशात् (गोघ्नम्) गवां हन्तारम् (उत) (पूरुषघ्वम्) पुरुषाणां हन्तारम् (क्षयद्वीर) शूरवीरनिवासक (सुम्नम्) सुखम् (अस्मे) अस्मभ्यम् (ते) तुभ्यम् (अस्तु) भवतु (मृडय) । अत्रान्तर्भावितो ण्यर्थः । द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घश्च । (च) (नः) अस्मान् (अधि) आधिक्ये (च) (ब्रूहि) आज्ञापय (देव) दिव्यकर्मकारिन् (अध) आनन्तर्ये । अत्र वर्णव्यत्ययेन थस्य धो निपातस्य चेति दीर्घश्च । (च) (न) (शर्म) गृहसुखम् (यच्छ) देहि (द्विबर्हाः) द्वयोर्व्यवहारपरमार्थयोर्वर्धकः ॥१०॥

अन्वयः—हे क्षयद्वीर देव पुरुषघ्नं च निवार्यं तेऽस्मे च सुम्नमस्तु । अथाथ त्वं कोऽस्मान् मृडाहं च त्वां मृडानि त्वं नोऽस्मानधिब्रूहि । अहं त्वां चाधिब्रुवाणि । द्विबर्हास्त्वं नः शर्म यच्छ, अहं वः शर्म यच्छानि सर्वे वयमारे धर्मात्मनां निकटे दुष्टात्मभ्यो दूरे च वसेम ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्यैः प्रयत्नेन पशुघातिभ्यो मनुष्यघातिभ्यश्च दूरे निवसनीयम् । स्वेभ्य एते दूरे निवासनीयाः । राजा प्रजापुरुषेश्च परस्परमुद्दिश्य सभां निर्माय रक्षणं विधाय व्यवहारपरमार्थौ साधनीयौ ।

Gr—Far be thy dart that killeth men or cattle: thy bliss be with us, O thou Lord of Heroes.

Be gracious unto us, O God, and bless us, aud then vouchsafe us doubly-strong protection.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



**योगी**—हे क्षयद्वीर तेरा गोघ्न और पुरुषघ्न आयुध हमसे दूर रहे, तेरा सुख हम में निवास करे। तू हमें सुख दे। हे देव, हमारे पक्ष में कथन कर तथा हे 'दो के बढ़ाने वाले' हमें सुख दे ॥१०॥

क्षयद्वीरः=प्रथमो मन्त्रो दृश्यताम्।

ये सदाचारेण न वसन्ति, तेषां संपत्तिर्नश्यति, ते स्वयमपि नश्यन्ति, तेषां पौरुषमोजोमयसत्त्वं प्रभावशालित्वं चापगच्छति, ते पुरुषा एव न तिष्ठन्ति। यदि तेषां समीपे संपत्तिः (गौः) स्यादपि, तदाऽपि सा नष्टेव भवति यतस्तस्या भोगं ते न प्राप्नुवन्ति। परमात्मनः कृपया भोगयोगयोरविद्याविद्ययोरभ्युदयनिःश्रेयसयोश्चोभयोः सिद्धिर्भवति। प्रतीकात्मकदृष्ट्या गौः=ज्ञानम्; पुरुषः=शक्तिः।

**अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः**
**शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान्।**
**तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता-**
**मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥**

**सा०**—अवस्यवोऽवोऽन्नं रक्षणं वेच्छन्तो वयमवोचाम। एतत्सूक्तरूपं स्तोत्रमवादिष्म। अस्मै रुद्राय नमो नमस्कारोऽस्तु। मरुत्वान्मरुद्भिः स्वकीयैः पुत्रैर्युक्तो रुद्रश्च नोऽस्माकं हवमाह्वानं शृणोतु स्वीकरोतु। यदस्माभिरुक्तं नोऽस्मदीयं तत्सर्वं मित्रादयः षड्देवता ममहन्ताम्। (मित्रः प्रमीतेस्त्राता वरुणोऽनिष्टाना निवारयिता अदितिरदीनाऽखण्डनीया वा देवमाता सिन्धुः स्यन्दनशीलोदकात्मा देवता पृथिवी प्रथिता भूदेवता। सा० ऋ० १.९४।) पूजयन्तु। उतशब्दोऽप्यर्थे।। अवोचाम। ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि। लुङि ब्रुवो वचिः। अस्यतिवक्तीत्यादिना च्लेरङादेशः। वच उमित्युमागमः। अवस्यवः। अव रक्षणे। भावेऽसुन्। सुप आत्मनः क्यच्। क्याच्छन्दसीत्युप्रत्ययः। हवम्। भावेऽनुपसर्गस्येत्यप् सम्प्रसारणं च। मरुत्वान्। झय इति मतुपो वत्वम्। तसौ मत्वर्थ इति भत्वेन पदत्वाभावाज्जश्त्वाभावः।

**द०**—पुनरध्यापकोपदेशकव्यवहारमाह ॥

**पदार्थः**—(अवोचाम) वदेम (नमः) नमस्त इति वाक्यम् (अस्मै) माननीयाय सभाध्यक्षाय (अवस्यवः) आत्मनोऽवो रक्षणादिकमिच्छवः (शृणोतु) (नः) अस्माकम् (हवम्) आह्वानरूपं प्रशंसावाक्यम् (रुद्रः) अधीतविद्यः (मरुत्वान्) बलवान् (तत्) (नः) (मित्रः) प्राणः (वरुणः) उदानः (मामहन्ताम्) वर्द्धन्ताम्। व्यत्ययेनात्र शपः श्लुः। (अदितिः) उत्पन्नं वस्तुमात्रं जनित्वं कारणं वा (सिन्धुः) समुद्रः (पृथिवी) भूमिः (उत) अपि (द्यौः) विद्युत्प्रकाशः ॥१॥

**अन्वयः**—अवस्यवो वयमस्मै सभाध्यक्षाय नमोऽवोचाम स मरुत्वान् रुद्रो नस्तन्नोऽस्माकं हवं च शृणोतु। हे मनुष्या यन्नो नमो मित्रो वरुणोऽदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौर्वर्धयन्ति तद्भवन्तो मामहन्ताम्।

**भावार्थः**—प्रजास्थैः पुरुषै राज्ञां प्रियाचरणानि नित्यं कर्त्तव्यानि राजभिश्च प्रजाजनानां वचांसि श्रोतव्यानि। एवं मिलित्वा न्यायमुन्नीयान्यायं निराकुर्युः ॥११॥

Gr.—We, seeking help, have spoken and adored him : may Rudra, girt by Maruts, hear our calling.

This prayer of ours may Varuna grant, and Mitra, and Aditi and Sindhu, Earth and Heaven.

**मित्रः**—या०—मित्रः प्रमीतेस्त्रायते संमिन्वानो द्रवतीति वा मेदयतेर्वा। दु०—'प्रमीतिः प्रमरणं ततः सर्वलोकं त्रायते वर्षद्वारेण'...'समन्ततो मिन्वानः उदकेन द्रवत्यन्तरिक्षलोके...'सर्वं ह्यसावुदकेन स्नेहयति।'

**अदितिः**—या० 'अदितिरदीना देवमाता।'

दु०—'अदीना' इत्यौर्णवाभः। देवमाताऽभिधेयैतिहासिकपक्षेण...नैरुक्तपक्षेण पुनः 'एतानि' द्युलोकादीनि सर्वाणि 'अदीनानि' अनुपक्षीणानीति योज्यं न ह्येषां क्षयोऽस्तीति।
नि० २.२२, २३

**सिन्धुः**—या० सिन्धुः स्रवणात्।

**पृथिवी**—या० 'प्रथनात्'।

**योगी**—रक्षा की कामना करते हुए हमने 'नमस्' का कथन किया है, मरुत्वान् रुद्र हमारी पुकार को सुनें। हमारे उस कथन को मित्र 'वरुण' सिन्धु, पृथ्वी तथा द्युलोक प्रवर्धित करें। मरुतः—दृश्यतां षष्ठो मन्त्रः ॥११॥

मित्रः=सूर्यस्य परमात्मनश्च सर्वभूतहितकारिरूपम्; मनुष्यस्य विश्वबन्धुत्वभावना।

वरुणः=दृश्यतामथर्ववेदस्य वरुणसूक्तम्।

अदितिः=अदीनता, बन्धनहीनता।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


सिन्धुः=स्रवणशीलता, गतिशीलता, कर्मठता।
पृथिवी=विस्तारो विस्तरश्च।

द्यौः—ज्योतिर्मयता।

यो मनुष्यः परमात्मनियमानुसरणं करोति, मरुत्वान् परमात्मा तस्य हवं शृणोति। परमात्मभक्तेन स्वयमपि मरुत्वता (मरुतामिन्द्रियाणां स्वामिना) भवितव्यं तथा जीवने स्वलक्ष्यपूर्तये मरणोद्यतेन (मृङ् मरणे) भवितव्यम्। यदि जनः परमात्मकृपामिच्छति तेन षड्गुणा धारणीयाः—(१) विश्वबन्धुत्वभावना, (२) न्यायभावना (३) स्वतन्त्रता, स्ववशता, विषयादासता ('सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्'), (४) कर्मठता, (५) स्वसांसारिकवैभवस्य विस्तारः, आत्मनो विस्तरः, (६) ज्योतिर्मयता, बुद्धिप्रकर्षः, ज्ञानप्राप्तिः।

---

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

उपत्वाग्ने दिवे दिवे ... ।

# अग्निः

ऋग्वेदेऽग्निः प्रायः २०० सूक्तेषु स्तुतः, अनेकेषु चान्येषु सूक्तेष्वन्यैर्देवैः सह स्तुतः। ज्योतिर्मयोऽग्निर्मानवस्य दिव्यसंकल्पशक्तेर्विवेकशक्तेश्च प्रतीकरूपेण प्रतिभाति। श्री अरविन्दः कथयति—'Agni first, for without him the sacrificial flame cannot burn on the altar of the soul. That flame of Agni is the seven-tongued power of the Will, a Force of God instinct with knowledge. This conscious and forceful will is the immortal guest in our mortality, a pure priest and a divine worker, the mediator between earth and heaven. It carries what we offer to the higher powers and brings back in return their force and light and joy into our humanity:' (Hymns to the Mystic Fire, Introduction, page xxxi)'— 'अग्निः प्रथमः, यतस्तं विनाऽऽत्मनो वेद्यां यज्ञज्वाला ज्वलितुं न पारयति। अग्ने. सा ज्वाला संकल्पशक्तेः सप्तजिह्वा ज्वाला, या (संकल्पशक्तिः) ईश्वरस्य ज्ञानसमवेता शक्तिः। इयं चेतना तथा वीर्यमयी संकल्पशक्तिरस्मासु मर्त्येष्वमृतोऽतिथिः, एकः पवित्रः पुरोहितस्तथैका दिव्या कार्यकृत्, पृथिव्या द्युलोकस्य च मध्ये मध्यस्थः (सन्देशहरो दूतः)। इयमस्माभिरुच्चतरशक्तीरभिलक्ष्य यद्धविर्दीयते, तन्नयति, तथा च विनिमयरूपेण तासां शक्तीनां प्रकाशं प्रसन्नतां चास्माकं मानवजातौ समानयति (रहस्यमयाग्नि प्रति सूक्तानि, प्रस्तावना, पृष्ठम्—३१)।

इमानि कतिपयानि वेदेष्वग्नेर्विशेषणानि—पुरोहितः, ऋत्विक्, होता, रत्नधातमः, कविक्रतुः, सत्यः, चित्रश्रवस्तमः, 'ऋतस्य गोपा', दीदिविः 'स्वे दमे वर्धमानः', दूतः, विश्ववेदाः, विशपतिः, हव्यवाहः, पुरुप्रियः, घृतवाहनः, कविः, गृहपतिः, युवा, पृथुप्रगामा, सुषेवः, जरावोधः, घृतकेतुः, पुरुश्चन्द्रः, बृहद्भानुः, अङ्गिरस्तमः, मेधिरः, वृषभः, पुष्टिवर्धनः, जागृविः, प्रमतिः, देववीतमः, भारद्वाजीकः, अध्वरश्रीः, स्वाहुतः, उपर्बुधः, विभावसुः, प्रचेताः, जीरः, 'अमर्त्यो दूतः', महिव्रतः, प्रियमेधाः, रयिपाट्, तुविष्वणिः, द्विजन्मा, सुप्राव्यः, सद्योअर्थः, दमूनाः, 'गुहा चतन्', दुरोकशोचिः, 'मनोरपत्ये नियत्तो होता', चिकित्वान्, सत्यमन्मा, हितमित्रः, 'नृणां नृतमः', सहस्राक्षः, विचर्षणिः, शोचिष्केशः, वृषा, ज्योतीरथः, तमोहा, सुद्योत्मा, जीरदानवः, चन्द्ररथः, 'सहसः सूनुः', 'परमे व्योमनि जायमानः' 'ऊर्ध्वा शुचिषेशर्तं धियं दधानः', त्रिमूर्धा, सप्तरश्मिः, दीदयदितसर्वः, ब्रह्मा, ब्रह्मणस्पतिः, अदब्धव्रतप्रमतिः, वसिष्ठः, सहस्भरः, शुचिजिह्वः, सुवृक्तिः, 'एना सूक्तेन सुजातः,' वसुपतिः, वसुदावा, भारतः, कवितमः, वेधाः, 'मनुषः चेतयन्', जातवेदाः, पृथुबुध्नः, सभावान्, मन्द्रः, 'जनानाम् उपवक्ता', कविप्रशस्तः, अतिथिः, शोचिष्केशः, 'गुहा सन्', सुक्रतुः, जागृविः, सुदक्षः, वरेण्यः, सुविश्वस्तरम., तुविकूर्मा, रघुष्यद्, जेता, अपराजितः, देवव्यचस्तमः, जातवेदसः, 'मतिभिर्गविष्ठः', वृश्वक्षसः, हव्यवाहः, सनंजयः, पावकः, अमूरः, अदितिः, सुसंसन्मितः, 'घृतस्नो दूतः', 'ऊर्ध्वो नयतु', श्रेष्ठशोचिः, मिथियः, प्रशस्यः, सहस्रभृक्तः, स्वभिष्टिः, गातुवित्तमः, दैवोदासः, उपस्तुतः, 'रथना सहस्रपोषं', विहायाः, विप्रः, वरेण्यक्रतुः, भृगुवच्छुचिः, विश्वायुवेधाः, तिग्मजम्भः, मेधिष्ठः, समुद्रवासाः, विद्वान्, 'चित्रमिव प्रयोगः,' कृपनीळः, 'अदेः सूनुः', 'मनोयासां प्रार्पणः', मनुः, देवयुः, यज्ञकामः, दीर्घतन्तुः, सहस्तरीः, शतनीथः ऋभ्वा, 'मर्त्यासु विधु अमर्त्यः', दर्शतश्रीः, कण्वतमः, कण्वसखा, 'धीतिभिर्हितः', विश्वकृष्टिः, मनुहितः, बृहस्पतिः, 'गुहा हितः', गोपा, 'अमृतस्य राजिता','परमे व्योमनि जायमानः', 'मर्त्येषु अमृतं ज्योतिः', क्षत्रभृत्, सुमेधाः, मधुहस्तयः, असुरः, भूरिपाणिः, 'मतीनां कुवरः', जनयोपनः, 'ऋषीणां पुत्रः',—इत्यादीनि।



Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


अधोलिखितेषु मन्त्रेषु मन्त्रखण्डेषु चाग्नेर्गभीरज्ञानसमवेतसंकल्पशक्तिमत्स्वरूपं स्फुटीभवति—

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे ।
यशसं वीरवत्तमम्—ऋ० १.१.३

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा ।
हव्यवाड् जुह्वास्यः ऋ० १.१२.६

त्वमग्ने मनवे द्यामवाशयः पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तरः
ऋ० १.३१.४

यं त्वां देवासो मनवे दधुः—ऋ० १.३६.१०

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते
ऋ० १.३६.१७

अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव—
ऋ० १.९४.३

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥ ऋ० १.१८९.१

त्वादूतासो मनुवद् वदेम—ऋ० २.१०.६

वृषा यत्र वावृधे काव्येन—ऋ० ३.१.८

अग्ने सा सुमतिर्भूत्वस्मे—ऋ०३.१.२३

अबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम्—ऋ० ३.५.१

त्वामग्ने मनीषिणः.....इन्धते—ऋ० ३.१०.१

अग्निं नरो जनयता सुशेवम्—ऋ० ३.२९.५

चित्तिमचित्तिं चिनवद् वि विद्वान्—ऋ० ४.२.११

कदा भवन्ति सख्या गृहे ते—ऋ० ४.३.३

एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो
नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्यानि
अशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥
(निण्यानि=निगूढानि) ऋ० ४.३.१५

अग्निमंन्द्रो विदथेषु प्रचेताः—ऋ० ४.६.२

अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्य
अग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ऋ० ४.१२.३
(ब्राह्मणरूपेणाग्निः क्षत्रियवैश्ययोरुभयोः स्वामी)

कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः—ऋ० ५.१.८

अग्निं धीभिः सपर्यत—ऋ० ५.२३.१८

त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः
पिता माता सदमिन्मानुषाणाम्—ऋ० ६.१.५

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे—ऋ० ६.१५.८

अविद्वांसो विदुष्टुरं सपेम—ऋ० ६.१५.१२

रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे—ऋ० ६.१६.३

ऐतरेयब्राह्मणेऽधोलिखितयोरग्निमन्त्रयोर्महत्त्वं प्रतिपादितम्—

"प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरोनोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः—ऋ० ७.१.३

"इमो अग्ने वीततमानि हव्याऽजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ ।
प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु—ऋ० ७.१.१८"

कविः प्रचेताः—

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि
ऋ० ७.४.४

ईशे ह्यग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः
(ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां सर्वेषां रक्षकः) ऋ० ७.४.६

यदग्ने मर्त्यस्त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः ।
सहसः सूनवा हुत—ऋ० ८.१९.२५
(अग्नेः संपर्केण मर्त्योऽमर्त्यो भवति)

अग्निः...वेद मर्त्यानामपीच्यम्—ऋ०
(अपीच्यम्=गुह्यम्)

धीरो ह्यस्यधसद् विप्रो न जागृविः सदा ।
अग्ने दीदयसि द्यवि—ऋ० ८.४४.२९

त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन् त्सता ।
सखा सख्येन समिध्यसे—ऋ० ८.४३.१४

अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विपश्चितः ।
अश्वसद्याय हिन्विरे—ऋ० ८.४३.१९

अग्निं मन्द्रं...हृद्भिर्मन्द्रेभिरीमहे—ऋ० ८.४३.३१

कविर्विप्रेण वावृधे—ऋ० ८.४४.१२

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्
स्युष्टे सत्या इहाशिषः—ऋ० ८.४४.२३
(अग्निना सहैकाकारता)

आगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम्—
ऋ०—८.७४.४
(अग्निमानवः)

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिं-
मग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम्—ऋ० १०.७.३
(आपिः=बन्धुः)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि—ऋ० १०.४५.७
मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्—ऋ० १०.५१.४
अग्निरङ्ग विचेताः स प्रचेताः—ऋ० १०.७९.४
अग्ने कविः काव्येनासि विश्ववित्
—ऋ० १०.९१.३

मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनम्
अग्निं होतारं परिभूतमं मतिम्—ऋ० १०.९१.८
हृदा मतिं जनये चारुमग्नये—ऋ० १०.९१.१४
त्वद् विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद् वीरासो अभिमातिषाहः ।
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन् त्स्पृहयाय्याणि ॥
—ऋ० ६.७.३

(ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याणां सर्वेषां हितकरः)

इदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु—ऋ० ६.९.४
वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्—ऋ० ६.९.६
यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास
एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः—ऋ० ७.६.६
कविः काव्येन परि पाहि राजन्—ऋ० १०.८७.२१
त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः—ऋ० १.११०.१
अग्निर्वो दूतः प्रत्येतु विद्वान्—अथर्व ३.२.१
हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन्—ऋ० ३.२६.४
ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तोऽन्धं दुरितादरक्षन् ॥
ऋ० ४.४.१३

(पायवः=रक्षणानि)

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे
चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु
विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥
अथर्व० १९.४.२

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भगो यशः सह ओजो बलम्
—अथर्व० १९.३७.१
ब्रह्माग्निः संविदानः ऋ० १०.१६२.१
मय्यग्ने अग्निं गृह्णामि सहक्षत्रेण वर्चसा बलेन
अथर्व० ७.८२.१
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्रयच्छतु
अथर्व १९.६७.१
पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहम् अन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् । दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥
अथर्व० ४.१४.३ (अग्नेः संपर्केणोत्तरोत्तरोन्नतिः)

---

यास्कः कथयति तिस्र एव देवताः । पुनरसौ कथयति —स न मन्येतायमेवाग्निरित्यप्येते उत्तरे ज्योतिषी अग्नी उच्यते ।' (नि० ७.१६) । एवं यास्कमतेनाग्निरेवैको देवः । इन्द्रसूर्याविप्यग्नेरेव रूपान्तरौ । नि० ७.१८ इत्यत्र प्रसिद्धम् 'इन्द्रं मित्रं वरुणम्' इत्यादिमन्त्रम् (ऋ० १. १६४.४६) उद्धृत्य यास्कः कथयति 'इममेवाग्निं महान्तमेकमात्मानं बहुधा मेधाविनो वदन्ति । मैत्रा० सं० ४.७.८. इत्यत्र कथितम्—'अग्निर्हि भूयिष्ठमाग्नेयानां देवतानाम् । ब्राह्मणग्रन्थेष्वपि बहुत्रैष राद्धान्तः प्रतिपादितः—

'अग्निः सर्वा देवताः (ऐतरेय ब्रा० ६.३., शतपथ ब्रा० १.६.३.२०) । इदं वाक्यं मैत्रायणीसंहितायां (१.४.१३) तथा तैत्तिरीयसंहितायाम् (३.२.२) अपि प्राप्यते । बृहदारण्यकोपनिषदि कथितम्—'एतस्यैव सा विसृष्टिः । एष उ ह्येव सर्वे देवाः' (बृ. उ० १.४.६) ।

निरुक्तेऽग्निशब्दस्य निरुक्तयः— १. अग्रणीर्भवति, २. अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते, ३. अङ्गं नयति सन्नममानः, ४. अक्नोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीविः, ५. त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जायत इति शाकपूणिः—इताद् अक्ताद् दग्धाद् वा नीताद् ।

अग्निविषये दुर्गाचार्यः (नि० ७.१४)

कथयति—'तदेतद् भवति कोऽयमग्निरिति । आत्मेत्यात्मविदः । 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति (ऋ० १.१६४. ४७) इति मन्त्रदर्शनात् । अविवक्षितस्थानविशेषो विज्ञातैतदभिधानो देवताविशेषो लोकवेदप्रसिद्धः कर्मानुक्रमिति याज्ञिकाः । विवक्षितविशिष्टस्थानकर्मा मध्यमोत्तमाभ्यां ज्योतिर्भ्यामिन्द्रः पार्थिवोऽयमग्निरिति नैरुक्तसमयः ।'

यथेन्द्रः क्षत्रियदेव एवमग्निर्ब्राह्मणदेवः । आध्यात्मिकदृष्ट्या मनुष्यस्य सदसद्विवेकसमन्विता देदीप्यमाना संकल्पशक्तिरेवाग्निः प्रतीयते, यथा श्रीअरविन्देन सविस्तरं प्रतिपादितम् । समाजे (राष्ट्रे) ब्राह्मणा नेतारश्चाग्निपदभाजः ।

अग्निर्मनुष्यस्य तेजस्वितायाः प्रतीकरूपेणापि प्रतिभाति । पार्थिवोऽग्निर्द्युद्धेरन्तरिक्षाग्निः (इन्द्रः, विद्युत्) आत्मनस्तथा सूर्यः परमात्मनः प्रतिनिधिर्भवितुमर्हति ।

अस्य सूक्तस्य (ऋ० ५.८) ऋषिः 'इध आत्रेयः'

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


अस्ति । आत्रेयः=अत्रिपुत्रः ।

अत्रिविषये यास्कः—'अर्चिषि भृगुः संबभूव भृगुर्भृज्यमानो न देहेऽङ्गारेष्वङ्गिरा अङ्गारा अङ्कना अञ्चना अत्रैव तृतीयमृच्छतेत्यूष्वमुत्तस्मादत्रिर्न त्रय इति । विखननाद् वैखानसः ...' अस्य व्याख्यां कुर्वन् दुर्गः—'अत्रैव तृतीय एतस्मादनुव्याहाराद् 'अत्रि.' अभवत् । अथवैवमन्यथा स्यात् । अत्रिः । प्रतिषेधार्थोऽत्राकारः । कथम् । न त्रय एवात्र...।' व्याकरणदृष्ट्या 'अत्रिः'—शब्दः 'अद्' धातोर्निष्पन्नः । 'इषः' इति—शब्दस्यार्थाः — शक्तिशाली', 'रसमयः', 'उर्वरः' इत्यादयः । 'इष आत्रेयः' इत्यस्यार्थः स्यात्—यः सर्वमपि ज्ञानमात्मसात्कृत्य रसमय उर्वरश्चास्ति ।

इष आत्रेयः । अग्निः । जगती

सा०—त्वामग्न इति सप्तर्चमष्टमं सूक्तमात्रेयस्येषस्यार्षं जागतमाग्नेयम् । त्वामग्ने सप्त जागतमित्यनुक्रमणिका ॥ प्रातरनुवाक आग्नेये क्रतौ जागते छन्दस्याश्विनशस्त्रे चेदं सूक्तम् । तथा च सूत्रम् । जनस्य गोपास्त्वामग्न ऋतायवः ।। आ० ४.१३ । इति ॥

**त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे**
**प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत ।**
**पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं**
**दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥१॥**

सा०—हे सहस्कृत बलस्य कर्तरग्ने प्रत्नं पुरातनं त्वां प्रत्नासः पुरातना ऋतायवो यज्ञकामा ऋषय ऊतये स्वरक्षणाय समीधिरे । सम्यग्दीपितवन्तः । कीदृशं त्वाम् । पुरुश्चन्द्रं बहुधनमतिशयेनाह्लादकं वा यजतं यष्टव्यं विश्वधायसं बह्वन्नं दमूनसं दानमनसं गृहपतिं यजमानगृहस्य पालकं वरेण्यं वरणीयम् ॥

द०—अथाग्निशब्दार्थगृहाश्रमिविषयमाह ॥

पदार्थः— (त्वाम्) ( अग्ने ) कृतब्रह्मचर्य्यगृहाश्रमिन् (ऋतायवः) ऋतं सत्यमिच्छवः (सम्, ईधिरे) सम्यक् प्रदीपयेयुः (प्रत्नम्) प्राचीनम् (प्रत्नासः) प्राचीना विद्वांसः (ऊतये) रक्षणाद्याय (सहस्कृत) सहो बलं कृतं येन तत् सम्बुद्धौ (पुरुश्चन्द्रम्) बहुहिरण्यादियुक्तम् (यजतम्) पूजनीयम् (विश्वधायसम्) सर्वव्यवहारधनधर्त्तारम् (दमूनसम्) इन्द्रियान्तःकरणस्य दमकरम् (गृहपतिम्) गृहव्यवहारपालकम् (वरेण्यम्) अतिशयेन वर्त्तव्यम् ॥१॥

अन्वयः—हे सहस्कृताग्ने ! प्रत्नासः ऋतायव ऊतये यं प्रत्नं पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं वरेण्यं गृहपतिं त्वां समीधिरे स त्वमेतान् सत्कुरु ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्या ये युष्मान् विद्यादानादिभिर्वर्धयन्ति तान् यूयं सततं सत्कुरुत ॥१॥

Gr.—O Agni, urged to strength, the men of old who loved the law enkindled thee, the Ancient, for their aid,

Thee very bright, and holy, nourisher of all, most excellent, the Friend and Master of the home.

श्री अरविन्दः—O Fire, created by our force, the Ancient one, the ancient seekers of Truth, set blazing for their guard the master of sacrifice with his many delights who establishes all, Fire who dwells in the house, master of the house, the supremely desirable.

ऋतम्—या० प्रत्यृतं भवति ।

दमनः—या० दमूना दममना वा दानमना वा दान्तमना वापि वा दम इति गृहनाम तन्मनाः स्यान्मनो वा ।

योगी—हे शक्ति द्वारा उत्पन्न किए गए अग्नि, पुरातन, अनेक आनन्दों से युक्त, यज्ञ के स्वामी, सबको धारण करने वाले, गृह में रहने वाले, गृह के स्वामी तथा वरने योग्य तुझ को पुरातन, ऋतु के गवेषक जन [अपनी] रक्षा के लिए भली भांति प्रदीप्त करते हैं ॥१॥

समीधिरे—इन्धी दीप्तौ । चन्द्रः—चदि आह्लादे । अर० सत्यम्, सा० यज्ञः । ऋतशब्दस्य सामान्योऽर्थः सर्वविधनियमः Moral, physical and cosmic order नैतिकभौतिकविश्वीयनियमः ।

यजतम्—यज् देवपूजासंगतिकरणदानेषु ।

राष्ट्रस्य नेता महाशक्तिशाली भवतु, गुणैर्वरेण्यः राष्ट्रस्वामित्वशक्तिसंपन्नः, प्रजारञ्जकः ('राजा प्रकृतिरञ्जनात्' कालिदासः) च भवतु ।

मानवस्य संकल्पशक्तिरेतादृशी भवतु यत्स स्वगृहस्य (स्वशरीरमानसादीनाम्) अधिपतिः स्यात्, तदा मानवः सर्वविधान् आनन्दान् प्राप्नोति ॥१॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



त्वग्मग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः
शोचिष्केशं गृहपतिं निषेदिरे ।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं
सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम् ॥२॥

सा०—हे अग्ने त्वां विशो यजमाना गृहपतिं गृहस्वामिनं निषेदिरे । गार्हपत्यरूपेण स्थापितवन्त इत्यर्थः । कीदृशं त्वाम् । अतिथिमतिथिवत्पूज्यं पूर्व्यं पुरातनं शोचिष्केशं दीप्तज्वालं बृहत्केतुं प्रभूतप्रज्ञानं पुरुरूपमाहवनीयादिरूपेण बहुरूपं धनस्पृतं धनानां स्पर्तारं सुशर्माणं शोभनसुखं स्ववसं सुरक्षणं जरद्विषं जरतां वृक्षाणां व्यापकं जीर्णोदकं वा ॥

द०—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पदार्थः—(त्वाम्) (अग्ने) गृहस्थ (अतिथिम्) सर्वदोपदेशाय भ्रमन्तम् (पूर्व्यम्) पूर्वैः कृतं विद्वांसम् (विशः) प्रजाः ( शोचिष्केशम् ) शोचींषि न्यायव्यवहारप्रकाशाः केशा इव यस्य तम् (गृहपतिम्) गृहव्यवहारपालकम् (नि, षेदिरे) निषीदन्ति (बृहत्केतुम्) महाप्रज्ञम् (पुरुरूपम्) बहुरूपयुक्तं सुन्दराकृतिम् ( धनस्पृतम् ) धनस्पृहायुक्तम् (सुशर्म्माणम्) प्रशंसितगृहम् (स्ववसम्) शोभनमवो रक्षणादिकं यस्य तम् (जरद्विषम्) जरद् विनष्टं शत्रुरूपं विषं यस्य तम् ॥२॥

अन्वयः—हे अग्ने ! या विशोऽतिथिमिव वर्त्तमानं पूर्व्यं शोचिष्केशं बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषं गृहपतिं त्वा नि षेदिरे तास्त्वं सततं सत्कुर्याः ॥२॥

भावार्थः—गृहस्थाः सदैव प्रजापालनमतिथिसेवामुत्तमगृहाणि विद्याप्रचारं प्रज्ञावर्द्धनं सर्वतोरक्षणं रागद्वेषराहित्यं च सततं कुर्युः ॥

Gr.—Thee, Agni, men have stabilised as their guest of old, as Master of the household, thee, with hair of flame;

High-bannered, multiform, distributer of wealth, kind helper, good protector, drier of the floods.

श्रीअरविन्दः—Thee, O Fire, men seated within as the ancient guest, the master of the house with his tresses of light,—vast is his intuition, many are his forms, he brings out the riches, he is a giver of perfect peace and protection and a destroyer of the foe.

अतिथिः—या० अभ्यतितो गृहान् भवति, अभ्येति तिथिषु परगृहानिति वा ।

केतुः—या०—कर्म प्रज्ञा वा ।

योगी—हे अग्नि, गृह के स्वामी पुरातन अतिथि, प्रकाश से निर्मित केशों वाले, महान् अन्तर्ज्ञान वाले, अनेक रूपों वाले, धन का आदान करने वाले, पूर्ण शान्ति प्रदान करने वाले, पूर्ण सुरक्षा देने वाले, शत्रुओं को नष्ट करने वाले तुझे (तेरे समीप) संसार के जन बैठते हैं ॥२॥

अतिथिः—अत् सातत्यगमने बृहत्केतुम्—बृहत्केतुर्यस्य तम् । केतुः—चायृ पूजानिशामनयोः । धनस्पृतम्—स्पृ प्रीतिपालनयोः ।

राष्ट्रनेता सततगमनशीलः स्यात् । ब्राह्मणानामिदं कर्तव्यं यत्ते सततं सञ्चरन्तः सदाचारप्रचारं विधायु, ते अन्तर्ज्ञानयुक्ता भवेयुः ते विविधज्ञानभृत अतएव पुरुरूपाः; ते राष्ट्रे समृद्धिविकासस्य योजनाः कुर्वन्तु सुरक्षाशालिनः स्युः, तथा सदाचारप्रचारेण राष्ट्राय विषभूतानां धनानां दूरीकर्तारः स्युः । (अद्यत्वेऽपि ब्राह्मणाः 'शर्माणं' इति कथ्यन्ते ।

मानवस्य संकल्पशक्तिरेव सुरक्षाविधायिनी ॥२॥

सा०—अग्नीनां परस्परं संसर्गे विविधवेशरूपे कविदिष्टिः । तत्र त्वामग्ने मानुषीरिति पञ्चर्चः । सूक्तिं च । त्वामग्ने मानुषीरीळते विशोऽग्न आ याहि वीतये । सा० वे. १२।१।।

त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो
होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम् ।
गुहा सन्तं सुभगं विश्वदर्शतं
तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ॥३॥

सा०—हे अग्ने सुभग शोभनधन त्वां मानुषीर्विशो मानुषमन्वन्त्यः सर्वाः प्रजा ईळते स्तुवन्ति । कीदृशं त्वाम् । होत्राविदं होमानां सप्तहोत्रकाणां वा वेत्तारं विविचिं विवेचकं सदसतोः रत्नधातमं रमणीयानां धनानां दातृतमं गुहा गुहायामरण्यां हृदयेषु वा सन्तं सर्वदा वर्तमानं विश्वदर्शतं सर्वैर्द्रष्टव्यं तुविष्वणसं प्रभूतध्वनिं सुयजं सुष्ठु यष्टारं घृतश्रियं घृतं श्रयन्तम् ॥

द०—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पदार्थः—(त्वाम्) (अग्ने) अग्निरिव वर्त्तमान

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


(मानुषीः) मनुष्यसम्बन्धिन्यः (ईळते) स्तुवन्ति गुणैः प्रकाशितं कुर्वान्ति (विशः) प्रजाः (होत्राविदम्) होत्राणि हवनानि वेत्ति तम् (विविचिम्) विवेचकं विभागकर्त्तारम् (रत्नधातमम्) रत्नानामतिशयेन धर्त्तारम् (गुहा) गुहायामन्तःकरणे (सन्तम्) अभिव्याप्य स्थितम् (सुभग) शोभनैश्वर्य (विश्वदर्शतम्) विश्वस्य प्रकाशकम् (तुविष्वणसम्) बहूनां सेवकम् (सुयजम्) सुष्ठु यजन्ति यस्मात्तम् (घृतश्रियम्) यो घृतं श्रयति घृतेन शुम्भमानस्तम् ॥३॥

अन्वयः—हे सुभगाग्ने ! मानुषीविशो यं होत्राविदं विविचिं रत्नधातमं विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियं गुहा सन्तं त्वामीळते ता वयमपि विजानीयाम ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्या भवन्तो येन विद्युद्रूपेणाग्निना जीवनं चेतनता च जायते तद्वद्राजानं विज्ञाय सुखं वर्धयन्तु ॥

The tribes of men praise thee, Agni, who knowest well burnt offerings, the Discerner lavishest of wealth,

Dwelling in Secret, Blest One ! Visible to all, loud-roaring, skilled in worship, glorified with oil.

श्रीअरविन्दः—The human people pray, O Fire, who knowest the word of invocation, who has the just discernment, who art strongest to found ecstasy,—who dwellest in the secret cave, O happy Flame, and hast the vision of all the things, the perfect sacrificer with the multitude of thy voices and the glory and beauty of thy light.

रत्नधातमम्—यास्कः—रमणीयानां धनानां दातृतमम् ।

योगी—हे शोभन ऐश्वर्य वाले अग्नि, होत्रों को जानने वाले सत् और असत् के विवेचक सर्वाधिक रत्नों को धारण करने वाले, गुहा में विद्यमान, सबको देखने वाले (सा० सबमें द्रष्टव्य), पूर्णता से यज्ञ करने वाले, प्रकाश की शोभा तथा सुन्दरता से युक्त तुझको मानव जाति के जन अध्येषणा का विषय बनाते हैं ॥३॥

विविचिम्—विचिर् पृथग्भावे रत्नम्=या० तथा सा०—रमणीयधनम् अर०—भावातिरेकः (ecstasy) सुभग—भगः=सर्वविधैश्वर्यम्

'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणाः ॥'

तुविष्वणसम् तुवि+स्वनसम्—स्वन् शब्दे । घृतम्=घृ क्षरणदीप्त्योः ।

विभिन्नानां राष्ट्रनेतॄणां ब्राह्मणानां चेमे गुणाः—सदसद्विवेचकाः, परोपकारयज्ञपरायणाः । यज्ञः=परोपकारः— (यज् देवपूजासंगतिकरणदानेषु) — गीता— 'यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः । भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥'

मानवे स्थितः अग्निः=सदसद्विवेचिका संकल्पात्मिका मतिः । अग्निरेव स्वर्णस्य शुद्धचशुद्धिविवेचकः, यथाह कविकुलगुरुः—'तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः । हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा । यः परीक्ष्यान्यतरद् भजते स विवेचक एव सन्निति नाम्ना कीर्त्यते, यथाह कविकुलगुरुः—'सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ।' मानवस्य संकल्पशक्तिरेव तं शोभितं (घृतश्रीकम्) विदधाति ॥३॥

**त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं**
**गीभिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम ।**
**स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो**
**देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः ॥४॥**

सा०—हे अग्ने धर्णसिं सर्वस्य धारकं त्वां वयमात्रेया वा विश्वधा बहुप्रकारेण गीभिर्गृणन्तः स्तुवन्तो नमसा नमस्कारेणोप सेदिम । उपसन्ना भवेम । स त्वं नोऽस्मान् जुषस्व । सेवस्व धनादिभिः । समिधानः सम्यग्दीप्तो दीप्यमानोऽस्माभिर्हे अङ्गिरः सर्वत्र गन्तरङ्गिरसः पुत्र वा देवो दीप्यमानस्त्वं मर्तस्य यजमानस्य यशसा सुदीतिभिर्ज्वालाभिः सह जुषस्व ।

द०—अथाग्निशब्दार्थविद्वद्विषयमाह ॥

पदार्थः—(त्वाम्) विद्वन् (धर्णसिम्) अन्यद्धारकम् (विश्वधा) विश्वस्य धर्त्तारम् (वयम्) (गीभिः) वाग्भिः (गृणन्तः) स्तुवन्तः (नमसा) सत्कारेण (उप) (सेदिम) उपसीदेम (सः) (नः) अस्मान् (जुषस्व) सेवस्व (समिधानः) देदीप्यमानः (अङ्गिरः) अङ्गेषु रसयितः (देव) दाता (मर्त्तस्य) मनुष्यस्य (यशसा)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



उदकेनान्नेन धनेन वा। यश इति उदकनाम निघ० १। १२। अन्ननाम निघ० २.७। धननाम निघं० २।१०। (सुदीतिभिः) सुष्ठुदानैः ॥४॥

**अन्वयः**—हे अग्ने ! विद्वँस्त्वं यथा वयं गीर्भिर्गृणन्तो विश्वधा धर्णसिं त्वां नमसोप सेदिम। हे अङ्गिरः स देवः समिधानस्त्वं मर्त्तस्य सुदीतिभिर्यशसा नोऽस्मान् जुषस्व तथा वयं त्वामुपतिष्ठेम ॥४॥

**भावार्थः**—अत्र वाचकलु०—सर्वथायं सर्वेषां स्वभावोऽस्ति यो यादृशेन भावेन यं प्राप्नुयात्सेवेत तादृश एव भावः सेवनं च तस्योपजायते ॥४॥

Gr.—Ever to thee, O Agni, as exceeding Strong have we drawn nigh with Songs and reverence singing hymns.

So be thou pleased with us, Angiras as a God kindled by the noble with man's goodly light.

**श्रीअरविन्दः**—Thee, O Fire, who upholdest all things in every way we voicing thee with our words have approached with obeisance; so do thou accept us, O Angiras, a godhead kindled by the glory of a mortal and by his high illuminings.

**योगी**—हे अग्नि, सबको धारण करने वाले तुझे सब प्रकार से वाणियों से स्तुत करते हुए हम नमस् के द्वारा समीप बैठते हैं। हे अङ्गिरः, सम्यक् दीप्यमान वह तू देव मर्त्य के उपयोगी वैभव तथा उत्तम आलोक के साथ हमें प्रीतिपूर्वक प्राप्त हो ॥४॥

**अङ्गिरः**—दृश्यतां पुरस्तात्।

**जुषस्व**—जुष् (जुषी) प्रीतिसेवनयोः। 'मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः'—तुलना—रुद्रसूक्तम् (ऋ० १.११४.६) 'मर्तभोजनम्'।

राष्ट्रनेता सर्वधारणसमर्थः स्यात्, सर्वे च विनयपूर्वकं तमनुसरन्तु। तस्येदं परमं कर्तव्यं यद् राष्ट्रेऽन्नादीनां व्यवस्थां करोतु, सर्वत्र च ज्ञानप्रसारं करोतु।

मनुष्यस्य संकल्पशक्तिरेव तं धारयति—मनुष्यो यथा चिन्तयति तथैव स भवति। मानवजीवनस्य विकासस्य सुखस्य चेदं मूलं यदसौ भौतिकोन्नतिं ज्ञानप्राप्तिं चोभयमपि सम्पादयतु। (सुदीतिः=शोभनज्वाला, सुप्रकाशः, ज्ञानम्, तेजस्विता) ॥४॥

त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे
वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत।
पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि
त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ॥५॥

**सा०**—हे अग्ने त्वं पुरुरूपः सन् विशे विशे सर्वस्मै यजमानाय प्रत्नथा पुराण इव वयोऽन्नं दधासि। धारयसि। हे पुरुष्टुत बहुभिः स्तुत्य पुरूणि बहून्यन्नान्नानि चरुपुरोडाशादीनि सहसा बलेन वि राजसि। ईश्वरो भवसि स्वीकर्तुम्। तित्विषाणस्य दीप्तस्य ते तव सा प्रसिद्धा त्विषिर्दीप्तिर्नाधृषे। अन्यैरधृष्या भवति।

**द०**—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

**पदार्थः**—(त्वम्) अग्ने) राजन् (पुरुरूपः) बहुरूपः (विशेविशे) प्रजायै (वयः) जीवनम् (दधासि) (प्रत्नथा) प्राचीनेनेव (पुरुष्टुत) बहुभिः प्रशंसित (पुरूणि) बहूनि (अन्ना) अन्नानि (सहसा) बलेन (वि) (राजसि) (त्विषिः) दीप्तिः (सा) (ते) (तित्विषाणस्य) अग्निज्वालयेव विद्यया प्रकाशमानस्य (न) इव (आधृषे) समन्ताद्धृषाय ॥५॥

**अन्वयः**—हे पुरुष्टुताग्ने ! यया त्वं वि राजसि सा तित्विषाणस्य ते त्विषिरस्ति। साऽऽधृषे न विशेविशे पुरुण्यन्ना दधाति यया त्वं विशेविशे पुरुरूपस्त्वं प्रत्नथा सहसा वयो दधासि तां विजानीहि ॥५॥

**भावार्थः**—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या भवन्तो यथाऽग्निः सर्वं जगद्दधाति तथा सर्वान् मनुष्यान्विद्याप्रकाशे धरन्तु ॥५॥

Gr.—Thou, Agni ! multiform, God who art lauded much ! givest in every house subsistence as of old.

Thou rulest by thy might o'er food of many a sort ; that light of thine when blazing may not be opposed.

**श्रीअरविन्दः**—O Fire, thou takest many forms for man and man and thou foundest for him his growth as of old, O thou lauded by many voices; many are the things on which thou feedest and thou illnminest them all with thy force, and none can do violence to the fury of thy blaze when thou blazest up in thy might.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


योगी—हे अग्नि तू अनेक रूपों को धारण करके प्रत्येक मनुष्य में प्राचीन (पुराण, पुरातन) की भांति जीवन का आधान करता है। हे अनेक जनों के द्वारा स्तुत अग्नि, तू अपनी अपनी शक्ति से अनेक अथवा बहुविध भोगों का एकमात्र स्वामी है; अत्यन्त देदीप्यमान तेरी दीप्ति किसी के द्वारा भी धर्षणीय नहीं है ॥५॥

त्विषिः—दृश्यतां रुद्रसूक्तम् (ऋ० १.११४.४)।

राष्ट्रस्य तेजस्वी नेता स एव यः प्रजानां कल्याणाय बहुविधा व्यवस्थाः करोतु। ता व्यवस्थास्ताहृश्यः स्युर्याहृश्यस्तेजःशालिभिः प्राचीनैर्नेतृभिर्ब्राह्मणैर्वा कृताः। राष्ट्रनेतृणां समक्षं विद्यावतां तेजस्विनां पूर्वजानामादर्शः सदा तिष्ठेत्। सर्वेषां मनुष्याणां कल्याणायाग्निस्वरूपा राष्ट्रनेतारो भवन्ति। त एव ब्राह्मणगुणयुक्ता नरा नेतारो भवितुमर्हन्ति, ये महातेजस्विनो निर्भयाश्च भवन्तु, येषां दीप्तिरनाधृष्या स्यात्, ये सत्यसंस्थापनाय सततोद्योगाः स्युः।

प्रत्येकमनुष्येऽजाधृष्या संकल्पशक्तिर्भवेत्। प्रत्येकं मनुष्यो महातेजस्वी भवेत्। तेजस्वी दृढ़संकल्पशक्तिसंपन्नो मनुष्य एव सुखमयजीवनं प्राप्नोति, सर्वांश्च भौतिकाध्यात्मिकभोगान् प्राप्नोति (अन्नम् — अद्—भक्षणे) ॥५॥

**त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ्य**
**देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम्।**
**उरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं**
**त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ॥६॥**

सा०—हे यविष्ठ्य युवतमाग्ने समिधानं सम्यगिध्यमानं त्वां हव्यवाहनं हविषां वोढारम् दूतं चक्रिरे। कृतवन्तो देवाः। त्रयाणामग्नीनां मध्ये हव्यवाहनः खलु पूर्वं देवैर्हविर्वहनाय दूतः कृतः। हव्यवाहनो देवानाम्। तै० सं० २.५.८.६। इति हि श्रुतिः। किञ्च उरुज्रयसं प्रभूतवेगं घृतयोनिम्। घृतं योनिः कारणं यस्य तम्। आहुतं त्वां चोदयन्मति। चोदयन्ती मतिर्यस्य तच्चोदयन्मति। त्वेषं दीप्तं चक्षुरुक्तलक्षणं सर्वप्रकाशकं चक्षुःस्थानीयं कृत्वा दधिरे देवा मनुष्याश्च। मत्या हि चक्षुश्चोद्यते।

द०—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पदार्थः—(त्वाम्) (अग्ने) विद्वन् (समिधानम्) देदीप्यमानम् (यविष्ठ्य) अतिशयेन युवसु साधो (देवाः) विद्वांसः (दूतम्) सर्वतो व्यवहारसाधकम् (चक्रिरे) कुर्वन्ति (हव्यवाहनम्) यो हव्यान्यादातुमर्हाणि यानानि सद्यो वहति तम् (उरुज्रयसम्) बहुवेगवन्तम् (घृतयोनिम्) घृतमुदकं प्रदीप्तं कारणं वा योनिर्गृहं यस्य तम् (आहुतम्) स्पर्द्धितं समन्ताच्छ्रिदितम् (त्वेषम्) प्रदीप्तं (चक्षुः) दर्शकम्(दधिरे) (चोदयन्मति) प्रज्ञाप्रेरकम् ॥६॥

अन्वयः—हे यविष्ठ्याग्ने ! यथा देवा हव्यवाहनमुरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चोदयन्मति चक्षुस्समिधानमग्निं दूतं चक्रिरे तथा त्वां दध्याम ॥

भावार्थः—अत्र वाचचलु०—न हि मनुष्या विद्वत्सङ्गेन विनाऽग्निगुणानन्यादिसंयोगगुणांश्च ज्ञातुमर्हन्ति ॥

Gr.—The God, Most youthful Agni, have made thee, inflamed, the bearer of oblations and the messenger.

Thee widely-reaching, homed in sacred oil invoked, effulgent, have they made the Eye that Stirs the thought.

श्रीअरविन्दः—Thee, O youthful Fire, in thy light kindling the gods have made a messenger and a carrier of the offerings; thee of whom light is the native seat and wide are the spaces through which thou movest, they have set when thou hast received the offering as a keen burning eye that urges the thought.

उरुज्रयसम्—या० पृथुज्रयाः पृथुजवः। (ज्रयस्=जवः, वेगः)।

योगी—हे युवतम (सर्वाधिक युवक) अग्नि, अत्यन्त देदीप्यमान हव्यों का वहन करने वाले तुझे देवों ने दूत बनाया तथा महान् वेग वाले, घृतरूप कारण वाले अत्यंत आह्वान किए गए (अथवा जिसे हवि दी गई है ऐसे) तुझको दीप्तियुक्त प्रज्ञा के प्रेरक चक्षु के रूप में [देवों और मनुष्यों ने] धारण किया ॥६॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



घृतम्—घृ क्षरणदीप्त्योः । अर० प्रकाशः (light); घृतयोनिम्=अर०—यस्य मूलस्थानं प्रकाशस्तम् (of whom the light is native seat(त्वेषम्—दृश्यतां रुद्र-सूक्तम्—(ऋ० १.११४.४) ।

राष्ट्रस्य नेतृषु ब्राह्मणेषु सर्वदा नवयौवनसुलभ उत्साह इष्यते । भगवतो दिव्यशक्तयस्तेषां माध्यमेन कार्याणि विदधति । इमे नेतारः सद्विचाररूपाणि पवित्राणि हव्यानि सर्वत्र वहन्ति । ते नेतारो घृतयोनयो(प्रकाशमयाः)भवन्ति । यदा ते सद्विचारप्रचाराय विश्वे परिभ्रमन्ति, सर्वत्र सर्वेषां मार्गदर्शनं कुर्वन्ति (चक्षुःकार्यं कुर्वन्ति); सर्वेषां च मतीः प्रेरयन्ति—(अग्निः=अग्रणीः—या०)—

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ (मनु०)

मनुष्यस्य संकल्पशक्तिर्महनीया । यस्य समीपे तिष्ठतीयं स सदैव युवतमः । इयं मनुष्यं दिव्यविचारयुक्तं वेगवन्तं तेजस्विनं सदसद्विवेकयुक्तं विदधाति ॥६॥

त्वामग्ने प्रदिवे आहुतं घृतैः
सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे ।
स वावृधान ओषधीभिरुक्षितोऽ-
भि ऋयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ॥७॥

सा०—हे अग्ने घृतैराहुतं त्वां प्रदिवः पुरातनाः सुम्नायवः सुखमिच्छन्तो यजमानाः सुषमिधा शोभनेनेध्मेन समीधिरे । सम्यक् दीपितवन्तः । स त्वं वावृधानो वर्धमान ओषधीभिरुक्षितः सिक्तो ऋयांस्यन्नानि पार्थिवा पार्थिवान्वृक्षान् । यद्वा । पार्थिवेति ऋयोविशेषणम् । पार्थिवानि चरुपुरोडाशादिकान्यभि वि तिष्ठसे । अभिव्याप्य वर्तसे ॥

द०—पुनर्विद्वद्विषयमाह ॥

पदार्थः—(त्वाम्) शिल्पविद्योपदेशकम् (अग्ने) विद्वन् (प्रदिवः) प्रकृष्टात् प्रकाशात् (आहुतम्) गृहीतम् (घृतैः) प्रदीपकैः साधनैः (सुम्नायवः) य आत्मनः सुम्नमिच्छवः (सुषमिधा) सम्यक्प्रदीपकेनेन्धनेन (सम्) (ईधिरे) सम्यक् प्रदीपयन्ति (सः) (वावृधानः) भृशं वर्धनः (ओषधीभिः) सोमयवादिभिः (उक्षितः) संसिक्तः (अभि) (ऋयांसि) वेगयुक्तानि कर्माणि (पार्थिवा) पृथिव्यां विदितानि (वि) (तिष्ठसे) ॥७॥

अन्वयः—हे अग्ने ! यथा सुम्नायवो घृतैः सुषमिधा प्रदिव आहुतं यं समीधिरे स वावृधान ओषधीभिरुक्षितः पार्थिवा अभि ऋयांसि वि तिष्ठसे तथा त्वां सततं वयं सुखयेम ॥७॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—हे मनुष्या यथा विद्वांसः सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यो विद्युद्विद्यामुत्पादयन्ति तथा विद्वांसः सर्वतो गुणान् गृह्णन्तीति ॥७॥

Gr.—Men Seeking joy have lit thee worshipped from of old, O Agni, with good fuel and with sacred oil.

So thou, bedewed and waxing mighty by plants spreadest thyself abroad even the realms of earth.

श्रीअरविन्दः—The, O Fire, fed with offerings of light from the higher heaven the seekers of bliss (or, from old; or, the ancient seekers of bliss) kindled with an entire kindling, so now growing on the herbs to thy full might thou spreadest over wide earth-spaces.

ओषधीभिः—या० ओषधय ओषद्यवन्तीति वा । ओषत्येनाधयन्तीति वा । दोष धवन्तीति वा ।

योगी—हे अग्नि, घृतों द्वारा आहुत तुझको पुरातन सुख चाहने वाले जनों ने शोभन इध्म (ईंधन) से सम्यक् प्रकार से प्रदीप्त किया । वह तू अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होता हुआ, ओषधियों के द्वारा सिक्त (अच्छा बढ़ा हुआ) पृथ्वी पर होने वाले वेगयुक्त कर्मों के अधिष्ठातृरूप में स्थित है ॥७॥

प्रदिवः—सा० पुरातनाः, द० प्रकृष्टात् प्रकाशात् ।

घृतैः—दृश्यतां षष्ठो मन्त्रः ।

ऋयः—दृश्यतां षष्ठो मन्त्रः ।

उक्षितः—दृश्यतां रुद्रसूक्तम् (ऋ० १.११४.७) ।

राष्ट्रनेतारस्तेजस्विनो ब्राह्मणगुणयुक्ता जनाः सदैव पूजनीयाः । तेषां रक्षणे प्रजानां महाग्रहो भवतु यतस्त एव सुखमूलानि । इमे जनाः सर्वसंतापहारकाः (दृश्यतां यास्ककृतमोषधिशब्दनिर्वचनम्) भवन्ति तथा च पृथिव्यां योन्नतिर्भवति, एषामेव महापुरुषाणां साहाय्येन भवति ।

यो मनुष्यः सुखमिच्छति स स्वात्मनि संकल्पशक्तिं प्रदीप्तां करोतु । इयं संकल्पशक्तिः संतापहारकज्ञानौषध्या वर्धते । मनुष्यस्य पृथिव्योन्नतिरप्यनयैव भवति ॥७॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

देव सवितः प्रसुव यज्ञं . .

# सविता

ऋग्वेद एकादशसूक्तानि सवितृदेवताकानि। अनेकसूक्तेष्वंशतः सविता स्तुतः। सवितृनाम प्रायः १७० वारान् प्राप्यते। चतुर्षु वेदेषु प्रायः १२६ मन्त्राः सवितृदेवताकाः। सविता स्वर्गमयो देवः। तस्य मुख्यं कार्यं प्रेरणाप्रदानम् (सुवति—पू=सू प्रेरणे)। वेदेषु सवित्रा सह 'सू' धातोर्बहुप्रयोगः—

प्रासावीद् देवः सविता—ऋ० १.१५७.१

ईशिषे प्रसवस्य त्वमेक इत्—ऋ० ५.८१.५

तत्सविता वोऽमृतत्वमा सुवत्—ऋ० १.११०.३

देवः सविता सवाय—ऋ० २.३८.१

त्रिरा दिवः सविता सोषवीति—ऋ० ३.५६.७

सविता...अत्र सुवतात्—ऋ० ४.५४.३

देवस्य सवितुः सवे—ऋ० ५.८२.६

सविता...वाममस्मभ्यं सावीः—ऋ० ६.७१.६

अपामीवां सविता साविषन्यक्—ऋ० १०.१००.८

उद्वेति प्रसवीता जनानां महान्—ऋ० ७.६२.२

सुवाति सविता—ऋ० ७.६६.४

बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनः—ऋ० ४.५३.६

उदुष्य देवः सविता सवाय—ऋ० २.३८.१

निम्नमन्त्रे सूधातोर्द्वौ वारौ प्रयोगः—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।

यद् भद्रं तन्न आ सुव—ऋ० ५.८२.५

प्रसिद्धगायत्री (सावित्री) मन्त्रे सविता स्पष्टमेव प्रेरणाया देवता—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात्—ऋ० ३.६२.१०

सवित्रा सह बहून् वारान् देवशब्दस्य प्रयोगः। देवो दानाद्वा...(यास्कः) संसारे सर्वाधिकमहत्त्वपूर्णदानं प्रेरणादानम्।

अथः सवितृस्वरूपप्रतिपादकानि वेदेषु कतिपयविशेषणानि प्रस्तूयन्ते—

हिरण्यपाणिः, चेत्ता, विभक्ता, नृचक्षाः, सदावा, चित्रभानुः, सुपर्णः, गभीरवेपाः, असुरः, सुनीथः, हिरण्यक्षः, विचर्षणिः, सुमृळीकः, पृथुपाणिः, धीरः, अमतिः, प्रचेताः, धृतव्रतः, विप्रः, कविः, एतशः, दमूनाः, मन्द्रजिह्वः, पूर्णगभस्तिः, सूर्यरश्मिः, हरिकेशः, विश्ववारः, हिरण्यस्तूपः, सत्यप्रसवः, स्वङ्गुरिः, रातिः, सत्पतिः, सुशेवः, शचीपतिः, —इत्यादीनि।

सवितृशब्दस्य यास्ककृतं निर्वचनम्—

'सविता सर्वस्य प्रसविता'।

अन्धकारमध्यादागच्छन् प्रकाशः सवितेति कथ्यते—

'सविता व्याख्यातः। तस्य कालो यदा द्यौरपहततमस्काकीर्णरश्मिर्भवति—नि० १२.१२।

अत्र दुर्गः—'यदा यस्मिन् काले द्यौरेवापहततमस्का भवति न पृथिवी। पृथिव्यां तमो भवति। दिव्यपहते तमसि विक्षिप्ता अस्यां रश्मयो भवन्ति। स सावित्रः कालः। तस्मिन् काल आदित्यः सवितोच्यते।'

एतदतिरिक्तं तारकाणां प्रकाशोऽपि सवितेत्युच्यते, यतः सोऽप्यन्धकारमध्यात्समायाति। —ऋ० १.३५.४।

सवितू रथे कीलकानि (शम्याः) इति कथितानि। सायमपि संध्याकालानन्तरं सवितुः कालः—

उत रात्रीमुभयतः परीयसे—ऋ० ५.८१.४

सायणः—'उदयात् पूर्वभावी सविता, उदयास्तमयवर्ती सूर्य इति—ऋ० ५.८१.४

आध्यात्मिकजगति मनुष्यजीवनस्य समस्या एवान्धकारः। तासां समस्यानां समाधानकारिकाः प्रेरणा एव प्रकाशः।

आधिदैविकजगति सूर्यस्य प्रकाश एव कालभेदेन रूपभेदेन च विभिन्नानि नामानि धारयति—

सविता—अन्धकारमध्यादागच्छन् प्रकाशः, day-break, पौ फटना।

तथा च सायं संध्योत्तरप्रकाशः।



Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



अश्विनौ—प्रभातसायंसंध्याकालौ ।

उषा—प्रभातसंध्योत्तरप्रकाशः ।

सूर्यः—सूर्यबिम्बम् ।

विष्णुः—अग्रे गच्छन् सूर्यः ।

मनुष्यजीवनेऽपि प्रथमं दिव्यप्रेरणा, ततः शनैः शनैर्दिव्यप्रकाशवृद्धिस्तमोनिवृत्तिश्च, ततो शुभ्रारुणज्ञानविवेकप्रकाशोद्भवः, ततः ज्ञानसूर्योदयः, ततोऽप्रतिहता जीवनोन्नतिः ।

यजुर्वेदस्य ३९.६ मन्त्रे मानवजीवनस्य क्रमशो द्वादश प्रगतिसोपानानि वर्णितानि—सविता, अग्निः, वायुः, आदित्यः, चन्द्रमाः, ऋतुः, मरुतः, बृहस्पतिः, मित्रः, वरुणः, इन्द्रः, विश्वेदेवाः ।

आध्यात्मिकदृष्ट्यैषां सोपानानामियं व्याख्या संभाव्यते—दिव्यप्रेरणा, संकल्पशक्तिविकासः, पवित्रता, बन्धनरहितता, शान्तिः (सौम्यता), जीवने पुष्पितवसन्तागमः, प्रबलेन्द्रियशक्तिः, ज्ञानाधिपतित्वम्, ऐकात्म्यदर्शनम्, न्यायप्रेमपूर्णताप्राप्तिः, महाशक्तिशालित्वम्, सर्वदिव्यगुणयुक्तता ।

मानवः सदैव किं कर्त्तव्यविमूढस्तिष्ठति—

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः—गीता

गहना कर्मणो गतिः—गीता

एतद् यो वेद निहितं गुहायाम्—मु० उप० १.१०

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया

दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति—क० उ० ३.१४

मानवस्येदं कर्तव्यं यदसौ श्रमं करोतु, निरन्तरं कर्मरतस्तिष्ठतु, परन्तु तमःपूर्णजीवनपथे प्रकाशाय स कांचिद् दिव्यां शक्तिं प्रेरणां चापेक्षत एव—अत एवेयं प्रार्थना—

असतो मा सद् गमय

तमसो मा ज्योतिर्गमय

मृत्योर्मामृतं गमय—बृ० उ० १.३.२८

ऋग्वेदेऽग्निर्नेतृत्वाय प्रार्थ्यते अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्—ऋ १.१२९.१

वेदेषु स्थाने स्थाने प्रकाशाय व्याकुलमानवस्य प्रार्थना ।

मानवस्य सर्वमपि कर्म प्रेरणान्वितम् । अत एव कथयति वामदेवो गौतमः—

अभूद् देवः सविता वन्द्यो नु न

इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः ।

वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः

श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥

ऋ० ४.५४.१

तथा च हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः—

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणि-

रुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।

अपामीवां बाधते वेति सूर्य-

मभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥

ऋ० १.३५.९

तथा चोद्घोषयति गृत्समदो भार्गवः शौनकः (आङ्गिरसो शौनहोत्रो भार्गवः शौनकः पश्चाद्)—

न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो

व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।

नारातयस्तमिदं स्वस्ति

हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥

ऋ० २.३८.९

अस्य (ऋ० ७.४५) सूक्तस्य ऋषिः

अस्य सूक्तस्य ऋषि०—मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मैत्रावरुणिः=मित्रावरुणयोरपत्यम् । वसिष्ठः=वसु+इष्ठन् । मोनियरविलियम्समहोदयोऽधोलिखितान् अर्थान् प्रस्तौति—most excellent, best, richest (उत्कृष्टतमः, श्रेष्ठः, धनिकतमः) इत्यादयः । वसु=वस्—आच्छादने, वस्—निवासे, वस्—स्नेहनच्छेदनापहरणेषु, वस्—स्तम्भे । एवं वसिष्ठशब्दस्यार्थाः—श्रेष्ठः, सुप्रतिष्ठितः, व्याप्तिमान्, स्थितप्रज्ञः,—इत्यादयः । मित्रः=सर्वत्रैकात्म्यदृष्टिमान् । वरुणः—न्यायप्रेमपूर्णतावान् (विस्तराय दृश्यतां वरुणसूक्तम्) ।

वसिष्ठजन्मविषये ऋग्वेदे—

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठो-

र्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधिजातः ।

द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन

विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥

ऋ० ७.३३.१

अत्र दुर्गः—द्रप्सं शुक्रमुर्वशीदर्शनात् स्कन्नं मित्रावरुणयोः ।.....रौद्रेण किल तेजसा निर्दग्धो वसिष्ठो

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

मित्रपरिगृहीतायामुर्वश्यामुत्पन्नो वरुणतेजसो जात इति पुराणे श्रूयते। (नि० ५.१४) अत्रैव (नि० ५.१४) एकमृग्वेदमन्त्रम् (ऋ० ७.३३.१०) उद्धृत्य दुर्गो वसिष्ठस्य जन्म द्वयस्य चर्चां करोति।

वसिष्ठजन्मनः कथाया आलङ्कारिकव्याख्या प्रस्तूयते —वरुणः=सर्वाच्छादको नीलाकाश; मित्रः=सूर्यरश्मिसमानीत वाष्प जनितमेघः; उर्वशी=विद्युत् (दृश्यतां भूमिका, पृष्ठ २); वसिष्ठः=वृष्टिः, मण्डूकसूक्ते वसिष्ठो वृष्ट्या सह संबद्धः (दृश्यतां नि० ९.९)। आध्यात्मिक दृष्ट्या—

वरुण.—न्यायनियमव्रतपालनभावना; मित्रः=ऐकात्म्यदर्शनम्; उर्वशी=सदसद्विवेकमयी विद्योतमाना बुद्धिः; वसिष्ठः=ज्ञानम्, ज्ञानरसधारा, ज्ञानजनितानन्दरसधारा। उपरिनिर्दिष्टे मन्त्रे वसिष्ठस्य कृते ब्रह्मन्निति विशेषणम्; ब्रह्मन्=ज्ञानम्। मनसोऽधिजातः=इदं ज्ञानं मननेन प्राप्यते।

अस्मिन् सवितृसूक्तेऽस्य ज्ञानस्य प्राप्तेर्वर्णनम्।

सा०—आ देवो यात्विति चतुर्ऋचं द्वादशं सूक्तं वसिष्ठस्यार्षं सवितृदेवताकं त्रैष्टुभम्। आ देवश्चतुष्कं सावित्रमित्यनुक्रान्तम्। व्यूळहे दशरात्रे चतुर्थेऽहनि वैश्वदेवशस्त्र इदं सावित्रनिविद्धानम्। सूय्यते हि। चतुर्थेऽहन्या देवो यातु.....। आ० ८.८॥ ...इत्येषा वषानुवाक्या। सूत्रितं च। आ देवो यातु सविता सुरत्नः स घा नो देवः सविता सहावा। आ० ३.७। इति॥ अश्वमेधेऽनुसवनं तिस्रः सावित्र्य इष्टयः। तत्र द्वितीयस्यामिष्टौ याज्येयम्। सूत्रितं च। य इमा विश्वा जातान्या देवो यातु। आ० १०.६। इति॥

**आ देवो यातु सविता सुरत्नो**
**ऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः।**
**हस्ते दधानो नर्या पुरूणि**
**निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम॥१॥**

सा०—सुरत्नः शोभनरत्नोपेतोऽन्तरिक्षप्राः स्वकीयेन तेजसान्तरिक्षस्य पूरयिताश्वैः स्वकीयैर्वाहैर्वहमान उह्यमानः सविता सर्वस्य प्रेरको देव आ यातु। आगच्छतु। कीदृशः। नर्या नर्याणि मनुष्यहितानि पुरूणि बहूनि धनानि हस्ते पाणौ दधानो दातुं धारयन् भूम भूतानि निवेशयंश्च रात्रिषु स्वे स्थाने स्थापयंश्च प्रसुवंश्चाहःसु प्रेरयंश्च। एवंभूतः सविता देव आ यातु।

द०—पुनर्विद्वांसः किंवत् किं कुर्युरित्याह॥

पदार्थः—(आ) समन्तात् (देवः) दाता दिव्यगुणः (यातु) आगच्छतु (सविता) सकलैश्वर्यप्रदः (सुरत्नः) शोभनं रत्नं रमणीयं धनं यस्माद्यस्य वा (अन्तरिक्षप्राः) योऽन्तरिक्षं प्राति व्याप्नोति (वहमानः) प्राप्नुवन् प्रापयन्(अश्वैः) किरणैरिव महद्भिरग्निजलादिभिः (हस्ते) करे (दधानः) धरन् (नर्या) नृभ्यो हितानि (पुरूणि) बहूनि (निवेशयन्) प्रवेशयन् (च) (प्रसुवन्) प्रसुवन्ति यस्मिन् तदैश्वर्यम् (च) (भूम) भवेम॥१॥

अन्वयः—हे मनुष्याः। सुरत्नस्सविता देवोऽन्तरिक्षप्रा अश्वैर्भूगोलान् वहमानः पुरूणि नर्या दधानो निवेशयन् प्रसुवं याति तथा सर्वमेतत्प्रापयंश्चैश्वर्यं हस्ते दधानो विद्वानायातु तेन सह वयञ्चेदृशा भूम॥१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०—ये मनुष्याः सूर्यवच्छुभगुणकर्मप्रकाशिता मनुष्यादिहितं कुर्वन्ति ते बह्वैश्वर्यं प्राप्नुवन्ति॥१॥

Gr.—May the God Savitar, rich in goodly treasures filling the region, borne by steeds, come hither,

In his hand holding much that makes men happy, lulling to Slumber and arousing creatures.

देवः—यास्कः—देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा।

अन्तरिक्षम्—यास्कः—'अन्तरिक्षं कस्मात्? अन्तरा क्षान्तं भवति, अन्तरेमे इति वा, शरीरेष्वन्तरक्षयमिति वा'। —अत्र दुर्गः 'अन्तरा' ह्यदं द्यावापृथिव्योरवस्थितं 'क्षान्तं' च 'भवति'। पृथिव्यन्तमित्यर्थः। अथ वा 'अन्तरा' द्यावापृथिव्यौ इमे क्षियति निवसति 'इति' अन्तरिक्षम्। अथ वा 'शरीरेषु' एतदेव 'अन्तर्' मध्येऽवस्थितम् अक्षयम्' इतराणि पृथिव्यादीनि भूतानि क्षीयन्ते तस्मादक्षयत्वादन्तरिक्षम्।

अश्वः—यास्कः—अश्नुतेऽध्वानम्, महाशनो भवतीति वा।

हस्तः—यास्कः—हस्तो हन्तेः, प्राशुहंनने।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



नर्याणि ( नरेभ्यो हितानि ) नरः यास्कः—नरा मनुष्या नृत्यन्ति कर्मसु ।

योगी—देव सविता आए—शोभन रत्नों से युक्त, अन्तरिक्ष को व्याप्त करने वाला, अश्वों के द्वारा उह्यमान, हस्त में नरों के लिए हितकर अनेक वस्तुओं को धारण करता हुआ, प्राणियों को विश्राम देता हुआ तथा प्रेरणा देता हुआ ॥१॥

भूम (भूमन्) भू सत्तायाम्—भू प्राप्तौ

पुरूणि—पृ पालनपूरणयोः, पृ प्रीतौ—पृङ् व्यायामे

नरः—नृ नये ।

राष्ट्रे प्रेरणाप्रदायका महात्मानः संन्यासिनश्च सदैव कल्याणेप्सुभिरुपसर्तव्याः । एषां महात्मनां सर्वव्यापी हृदयविस्तरः । एषां दर्शनमपि नर्यम् (नरहितकारि) । एषां सत्सङ्गेन जनो नरो (नेतृगुणयुक्तः) भवति, तस्य सर्वकामप्राप्तिर्भवति, स आत्मप्रेरणां हृदयविश्रान्तिं च लभते ।

यस्य जनस्य दिव्यान्तःप्रेरणाऽस्ति, तस्य जीवन-प्रगतिरप्रतिमा । तस्यात्मा सीमोपाधिं परित्यज्य ब्रह्मरूपं भजते । तस्य हस्ते विश्वस्य समग्रोऽभ्युदयो निःश्रेयसश्च ।

॥१॥

**उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता**
**हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम् ।**
**नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट**
**सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् ॥२॥**

सा०—शिथिरा शिथिलौ दानार्थं प्रसारितौ बृहन्ता बृहन्तौ महान्तौ हिरण्यया हिरण्ययौ सुवर्णमयावस्य सवितुः सम्बन्धिनौ बाहू हस्तौ दिवोऽन्तरिक्षस्यान्तान् पर्यन्तानुद-नष्टाम् । ऊर्ध्वौ सन्तौ व्याप्नुवताम् । नूनमद्यास्येदृग्भूतस्य सवितुः स तादृशो महिमा महत्त्वं पनिष्ट । अस्माभिः स्तूयते । सूरश्चित्सूर्योऽप्यस्मै सवित्रेऽपस्यां कर्मेच्छामनु दात् । अनुददातु ॥

द०—पुना राजादिजनः कीदृशः स्यादित्याह ॥

पदार्थः—(उत्) (अस्य) पूर्णविश्वस्य (बाहू) भुजौ (शिथिरा) शिथिलौ हठौ (बृहन्ता) महान्तौ (हिरण्यया) भूषणयुक्तौ (दिवः) प्रकाशस्य (अन्तान्) समीप-स्थान् (अनष्टाम्) प्रसिद्धाम् (नूनम्) निश्चयः (सः)(अस्य) (महिमा) महती प्रशंसा (पनिष्ट) स्तूयते (सूरः) सूर्यः (चित्) इव (अस्मै) (अनु) (दात्) (अप, स्याम्) आत्मनः कर्मेच्छाम् ॥२॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यः सूरश्चिदिवास्मा अपस्या-मनु दात् यस्यास्य स महिमाऽस्माभिर्नूनं पनिष्ट यस्यास्य दिवोऽन्तान् हिरण्यया बृहन्ता शिथिरा बाहू उदनष्टां स एवाऽस्माभिः प्रशंसनीयोऽस्ति ॥२॥

भावार्थः—अत्रोपमा०—हे मनुष्याः । यस्य सूर्य-वन्महिमा प्रतापः सर्वबलयुक्तौ बाहू वर्त्तेते स एवास्य राष्ट्रस्य मध्ये महीयते । २॥

Gr,—Golden, Sublime, and easy in their motion, his arms extend unto the bounds of heaven.

Now shall that mightiness of his be lauded: even sura yields to him in active vigour.

बाहुः—यास्कः—प्रवाहतः आभ्यां कर्माणि, दुर्गः—प्रकर्षेण वाहते प्रजापत्याभ्यां कर्माणि ।

हिरण्ययः—यास्कः—हिरण्मयः हिरण्यम्—यास्कः—

ह्रियत आयम्यमानमिति वा, ह्रियते जनाऽजनमिति वा, हितरमणं भवतीति वा, [हृदयरमणं भवतीति वा], हर्यतेर्वा स्यात् प्रेप्साकर्मणः ।

योगी—इस (सविता) की फैली हुई, उत्तम, हिरण्मय बाहें द्युलोक के अन्तों तक पहुँची हुई हैं । आज इसकी यह महिमा [मेरे द्वारा] गाई जा रही है; सूर्य भी इसे कर्मशीलता प्रदान करे ॥२॥

शिथिरः—शिथिलः—अन्द् विमोचनप्रतिहर्षयोः, अथि शैथिल्ये ।

अनष्टाम्—सम्भवतः णश्—नश् गतौ, (निघ० २. १४ नशति गतिकर्मा; निघ० २.१८ नशति व्याप्तिकर्मा) लुङि प्रथमपुरुषद्विवचने, अथवा णश्=नश् अदर्शने, (निघ० २.१८ व्याप्तिकर्मा)

पनिष्ट—पन् स्तुतौ; पनिष्ट=अपनिष्ट—लुङि प्रथमपुरुषैकवचने

सूरः—सम्भवतः सू प्रेरणां राति ददातीति सूरः ।

अपस्या—कर्मशीलता, अपस्=कर्म (lat. opus)

महात्मनां संन्यासिनां च हृदयं महाभद्रं भवति,

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection.

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



रमणीयौ स्तः। इदं प्रार्थ्यते यत् सर्वप्रेरकः (सूरः) परमात्मैतादृशेभ्यो जनेभ्यः कर्मशीलतां प्रयच्छतु। एषां कर्मशीलतया कर्मेच्छया वैव जनानां कल्याणं भवेत्।

यदा दिव्य प्रेरणा जागर्ति, तदा मनुष्यस्य हृदय-विस्तरो भवति, स च सर्वत्रैकात्मदर्शनं करोति, परमिदमावश्यकं यत्प्रेरणानुसारं कर्म (अपः) क्रियेत। विना कर्मणा प्रेरणा पङ्गुः, विना प्रेरणया कर्म निरर्थकम् ॥२॥

सा०—सावित्रे पशौ पुरोडाशस्य हविषोः स घा न इति द्वे अनुवाक्ये। सूत्रं पूर्वमुदाहृतम्। आश्वमेधिकीषु सावित्रेष्टिषु तृतीयस्यामिष्टाविमे एव याज्यानुवाक्ये। सूत्रितं च। स घा नो देवः सविता सहावेति द्वे। आ० १०.६। इति ॥

स घा नो देवः सविता सहावा
सावित्रं पशुं पुरोडाशं निर्वपति
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं
मर्तभोजनमध रासते नः ॥३॥

सा०—सहावा। तेजोऽन्तराण्यभि भावुकं तेजो यस्य सः। वसुपतिर्धनानां पालकः स सविता देवो नोऽस्मभ्यं वसूनि धनान्या साविषत्। आ समन्तात्प्रेरयति। धेति पूरणः। स सविता देव उरूचीं विस्तीर्णगमनाममतिं रूपम्। दीप्तिमित्यर्थः। विश्रयमाणो निषेवमाणः सन्नधुना नोऽस्मभ्यं मर्तभोजनं मनुष्याणां भोगयोग्यं धनं रासते। ददातु ॥

द०—पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

पदार्थः—(सः) (घा) एव। अत्र ऋचि तुनुघेति दीर्घः। (नः) अस्मान् (देवः) कमनीयः (सविता) ऐश्वर्यवान् सूर्यवत्प्रकाशमानः (सहावा) यः सहैव वनति सम्भजति (आ) समन्तात् (साविषत्) सुवेत् (वसुपतिः) धनपालकः (वसूनि) धनानि (विश्रयमाणः) (अमतिम्) सुन्दरं रूपम्। अमतिरिति रूपनाम। निघं० ३।७। (उरूचीम्) उरूणि बहूनि वस्तून्यञ्चन्तीम् (मर्तभोजनम्) मर्त्येभ्यो भोजनं मर्तभोजनम् मनुष्याणां पालनं वा (अध) अथ (रासते) ददाति (नः) अस्मभ्यम् ॥३॥

अन्वयः—यो वसुपतिरुरूचीममतिं विश्रयमाणो नो मर्तभोजनं रासते स घाथ सविता सहावा देवो नो वसून्या साविषत् ॥३॥

भावार्थः—ये मनुष्याः सूर्यवत्सर्वेषां धनानि वर्धयित्वा सुपात्रेभ्यः प्रयच्छन्ति ते धनपतयो भवन्ति ॥

Gr.—May this God Savitar, the Strong and Mighty, the Lord of precious wealth, vouchsafe us treasures.

My he, advancing his far-spreading lustre, bestow on us the food that feedeth mortals.

**सहावा**—यास्कः — नि० १०.२८ सहावानम्= सहस्वन्तम्, अत्र दुर्गः सहो बलं तेन तद्वन्तम्, अत्र सायणः (ऋ० १०.१७८.१)—'सहावानं' सहस्वन्तं बलवन्तमभिभवनवन्तं वा।

**अमतिः**—निघ० ३. ७ — अमतिरिति रूपनाम। यास्कः—अमामयी मतिरात्ममयी; अत्र दुर्गः—'अमामयी मतिः' अमतिः। एवमपि न प्रतीयत इत्यत आह। 'आत्ममयी यस्य मतिः असौ अमतिः' इत्युच्यते। कश्चासौ। आदित्यः। तस्य ह्यात्मप्रकाशमयी मतिः। .....एवमत्र 'अमति' शब्देन आत्मप्रकाशगतमादित्यस्य ज्ञानमुच्यते। स हि प्रकाशसतत्त्व एव नान्यत्प्रकाशान्तरमपेक्षत इत्युपपत्तिः।

रासते—रासतिरिति दानकर्मा (नि० ३.२०.५)।

योगी—शक्तिशाली एवं सर्वतेजोऽभिभावी वसुपति देव सविता हमारे लिए वसुओं को सब ओर से प्रेरित करे। वह विस्तीर्ण गति वाली अमति का निषेवण करता हुआ हमारे लिए मर्तभोजन देता है ॥३॥

विश्रयमाणः—वि—श्रिञ् सेवायाम्।

उरूचीम्—उरु+अञ्चु—अञ्चु गतिपूजनयोः।

वसूनि—(दृश्यतां वसुचर्चाऽस्य सूक्तस्य ऋषिविचारे)।

दिव्या महात्मानः संन्यासिनश्च अतितेजस्विनो भवन्ति। तेषां तेजः सर्वतेजोऽभिभावि भवति, यत आत्मप्रकाशा हि ते। तेऽन्यजनानां साहाय्येनोच्चा न भवन्ति, तेषामुच्चतात्मगुणसमुदयविकासमूला। अस्मभ्यं सामान्यजनेभ्यस्तेऽस्मदनुरूपं किंचिद् उपदिशन्ति। तत्त्वज्ञाः संन्यासिनः सामान्यमर्त्यान् पूर्णसांसारिकभोगत्याग नोपदिशन्ति। यावदस्माकं मर्त्यता नापगच्छति, तावद्दिव्यज्ञानं ते पूर्णरूपेण दातुं न प्रभवन्ति। यथा यथा सामान्यमनुष्या दिव्यज्ञानसंभरणक्षमा भवन्ति, तथा तथा ते यथापात्र-[illegible] 'अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते' (विरतराय

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi. Digitized by eGangotri

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



दृश्यतां सोमसूक्तभूमिका)। तथापि यावच्छरीरमस्ति, तावत् सांसारिकजीवनस्य सर्वथा परित्यागो न श्रेयसे—मर्तभोजनमिष्यत एव।

यस्य जनस्य हृदये दिव्यप्रेरणा जागर्ति, स तेजस्वी भवति, स्वप्रकाशेन द्योतते। आध्यात्मिकजीवने निवसन्नपि स सांसारिकजीवनस्योपेक्षां न करोति। मर्त्येन शारीरिकविकासोऽपीष्यत एव—अभ्युदयनिःश्रेयसयोर्भोगयोगयोरविद्याविद्ययोः समन्वय एव मर्त्याय हितकरः 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'। अतः पुरुषार्थोऽपि धर्मार्थकाममोक्षरूपः ॥३॥

इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं
पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम्।
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४॥

सा०—इमा ईदृग्भूता गिरः। गृणन्ति स्तुवन्तीति गिरः स्तोत्र्यः प्रजाः। यद्वा। इमाः स्तुतिरूपा वाचः। सुजिह्वं शोभनजिह्वम्। शोभनवाचमित्यर्थः। पूर्णगभस्तिं सम्पूर्णधनहस्तं सवितारं देवमीळते। स्तुवन्ति। स च सविता चित्रं चायनीयं बृहन्महद्वयोऽन्नमस्मे अस्मासु दधातु। यद्वा। अस्मे अस्मभ्यं प्रयच्छतु। हे सवितृप्रमुखा देवा यूयं नोऽस्मान् स्वस्तिभिः कल्याणैः सदा सर्वदा पात पालयत ॥

द०—पुनर्धार्मिका विद्वांसः काभिः स्तूयन्त इत्याह ॥

पदार्थः—(इमाः) (गिरः) विद्याशिक्षायुक्ता धर्म्या वाचः (सवितारम्) ऐश्वर्यवन्तम् (सुजिह्वम्) शोभना जिह्वा यस्य तम् (पूर्णगभस्तिम्) पूर्णा गभस्तयो रश्मयो यस्य सूर्यस्य तद्वद्वर्तमानम् (ईळते) प्रशंसन्ति (सुपाणिम्) शोभनौ पाणी हस्तौ यस्य तम् (चित्रम्) अद्भुतम् (वयः) जीवनम् (बृहत्) महत् (अस्मे) अस्मासु (दधातु) (यूयम्) (पात) (स्वस्तिभिः) (सदा) (नः) ॥४॥

अन्वयः—योऽस्मे बृहच्चित्रं वयो दधातु तं सुपाणिं पूर्णगभस्तिमिव सवितारं सुजिह्वं धार्मिकं नरमिमा गिर ईळते हे विद्वांसो यूयं विद्यायुक्तवाणीवत्स्वस्तिभिर्नस्सदा पात ॥

भावार्थः—सद्विद्यया धार्मिकाः पुरुषा जायन्ते धर्मात्मानमेव विद्या सर्वसुखानि चाप्नुवन्ति ॥

Gr.—These Songs praise Savitar whose tongue is pleasant, praise him whose arms are full, whose hands are lovely.

High Vital Strength, and manifold, may he grant us. Preserve us evermore, ye Gods, with blessings.

गिरः—यास्कः—गिरो गृणातेः।

जिह्वा—यास्कः—'जिह्वा जोहुवा।'

अत्र दुर्गः—'सा हि जोहुवा सती जिह्वेत्युच्यते। तया प्राणिनोऽन्नमात्मन्येव जुह्वति अथवा तयाह्वयन्तीति जोहुवा।'

ईळते—यास्कः—'ईळिरध्येषणाकर्मा पूजाकर्मा वा' (दुर्गः—अध्येषणा=याच्ञा)।

सुपाणिः—यास्कः—'सुपाणिः कल्याणपाणिः। पाणिः पणायतेः पूजाकर्मणः। प्रगृह्य पाणौ देवान् पूजयन्ति।'

चित्रम्—यास्कः—'चायनीयं मंहनीयम्।'

योगी—ये वाणियाँ सुजिह्व, पूर्णकिरण, सुपाणि सविता का पूजन करती हैं। [वह] हमें प्रशंसनीय (अथवा अद्भुत, नानाविध) ऊर्जा प्रदान करे। हे देवो, तुम कल्याणों के द्वारा सदा हमारा पालन करो ॥४॥

वय—वी गतिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु। वयः—मोनियर विलियम्स—enjoyment, food, energy (both bodily and mental), strength, health, vigour, power, might.

(सुखोपभोगः, भोजनम्, ऊर्जा, स्वास्थ्यम्, शक्तिः—इत्यादि)।

राष्ट्रे प्रेरणादातारो जना नानादिव्यगुणयुक्ता भवन्ति, तेषां वाणी मधुरा कल्याणमयी च भवति, तेषां ज्ञानं (प्रकाशः) पूर्णं भवति, तेषां हस्तो वरदो भवति। यस्तैः सह सङ्गतिं करोति, स शारीरिकमानसिकबौद्धिकात्मिकशक्तिसम्पन्नो भवति।

अन्तःप्रेरणायुक्तो जनो मधुरो ज्ञानी सफलशक्तिःसम्पन्नश्च भवति ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# सोमः

ऋग्वेदस्य सम्पूर्णं नवममण्डलं सोमदेवताकम् । तत्र हि ११४ सूक्तानि । ऋग्वेदस्यान्यमण्डलेषु षट् सूक्तानि सोमदेवताकानि । एतदतिरिक्तं सोमः षट्सूक्तेषु अग्नीन्द्र-पूषरुद्रैः सह देवतायुग्मरूपेण स्तुतः । चतुर्षु पञ्चसु वा सूक्तेष्वंशतः सोमः स्तुतः । यजुस्सामाथर्ववेदेष्वपि प्रायः ४० मन्त्राः सोमदेवताकास्तथा केषुचिन्मन्त्रेष्वंशतः सोमः स्तुतः ।

आध्यात्मिकदृष्ट्या सोमो दिव्यानन्दस्य प्रतिनिधिः; यथा पशियनकाव्ये हिन्दीसूफीकाव्ये च मदिरा दिव्यानन्दस्य प्रतिनिधिः । सोमः सुरायाः पूर्णतो विभिन्नः पदार्थः । मदिरायाः वेदेषु सर्वत्र निन्दा प्राप्यते—

युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्

अत्र दुर्गः (नि० १.४)—'यथा कुत्सितमवाः केचित् पुरुषाः सुरायां पीतायां सत्यां युध्येरन्नेवम् ।'

वेदेषु सोमस्याधोलिखितैः कतिपयैर्विशेषणैस्तत्स्वरूपं स्फुटीभवति—

रक्षोहा, विश्वचर्षणिः, वरिवोधातमः, मंहिष्ठः, वृत्रहन्तमः, वृषा, हरिः, महान्, 'मित्रो न दर्शतः', लोककृत्नुः, अमर्त्यः, पवमानः, पुरुव्रतः, देवयुः, अव्यः, रसः, 'आत्मा यज्ञस्य', इन्द्रयुः, सत्यः, अध्वरः, अरुषः, नृचक्षाः, इन्द्रपीतः, स्वर्वित्, कविः, कविक्रतुः, बभ्रुः, स्वतवाः अरुणः, दिविस्पृक्, अमित्रहा, विचर्षणिः, मनसस्पतिः, मदच्युत्, विपश्चित्, 'सोमो गौरी अधिश्रितः', सहस्रधारः, नित्यस्तोत्रः, विप्रः, युवा, मदिन्तमः, स्वायुधः, गिरिष्ठाः, मधु, शुष्मी, साह्वान्, मंहयुः, सुव्रतः, सधमाद्यः 'इन्द्रियं रसं दधानः,' सुवीरः, अभिशस्तिपाः, नृमादनः, देववीः, अधशंसहा, दक्षसाधनः, देववीतमः, स्वर्जित्, 'दिवो मूर्धा', हिरण्ययुः, प्रभूवसुः, जागृविः, वीरयुः, धर्णसिः, रक्षोहा, वरिवोवित्, अदाभ्यः, 'स देवः कविनेषितः', रघुयामा, सुवितः, शुष्मी, 'अयं देवेषु जागृतिः', बर्हिष्मान्, क्रतुवित्, गातुवित्तमः, नृचक्षाः, धनंजयः, 'दिवः पीयूषमुत्तमम्', पुरुहूतः, इन्द्रयुः, सहस्रचक्षाः, सहस्रभर्णाः, सिन्धुमाता, मधुमान्, वृषव्रतः, पुरुश्चन्द्रः, पुरुस्पृट् (पुरुस्पृह्) उरुगायः, कविक्रतुः, सहस्रोतिः, शतामघः, वृषव्रतः, चेतनः, वरेण्यः, मनीषी, मन्द्रः, ओजिष्ठः, मंहयद्रयिः, नृमादनः, 'ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितः' 'दिवः कविः', 'नभो वसानः', पवित्ररथः, सहस्रभृष्टिः, 'ज्योतिर्यज्ञस्य', अन्तरिक्षप्राः, विश्ववित्, घृतस्नुः, सुदृशीकः, अर्णवः, ज्योतीरथः, स्कम्भः 'दिव उद्यतो मदः', 'पिता देवानाम्', सुदक्षः, ऋभुः, धीरः, 'उशनाः काव्येन', विश्ववारः, धीजवनः, शूरग्रामः, सर्ववीरः सहावान्, जेता, तिग्मायुधः, क्षिप्रधन्वा, सेनानीः, 'जनिता मतीनाम्', 'मनवे वयोधाः, यशस्तरः, अद्रिदुग्धः, सुरभिः, अदब्धः, 'प्रिय इन्द्रस्य काम्यः', हर्यतः, धृष्णुः, इन्द्रपातमः, 'परि णेता मतीनाम्', गातुवित्तमः, सहस्रयामा, पथिकृत, 'प्रतपञ्ज्योतिषा तमः,' सुष्टुतः—इत्यादीनि ।

अधोलिखितेषु मन्त्रेषु मन्त्रखण्डेषु च सोमस्याध्यात्मिकस्वरूपं स्फुटीभवति—

नवसूक्तानि

'नू नव्यसे सूक्ताय साधया पथः ।
प्रत्नवद् रोचया रुचः'— ऋ० ९.८.८

भौतिकाध्यात्मिकोन्नती

'परि दिव्यानि मर्मृशद् विश्वानि सोम पार्थिवा ।
वसूनि याह्यस्मयुः'— ऋ० ८.१४.८

सोमस्य प्रभावेण

'अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।
रुचे जनन्त सूर्यम्'— ऋ० ८.२३.२

दिव्यः सोमः

'एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि ।
पवित्रे मत्सरो मदः'— ऋ० ८.२७.५

सोमः स्वायुधः

'स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयम् ।
इन्दो सखित्वमुश्मसि'— ऋ० ९.३१.६



Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



यशसो मेधायाश्च दाता सोमः
'अस्मे धेहि द्युमद् यशो मघवद्भ्यश्च मह्यं च ।
सनिं मेधामुत श्रवः'— ऋ० ८.३२.६
ज्योतिर्दाता सोमः
'यया ज्योतिर्विदासि नः'— ऋ० ९.३५.१
'स न ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय'—
ऋ० ९.३६.३
'आ दिवस्पृष्ठम्...सोम रोहसि'— ऋ० ९.३६.६
सोमः=विप्रः
'शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः'— ऋ० ९.४०.१
विजयी सोमः
'यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य ।
स पवस्व सहस्रजित्'— ऋ० ९.५५.५
सोमा इन्द्रं वर्धयन्ति
'इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।
अपघ्नन्तो अराव्णः'— ऋ० ९.६३.५
सोमेन मनुष्यस्तीव्रगतिर्भवति
'अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि ।
अन्तरिक्षेण यातवे'— ऋ० ९.६३.८
मेधावी सोमः
राजा मेधाभिरीयते— ऋ० ९.६५.१६
ओजस्वी सोमः
'य उग्रेभ्यश्चिदोजीयाञ्छूरेभ्यश्चिच्छूरतरः'
ऋ० ९.६६.१७
प्रकाशदाता सोमः
'पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् ।
कृष्णा तमांसि जङ्घनत्'— ऋ० ९.६६.२४
भयहर्ता सोमः
'यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह ।
पदमान वि तज्जहि'— ऋ० ९.६७.२१
मनीषिण एव सोमं जानन्ति
'मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः' —ऋ० ९.६८.६
वाक्प्रबोधकः सोमः
'उद् वाचमीरयति हिन्वते मती'— ऋ० ९.७२.१
परिपवमानसो जना हि सोममक्षुवते
'पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते
प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः

अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते
श्रृतास इद् बहन्तस्तत् समाशत ॥'
ऋ० ९.८३.१
सोमस्य धाम
'बृहद् गभीरं तव सोम धाम'— ऋ० ९.८८.८
श्रीदः सोमः
'श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय
श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्
भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ' ॥
ऋ० ९.९४.४
सोमस्य सर्वातिशायि माहात्म्यम्
'ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनां
ऋषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां
सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥'
ऋ० ९.९६.६
ऋषिः सोमः
'ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षाः
सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।'
ऋ० ९.९६.१८
कविः सोमः
'कविभिः काव्येना कविः सन्'
ऋ० ९.९७.१७
'महान् कविर्निश्चरनानि संगन्'
ऋ० ९.९७.२
'प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो
देवो देवानां जनिमा विवक्ति' ।
ऋ० ९.९७.७
'तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निः'
ऋ० ९.९७.३४
सोमः सवितृवत्
'देवो न यः सविता सत्यमन्मा'
ऋ० ९.९७.४८
ऋषिर्विप्रः कविः सोमः
'सोमो भीद्वान् पवते जातुविन्तम
ऋषिर्विप्रो विचक्षणः ।

IBharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


त्वं कविरभवो देववीतम
आ सूर्यं रोहयो दिवि' ॥

ऋ० ९.१०७.७

शक्तिदाता सोमः
'स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय'— ऋ० १.११०.७

आनन्दमयः सोमः
'सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परि स्रव'

ऋ० १.११३.५

'यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामाः
तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव' ॥

ऋ० ९.११३.११

अमृतलोकप्रापकः सोमः
यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन् लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन् मा धेहि पवमान
अमृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥'

ऋ० ९.११३.७

वेदमन्त्रैः सोमस्तुतिः कर्तव्या
'ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः ।
सोमं नमस्य राजानम्'— ऋ०— १.११४.२

सोमस्तीव्रो रसवांश्च शक्तिदाता च
'स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं
तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं
न कश्चन सहत आहवेषु ॥'

ऋ० ६.४७.१

(जीवात्माऽऽध्यात्मिकानन्दं प्राप्याविजेयो भवति)

सोमः सत्यमृजुतां च रक्षति
'सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय
सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीय-
स्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥'

ऋ० ७.१०४.१२

सोमेन (आध्यात्मिकानन्देन ज्योतिःप्राप्तिर-
विजेयता च)
'अपाम सोमममृता अभूम
अगन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मत्कृणवदरातिः
किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य' ॥ ऋ—० ८.४८.३

सोमो हृत्सु पीयते
'यो न इन्दुः पितरो हृत्सु पीतो
अमर्त्यो मर्त्याँ आविवेश' ।

ऋ० ८.४८.१२

वास्तविकसोमोऽन्यः
'सोमं मन्यते पपिवान्
यत् संपिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदु-
र्न तस्याश्नाति कश्चन ॥

ऋ० १०.८५.३

सोम उन्नतिदिशाया अधिपतिः
'उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः'—अथर्व० ३.२७.४

श्रीअरविन्दोऽपि सोममाध्यात्मिकानन्दरूपेण स्वीकरोति तथा च तमानन्दस्यामृततत्त्वस्य च देवं कथयति —"That these things are symbols is very clear in most of the hymns of the ninth Mandala which are all devoted to the God Soma. Here, for instance, the physical system of the human being is imagined as the jar of the Soma wine and the strainer through which it is purified is said to be spread out in the seat of Heaven, दिवस्पदे. (on the Veda, p. 368)—

"इमानि वस्तूनि प्रतीकरूपाणि सन्ति, इदं नवममण्डलस्य, यस्य सर्वाणि सूक्तानि सोमदेवताकानि, अधिकांशसूक्तैः नितरां स्फुटीभवति । उदाहरणार्थमत्र मनुष्यस्य शरीरसंस्थानं सोममदिरायाः कलशरूपेण कल्पितम्, तथा च तत्पवित्रं यस्मिन्नियं मदिरा पूयते दिवस्पदे प्रस्तीर्णेति कथितम्[1]।"

"But it is not every human system that can

[1] 'अन्तर्हि वेद' पृ० ३६८ ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



hold, sustain and enjoy the potent and often violent ecstasy of that divine delight—"He who is raw and his body not heated does not taste or enjoy that...only those who have been baked in the fire, bear and entirely enjoy that" (ibid p. 369) "परन्तु प्रत्येकं मानवसंस्थानं तस्य दिव्यानन्दस्य शक्तिमन्तं तथा प्राय उग्रं भावावेशं ग्रहीतुं धारयितुं भोक्तुं च न पारयति—'अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते...शृतास इत् तत् समाशत'' 'ऑन दि वेद" पुस्तकम्, पृ० ३६९)

अस्य (९.७३) सूक्तस्य ऋषिः

अस्य सूक्तस्य ऋषिः पवित्र आङ्गिरसः । अङ्गिरसोऽपत्यमित्याङ्गिरसः । अङ्गिरोविषये दृश्यताम् इन्द्रसूक्तम्, पृ० ११) । पवित्रम्=filter, strainer, शोधनवस्त्रम् । यास्कः—पवित्रं पुनातेः ।—पूञ् पवने, वोपदेवः—शोधे । यः कश्चिदपि जनः शुद्धो भवति, सर्वान् दोषान् दूरीकरोति, स अङ्गारसदृशस्तेजस्वी जायते, तस्य च सर्वेष्वङ्गेषु रसो जायते—स सोमरसेन=आनन्दरसेन आप्लावितो भवति । यास्कः—सोमोऽपि पवित्रमुच्यते ।

स्रक्व इति नवर्चं षष्ठं सूक्तमाङ्गिरसस्य पवित्रस्यार्षं जागतं पवमानसोमदेवताकम् । तथा चानुक्रम्यते । स्रक्वे पवित्र इति । प्रवर्ग्येऽभिष्टव एतत्सूक्तम् । सूत्रितं च । स्रक्वे द्रप्सस्यायं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भाः । आ० ४.६ । इति ।

स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्
ऋतस्य योना समरन्त नाभयः ।
त्रीन्त्स मूर्धो असुरश्चक्र आरभे
सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥१॥

सा०—स्रक्वे यज्ञस्य हनुस्थानीये । स्रक्व ओष्ठप्रान्तो हनुरुच्यते । अधिषवणफलके धमतोऽभिषूयमाणस्य द्रप्सस्य सोमस्यांशवः समस्वरन् । सङ्गच्छन्ते । तदास्यशब्दयन्वा । ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य योना योनावुत्पत्तिस्थाने नाभयः सोमरसाः समरन्त । सङ्गच्छन्ते ॥ अर्तेः समो गमीत्यादिनात्मनेपदम् । सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्चेति च्लेरङ् ॥ अथासुरो बलवान् सर्वेषां प्रीणनात् प्राणदाता वा स सोमो मूर्ध्नः समुच्छ्रितांस्त्रींल्लोकानारभ आरम्भणाय मनुष्यदेवादीनां सञ्चरणाय करोति । किञ्च सत्यस्य सत्यभूतस्य सोमस्य नावो नौका इव स्थितास्तनवः स्थाल्यः । आदित्याग्रयणोक्थ्यध्रुवस्थाल्य इति । ताः स्थाल्यः सुकृतं सुष्ठु कर्माणि कुर्वन्तं यजमानमपीपरन् । अभिमतदानेन पूजयन्ति वा ॥ पारयतेर्लुङि चङि सन्वद्भावाभ्यासेत्वदीर्घाः ॥

Gr.—They from the sprouting drop have sounded at the rim : naves speed together to the place of sacrifice.

That Asura hath formed, to seize, three lofty heights. The ships of truth have borne the pious man across.

द्रप्सः—यास्कः—द्रप्सः संभृतः प्सानीयो भवति । अत्र दुर्गः—प्सानीयः=भक्षणीयो भरणीयश्च । ऋतम्—यास्कः=ऋतं सत्यं यज्ञो वा ।

नाभिः—यास्कः—नाभिः संनहनाद्, नाभ्या संनद्धा गर्भा जायन्त इत्याहुः । असुराः—यास्कः—असुरा असुरताः स्थानेष्वस्ताः स्थानेभ्य इति वा । अपि वा सुरिति प्राणनाम, अस्तः शरीरे भवति, तेन तद्वन्तः—'सोर्देवान् असृजत् तत् सुराणां सुरत्वम् । असोरसुरानसृजत तदसुराणामसुरत्वम् ।—अत्र दुर्गः—असुरताः स्थानेषु ते हि न सुष्ठुरताः स्थानेषु चपला इत्यर्थः । अथ वा 'अस्ताः स्थानेभ्यः—प्रच्याविता देवैरित्यर्थः । प्राणनाम—स हि 'अस्तः' क्षिप्त इव शरीरे भवति, तस्य हि तत्र नित्यमवस्थानमिति भावः । योनिः—यास्कः—परियुतः । सत्यम्—यास्कः—सत्यं कस्मात् ? सत्सु तायते, सत्प्रभवं भवतीति वा । शाकटायनः—'सन्तमर्थं प्रत्याययति (अस्+इ) ।

योगी—[सोमपात्र के] प्रान्तभाग पर देदीप्यमान एवं शब्दायमान सोम के [बिन्दु] मिलकर गीत गाने लगे, नाभियां ऋत की योनि पर गतिशील हुई, असुर ने कार्योपक्रम के लिए तीन मूर्धाओं (उच्छ्रित स्थानों सा० लोकों) को निर्मित किया, सत्य की नावों ने शुभकार्यकारी को पार पहुँचा दिया ॥१॥

सृक्वः—सृज् विसर्गे । द्रप्सः—मो० विलि०—"a drop (as of soma, rain, semen etc.)=बिन्दुः (यथा सोमवृष्टिवीर्यादीनाम्) —द्रु ?"—यास्कः—प्सा । प्सा भक्षणे, सा० भक्षणदीप्त्योः; निघ० प्सातिर्गतिकर्मा । धमतः—ध्मा—शब्दाग्नि संयोगयोः, वोपदेवः—अग्नियुते

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


ध्वनौ । आरभे=आरम्भाय कार्योपक्रमाय रभ्, राभस्ये, राभस्यम्=कार्योपक्रमः । अपीपरन्—पार् कर्मसमाप्तौ अथवा पॄ पूरणे ।

तुलना—द्रप्सः=Eng. drops

प्राप्ताध्यात्मिकालोकस्य मनुष्यस्य हृदयं दिव्यानन्दरसपरिपूर्णं तिष्ठति । असौ सर्वविधनियमाननुसृत्य प्रत्येकवस्तुनः केन्द्रं (नाभिम्=वास्तविकस्वरूपं, मूलस्थानम्) जानाति । एतादृशो जनो महाशक्तिशाली (असुरः) भवति, तस्य कार्याणि त्रिविधविकासेन—शारीरिक बौद्धिकात्मिकविकासेन—सह प्रवर्तन्ते; सत्यमार्गानुगामी स सदा पुण्यकार्यपरस्तिष्ठति, जीवने च सर्वविधां सफलतां लभते ॥१॥

**सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत**
**सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन् ।**
**मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित्**
**प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥२॥**

सा०—महिषाः पूज्या महान्तो वत्विजः सम्यञ्चः परस्परं सङ्गताः सन्तः सम्यगहेषत । सोमं सम्यक् प्रेरयन्ति । अभिपुण्वन्तीति यावत् ॥ हि गतौ वृद्धौ च । लुङि सिचि रूपम् ॥ ततो वेनाः । वेनतेः कान्तिकर्मण इति यास्कः । नि. १०.३८ । स्वर्गादिफलं कामयमाना ऋत्विजः सिन्धोः स्यन्दमानस्योदकस्योर्मावधि सद्धवे वसतीवर्यादिषु जलेषु सोममवीविपन् । कम्पयन्ति तत्र प्रेरयन्तीत्यर्थः । वयतेर्ण्यन्तस्य लुङि चङि णौ चङ्युपधाया ह्रस्व इति ह्रस्वः ॥ किञ्चार्कमर्चनीयं स्तोत्रं जनयन्तः कुर्वन्तस्ते प्रियां प्रियतमामिन्द्रस्य तन्वं धाम च मधोर्मदकरस्य सोमस्य धाराभिरवीवृधन् । वर्धितवन्तः ॥ वर्धतेर्लुङि चङि रूपम् ।

Gr.—The strong steers, gathering, have duly stirred themselves, and over the stream's wave the friends sent forth the song.

Engerdering the hymn, with flowing streams of meath, Indra's dear body have they caused to wax in strength.

महिषाः—या० महान्तः । मघु या० माद्यतेः (मद तृप्तौ) ।

योगी—पूजनीय (अथवा महान्) जनों ने परस्पर सङ्गत होकर सम्यक्तया गति की, कामना से युक्त उन जनों ने सिन्धु की ऊर्मि को आधार बनाकर नृत्य किया । उन्होंने मधु की धाराओं से गीत को उत्पन्न करते हुए इन्द्र की प्रिय तनु को प्रवृद्ध किया ॥२॥

महिषाः—मह् पूजायाम् ।

ऊर्मिः—ऋ गतौ । अवीविपन्—विप्—क्षेपे, कम्पने (ह्वि०) । धारा—धृङ् धारणे, धृङ् अवध्वंसने, धृङ् अवस्थाने, धृ प्रीतौ ।

अर्कः—ऋच् स्तुतौ, अर्च् पूजायाम्, दीप्तौ स्तुतौ (ह्वि), नुत्याम् (वोप०) अर्क् स्तवने । प्रिया—प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च, प्रीङ् प्रीतौ ।

दिव्यानन्दयुक्ता जना महान्तो भवन्ति, सर्वत्रैकात्मदर्शनं कुर्वन्तस्ते सम्यञ्चः (परस्परं संगताः सन्तः) तिष्ठन्ति, तेषां जीवनं संगीतनृत्यमयं प्रमोदामोदभरं च भवति, ते ह्यात्मनः (इन्द्रस्य) परिपूर्णविकासं विदधति ॥२॥

**पवित्रवन्तः परि वाचमासते**
**पितैषां प्रत्नो अभिरक्षति व्रतम् ।**
**महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे**
**धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥३॥**

सा०—पवित्रवन्तः पवित्रेण शोधकेन सामर्थ्येन युक्ताः सोमस्य रश्मयो वाचं सोमस्थितां माध्यमिकां वाचं पर्यासते । पर्युपविशन्ति । सोमोऽन्तरिक्षे तिष्ठति खलु सोमो वै राजा गन्धर्वेष्वासीत् । ऐ० ब्रा० १.२७ । इत्याम्नानात् । ततः प्रत्नः पुराण एषां रश्मीनां पितायं सोमश्च व्रतं प्रकाशनात्मकं कर्माभि रक्षति । अवितं करोति । किञ्च वरुणः सर्वस्य स्वतेजसाच्छादकः सोऽयं सोमो महो महत् समुद्रम् । अन्तरिक्षनामैतत् । महदन्तरिक्षं तै रश्मिभिस्तिरो दधे । अन्तर्हितमकरोत् । सर्वं व्याप्नोदिति यावत् । तमिमं सोमं धीराः । इदवधारणे । कर्मणि कुशलाः प्राज्ञा एवत्विजो धरुणेषु सर्वस्य धारकेषु वसतीवर्याख्येषूदकेष्वारभमारब्धुं शेकुः । शक्नुवन्ति ॥ रभेस्तुमर्थे शकि णमुल्कमुलौ पा० ३.४.१३ इति कमुल् । लित्स्वरेण मध्योदात्तः ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



Gr.—With sanctifying gear they sit around the Song : their ancient Father guards their holy work from harm.

Varuṇa hath o'erspread the mighty Sea of air. Sages had power to hold him in sustaining floods.

अस्य मन्त्रस्य यास्ककृता व्याख्या (नि० १२.३२)।

'पवित्रवन्तो रश्मिवन्तो माध्यमिका देवगणाः पर्यासते माध्यमिकां वाचं पितैषां प्रत्नः पुराणोऽभिरक्षति व्रतं कर्म महः समुद्रं वरुणस्तिरोऽन्तर्दधात्यथ धीराः शक्नुवन्ति धरणेषूदकेषु कर्मण आरभमारब्धुम्।'

अत्र दुर्गाचार्यः—

'रश्मयः पवित्रवन्तः अमुष्मादादित्यमण्डलात्प्रसृता मध्यस्थाने मरुत्प्रभृतिभिर्देवगणैः संयुज्यन्ते। तत्संयोगाद् माध्यमिका देवगणा पवित्रवन्तो भवन्ति। ते च पर्युयासते। ते च परिवार्य माध्यमिकां वाचमासते विद्युदाख्याम्। स वरुणो विद्युदाख्यो मध्यमः पिता पाता रक्षिता तेषां मरुत्प्रभृतीनां प्रत्नः पुराणः व्रतं कर्म तदधिकारयुक्तम् अभिरक्षति। कथमिति। तदुच्यते। महः महान् वरुणो मध्यमः महान्तं वा समुद्रम् आदित्यं मेघजालेन यदा तिरोदधाति दुर्दिनं कृत्वा वर्षति ओषधीषु अथ धीरा धीमन्तः धरुणेषु उदकेषु शेकुः शक्नुवन्ति कर्मणः कृष्यादेर्वैदिकस्य वा आरभं प्रारम्भम् इत्येवमभिरक्षति तेषां माध्यमिकानां व्रतम्। यदि ह्यसावावृणोति मेघैस्ततस्तेषामधिकारप्रतिलम्भो भवति।'

वरुणः—दृश्यतां वरुणसूक्तम्। पवित्रम्—या० 'पवित्रं पुनातेः—पवित्रम्=मन्त्रः, रश्मयः, आपः, सूर्यः, अग्निः, वायुः, सोमः, इन्द्रः। व्रतम् वृणोतेः (यास्कः)।' धीरः=निघ० मेधावी। या० धीमान्, प्रज्ञानवान्, ध्यानवान्। धीः—या० कर्म, प्रज्ञा।

योगी—पवित्र से युक्त वे वाक् के सब ओर स्थित होते हैं, इनका पुराण पिता व्रत की अभिरक्षा करता है, वरुण ने महान् समुद्र को अन्तर्हित किया। धीर जन ही निश्चय से सर्वधारक कार्यों में प्रारम्भ के लिए समर्थ हुए ॥३॥

व्रतम्—व्रज् + घ, जस्य तः, अथवा वृ धातोः (यास्कः)। धीरः=धी + रा + क। धीः=ध्यै (चिन्तायाम्) + क्विप्।

ये जना पवित्रहृदयवन्तो भवन्ति, तेषां वाग् अतीव शक्तिसम्पन्ना भवन्ति, ते यत् कथयन्ति तदेव भवति—'ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति' (भवभूतिः) तेषां प्रत्येकं कर्म सर्वस्य जगतः पुराणपित्रा परमात्मना रक्ष्यते। येषां हृदयं समुद्रवन्महद् भवति, तेषां सर्वाणि कार्याणि समुचितान्येव भवन्ति यतो न्यायप्रेमसामञ्जस्यं तत्र सदैव तिष्ठति। धीरा जना यत्कार्यं प्रारभन्ते तत्कर्तुं सदा शक्नुवन्ति यतस्तेषां सर्वाणि कार्याणि सर्वधारकाणि (धरुणानि) भवन्ति तथा ते स्वयं धीरा (अविचला बुद्धिमन्तश्च) भवन्ति। 'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः (कालिदासः)। न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः (भर्तृहरिः) ॥३॥

सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्
दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः
पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ॥४॥

सा०—सहस्रधारेऽव। उदकधारा यस्माद् द्रवन्ति तत्तथोक्तमन्तरिक्षम्। तस्मिन्वर्तमानास्ते सोमरश्मयोऽवावस्तात् स्थिता पृथिवी वृष्ट्या संयोजयन्तीत्यर्थः। किञ्च दिवो द्युलोकस्य नाके समुच्छ्रिते देशे वर्तमाना मधुजिह्वा मध्वग्राः सोमतेजसाग्रेभ्यो हि मधूत्पन्नं भवति। अतो मधुजिह्वाः। असश्चतः सङ्गतवर्जिताः पृथक्पृथग्दिव्यवस्थिता अस्य सोमस्य स्वभूताः स्पशः सारभूता रश्मयो भूर्णयः क्षिप्रगामिनः सन्तो न नि मिषन्ति। निमेषं न कुर्वन्ति। किन्तु पापिनः सुकृतिनश्च ज्ञातुं सर्वदा जाग्रतीत्यर्थः। अथवा राजानो दुष्टान्निवारयितुं सर्वदा जागरणं कुर्वन्ति तद्वत्। एवं ते रश्मयः पदे पदे स्थाने स्थाने सेतवः सम्बद्धाः सन्तः पाशिनः पापकृतां बाधकाः सन्ति। भवन्ति ॥

Gr.—Sweet-tongued, exhaustless, they have sent their Voices down together, in heaven's vault, that pours a thousand streams.

His wildly restless warders never close an

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


eye : in every place are found the bonds that bind man fast.

सहस्रम्—या० सहस्वत्, सहः—या० बलम् । नाकः—या० '—नाक आदित्यो भवति, नेतां रसानां नेता भासां ज्योतिषां प्रणयः । अथ द्यौः—कमिति सुखनाम, तत्प्रतिषिद्धं प्रतिषिध्येत (नाकः = नासुखम्) ।' असश्चत्—या० असज्यमानः । भूर्णिः—दुर्गः—भ्रमणशीलः । नि मिषन्ति—मिष् दर्शने (दुर्गः नि० ३.१६) ।

योगी—मधुमय जिह्वा से सम्पन्न, अद्वितीय एवं कभी परिश्रान्ति का अनुभव न करने वाले वे [धीर जन] प्रकाशमय लोक के सुखमय (असुखरहित) प्रदेश में सहस्रों प्रकाश तथा सुख की धाराओं से युक्त स्थान पर प्रदीप्त हुए और दिव्यसंगीतनिमग्न हुए । दिव्यानन्द के गुप्तचर कभी पलक नहीं झपाते—वे गतिशील हैं, उनके हाथ में [दुष्टों को] बाँधने वाले पाश हैं, वे (पाशी) पद-पद पर विद्यमान हैं ।।४।।

समस्वरन्—सम्+स्वृ (शब्दोपतापयोः) । सेतुः = सि(षिञ् बन्धने) + तुन् । स्पशः । स्पश् + क्विप्, प्रथमा-बहुवचने; स्पश् ग्रहणसंश्लेषणयोः ।

नि मिषन्ति—मिष् सेचने, स्पर्धायाम्, निमीलोन्मीलनयोः (ह्विट ०) ।

धीरा जनाः स्वचरितेनाद्वितीया भवन्ति, ते कदाऽपि परिश्रान्ता न भवन्ति, तेषां जिह्वायां मधु तिष्ठति—'जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्' (अथर्व० १.३४.२) । ते सदा प्रकाशमये वातावरणे तिष्ठन्ति, सदाऽसुखहीनास्तिष्ठन्ति तथाऽऽनन्दस्य सहस्रधाराः (सहस्राणि प्रबलाश्च धाराः) तान् परितो वहन्ति ते च दिव्यानन्दसङ्गीतलीना नृत्यन्तीव । आनन्दः सुकृतां जनानामेव कृते विद्यते, दुष्कृतस्तु सदैव दुःखिनस्तिष्ठन्ति । विश्वे परमात्मनो नियमा अखण्डनीयाः सन्ति, नियमव्यतिक्रमी जनो दुःखभागेव भवति ।।४।।

पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्
ऋचा शोचन्त सन्दहन्तो अव्रतान् ।
इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया
त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ।।५।।

सा०—पितुर्मातुर्द्यावापृथिव्योः । [illegible] नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् । ऋ० १.१६४.३३। इत्यादिषु द्यावापृथिव्योर्मातापितृत्वाम्नानात् । द्यावापृथिवीभ्यां ये सोमरश्मयोऽध्या समस्वरन् अधिकं प्रादुर्भूता अभवन् त ऋचर्त्विग्भिः क्रियमाणया स्तुत्या शोचन्तो दीप्यमाना अव्रतान् कर्मरहितान्यजमानान् सन्दहन्तः सम्यग्विनाशयन्तस्ते रश्मय इन्द्रद्विष्टामिन्द्राय द्वेषकारिणीम् ।: क्ते च । पा० ६.२.४५ । इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरः ।। इन्द्रेण द्विष्टां वा । असिक्नीम् । रात्रिनामैतत् । रात्रिवत्कृष्णरूपां त्वचम् । राक्षसमित्यर्थः । मायया कर्मणा प्रज्ञया वा भूमनो विस्तृताद्भूलोकाद्दिवस्परि द्युलोकाच्चाप धमन्ति । अपगतं कुर्वन्ति । अपघ्नन्तीत्यर्थः ।।

Gr.—O'er Sire and Mother they have roared in unison, bright with the verse of praise, burning up riteless men,

Blowing away with supernatural might from earth and from the heavens the swarthy skin which Indra hates.

पिता—या० पाता वा पालयिता वा । माता—या० निर्मात्री । ऋक्—या० अर्चनी । असिक्नी—या० अशुक्लाऽसिता । सितमिति वर्णनाम, तत्प्रतिषेधोऽसितम् ।

योगी—पिता और माता को आधार बनाकर ऋक् से दीप्त होते हुए, व्रतहीनों को संदग्ध करते हुए जिन [धीर जनों] ने सङ्गत होकर दिव्य सङ्गीत का वादन किया, वे इन्द्रद्विष्ट (इन्द्र से द्वेष करने वाली या इन्द्र से द्विष्ट) असितवर्णा त्वचा को अपनी प्रज्ञा व कर्म से नष्ट करते हैं ।।५।।

इन्द्रद्विष्टाम्—द्विष् अप्रीतौ । धमन्ति—धम् शब्दाग्निसंयोगयोः, निघ० गतिकर्मा, वधकर्मा, अर्चतिकर्मा ।

येषां जनानां मातापितरौ सज्ञानौ भवतः, ते सरलतया प्रकर्षं प्राप्नुवन्ति । यौ च मातापितरौ सुतोन्नतिमिच्छतस्ताभ्यां स्वचरित्रनिर्माणं कर्त्तव्यम् । माता निर्मात्री भवति । पिता च सन्ततेः पूर्णविकासं सम्पादयति । पितृविषये कालिदासः—प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि । स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ।। (रघु०)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



एतादृशा अविगतसुयोग्यमातापितरो जना दिव्यानन्द-प्रदीप्ता भवन्ति सज्ज्ञानेन (ऋचा) दीप्तिमन्तो भवन्ति, एषां संमुखं व्रतहीना जनाः स्थातुं न पारयन्ति । किंचिन्महालक्ष्यं निर्धार्य यत्कर्म स्वीक्रियते तन्मनुष्यस्य व्रतं भवति । लक्ष्यहीना जना धीरान् दृष्ट्वा दन्दह्यन्ते । मनुष्यस्य दिव्य आत्मा (इन्द्रः) तमोगुणं पापमयकर्मजातं वा द्वेष्टि, तस्मै शुभ्रस्वभाव एव रोचते, भौतिकजगति (भूमनः परि) तथा ह्यान्तरिकजगति (दिवः परि) ते समुज्ज्वल-निर्दोषनिष्पापवातावरणमेवेच्छन्ति ॥५॥

**प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वर-**
**ञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः ।**
**अपानक्षासो बधिरा अहासत**
**ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥६॥**

सा०—श्लोकयन्त्रासः । श्लोकाः स्तुतयः । स्तुतिनियमना रभसस्य मन्तवो वेगमभिमन्यमानाः एतादृशा ये सोमरश्मयः प्रत्नात्पुराणान्मानादन्तरिक्षादध्या समस्वरन् सह प्रादुर्भूता अभवन् तान्दृश्मीननक्षासश्चक्षुर्वर्जिताः साधु पदार्थानामद्रष्टारो नरा बधिरा देवतास्तुतिश्रवणवर्जिताः पापकृतो नरश्चाप्यहासत । तान्परित्यजन्ति । दक्षिनः श्रवणवन्तो मेधाविनस्तु न परिजहति किन्तु स्तुवन्ति । तदेवाह । ऋतस्य सत्यस्य पन्थां मार्गभूतमेषां गणं दुष्कृतः पापकृतो नरा न तरन्ति । नोत्तारयन्ति । सुकृतस्तु तरन्तीत्यभिप्रायः ॥

Gr. These which, as guides of song and counsellors of speed, were manifested from their ancient dwelling place,—

From these the eyeless and the deaf have turned aside: the wicked travel not the pathway of Law.

बधिरः—वा० बद्धयोः । श्लोकः—वा० लुगोतेः ।

योगी—गीत का नियमन करने वाले तथा वेग को अङ्गीकार करने वाले जिन [मेरे जनों] ने अपने प्राचीन निवास-स्थान से संगीत के स्वरों को गुंजित किया । जिन की आंखें नहीं थीं और जो बहरे थे वे उन्हें छोड़ कर चले गए; दुष्कर्म करने वाले जन ऋत के मार्ग का तरण नहीं करते (कर पाते) ॥६॥

श्लोकयन्त्रासः—श्लोक् संघाते; संघाते वर्जने सर्जने (वोपदेवः) । श्लोकः—निघ० वाङ्नाम । यन्त्रम्—यन् + अच्, यन् (यत्रि) संकोचने । अहासत—हा—त्यागे ।

दिव्यानन्दलीना धीरजनाः काव्यलीलासंगीतसिम्फा-स्तिष्ठन्ति, तेषां वेगोऽप्रतिमः, तेषां हृदयगृहं प्राचीन-परम्परासंस्कारादिसंपन्नम् । एतादृशो मूढा जनाः संसारे बहवः सन्ति ये पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति शृण्वन्तोऽपि न शृण्वन्ति, वस्तुतस्तेषां सूक्ष्मानुभूतिरेव नास्ति, सदैव स्थूलभोगपरायणास्ते न जानन्ति दिव्याध्यात्मिकानन्दरसम् । स्थूलभोगेषु लीनास्ते बधिराः मूढबुद्धयश्च सिद्धयै दुष्कर्मपरायणा भवन्ति, पदे पदे च नियमभङ्गं कुर्वन्ति, तथा च जन्मनि जन्मनि दिव्यानन्यविरहितास्तिष्ठन्ति महादुःखभाजश्च भवन्ति ॥६॥

**सहस्रधारे वितते पवित्र आ**
**वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।**
**रुद्रास एषामिषिरासो अह्रुतः**
**स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥७॥**

सा०—कवयः क्रान्तकर्माणः अत एव मनीषिणः प्राज्ञा ऋत्विजः सहस्रधारे अनेकधारोपेते वितते कर्मणि विस्तृते पवित्रे शुद्धगुणादरे सोमे वर्तमानां वाचं माध्यमिकाम् । सोमः तनू विस्तारवत्प्रतिसन्धयविच्छेदान्तरिक्षेऽतिष्ठन् सोमो वै राजा गन्धर्वेष्वासीदिति श्रवणात् तत्र वर्तमानं सोमं देवा गोपया वाचा लोकवत्सः । इयं सोमे वाक्तिष्ठतीति शक्यते वक्तुम् । तस्मात्सोमे स्थितां माध्यमिकां वाचमा पुनन्ति । संस्कुर्वन्ति । स्तुवन्तीति यावत् । उक्तगुणा मरुतां गायत्रं माध्यमिकां वाचं स्तुवन्ति तेषां रुद्रासो रुद्रपुत्रा मध्यमवाचः पुत्रा अतः स्पशो वाचां वक्तिनो भवन्ति । कीदृशाः । इषिरा गमनशीला अह्रुतः स्तोतृणामह्वयारः । यद्वा । ह्रुङ् कौटिल्ये क्विबौणादिकः ॥ परैरहिंस्याः । स्वञ्चः शोभनाञ्चनाः अत एव सुदृशः सुदर्शना नृचक्षसो नृणां कर्मवेत्तृणां द्रष्टारः ॥

Gr. What time the filter with a thousand streams is stretched the thoughtful sages purify their song therein.

Bright-coloured are their spies, vigorous, void of guile, excellent, fair to see, beholders of mankind.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



कवयः—या० कविः क्रान्तदर्शनो भवति कवतेर्वा। इषिरम्=ईषणम्, एषणम्, अर्षणम्।

योगी—मनीषी क्रान्तदर्शी धीरजन सहस्रों धाराओं से युक्त, विस्तृत पवित्र (छाननी) में वाणी को शुद्ध करते हैं। इन जनों के गुप्तचर रुद्र के पुत्र हैं, गतिशील हैं (अथवा तीव्र इच्छा से युक्त हैं), जिघांसा से रहित हैं, शोभन गति वाले हैं, सम्यक् दृष्टि वाले हैं तथा लोगों को [भली-भांति] देखने वाले हैं ॥७॥

इषिरासः—इष्+किरच्। इष्—इच्छायाम्, गतौ, आभीक्ष्ण्ये, नि० गतिकर्मा स्वञ्चः—अञ्च् गतिपूजनयोः। अदुहः—दुह्—जिघांसायाम्(जिघांसा इहानिष्टाचरणम्—दुर्गादासः)

ये मनीषिणः क्रान्तदर्शिनो धीरजना भवन्ति ते स्वकीयां वाणीं सदैव पुनन्ति, अस्य कृते ते विविधार्जनं हृदयशुद्धिं च विदधति। एतादृशानां जनानां दृष्टयः सूक्ष्मा भवन्ति, यतस्तत्र परमात्मनः (रुद्रस्य) निवासो भवति। इमे जना जानन्ति यदस्मिन् संसारे को नरः कीदृशो यतो ज्ञानेन हृदयशुद्धया च तेषां दृष्टिर्निर्भ्रान्ता भवति। कश्चिदपि दुष्टो जन एतादृशान् धीरान् स्वकपटजालबद्धान् कर्तुं न पारयति यतस्ते क्रान्तदर्शिनः स्वञ्चः सुदृशो 'नृचक्षस'श्च सन्ति, ते दुष्टेभ्यः सावधानास्तिष्ठन्ति, परन्तु स्वयमदुहः सन्ति—सर्वथा हिंसाभावनाविरहिताः सन्ति। तेषामेतादृशस्य पूर्णजीवनस्य कारणमिदं यत्परमात्मा स्वयं तेषां हृदयमन्दिरे तिष्ठति; एतादृशानां धीराणां हृदयमेव परमात्मनः प्रियतमं गृहम् ॥७॥

**ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतु-**
**स्त्री ष पवित्रा हृद्यन्तरा दधे।**
**विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्य-**
**त्यवा जुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥८॥**

सा०—ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य गोपा गोपायिता अत एव सुक्रतुः शोभनकर्मा सोमो न दभाय दम्भाय स्तम्भनाय न भवति। परैर्दम्भयितुं न शक्यत इत्यर्थः। किञ्च सोमस्त्री। शेश्छन्दसि बहुलमिति लुक्॥ त्रीणि पवित्राण्यग्निवायुसूर्यात्मकानि त्रीणि पवित्राणि हृद्यन्तर्हृदयस्यान्तरा दधे। आदधाति। स्वस्मिन् सङ्क्रामयतीत्यर्थः। अपि च विद्वान् सर्वं जानानः स सोमो विश्वा भुवना सर्वाणि भुवनान्यभि पश्यति। ततः कर्ते॥ करोतेरौणादिकस्तप्रत्ययः॥ कर्मण्यजुष्टानप्रियान् अत एवाव्रतानयजमानानव विध्यति। अधाङ्मुखान् कृत्वा ताडयति। हिनस्तीति यावत्॥

Gr. Guardian of Law, most wise, he may not be deceived: there purifiers hath he set within his heart.

With wisdom he beholds all creatures that exist: he drives into the pit the hated riteless ones.

योगी—ऋत का रक्षक, अत्यन्त प्रज्ञाशाली धीर जन ठगे जाने के लिए नहीं है, वह हृदय के अन्दर तीन पवित्रों (छाननियों) को सम्यक् प्रकार से धारण करता है। सब कुछ जानने वाला (विद्वान्) वह सब प्राणियों की गतिविधियों को ध्यान से देखता है। वह व्रतरहित अप्रिय जनों को गर्त में ढकेलकर ताड़ित करता है ॥८॥

दभाय—दम्भ् दम्भे; संघाते, क्षेपे (नन्दी), नि० दम्भोति गतिकर्मा। अजुष्टान्—जुष् (जुषी) प्रीतिसेवनयोः, परितर्पणे, नि० जुषते कान्तिकर्मा।

विध्यति—व्यध् ताडने।

धीरो जनो दिव्यानन्दलीनो भवति, परमस्य तात्पर्यमिदं नास्ति यदसौ सांसारिकदृष्ट्या मूर्खो भवति। तस्य बुद्धेस्त्वेतादृशो महान् विकासो भवति यत् कश्चिदपि तं स्वकपटजालग्रस्तं कर्तुं न पारयति, महतीं हि प्रज्ञां स धारयति। तस्य हृदये त्रीणि पवित्राणि(शोधनयन्त्राणि)सन्ति। असौ त्रयाणां वेदानां पूर्णज्ञानमात्मसात्करोति तथाऽग्निवायुसूर्याणां त्रयाणामपि स्वरूपमवगच्छति—अग्निना तस्य ज्ञानविकासः, वायुना तस्य कर्मप्रसारः, सूर्येण च तस्यात्मप्रकाशो भवति। असौ सदा सर्वभूतहिते रतस्तिष्ठति, दिव्यानन्दलोके च निवसति, परन्तु ये दुष्टा जनाः सन्ति तेषां कपटव्यवहारान् अपि पूर्णतयाऽवगच्छति। एतादृशः समर्थो जनस्तेभ्यो दुष्टेभ्यो दण्डव्यवस्थामपि करोति यतः स दण्डो लोककल्याणाय तेषां च दुष्टानामपि कल्याणाय भवति—'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे' (गीता) ॥८॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



**ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ**
**जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया ।**
**धीराश्चित्तत्समिनक्षन्त आशता-**
**त्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥९॥**

सा०—ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य तन्तुस्तनिता पवित्रेऽविवालमये दशापवित्रे विततो विस्तृतः । यद्वा । पवित्रेऽन्तरिक्षे विस्तृतः सोमो वरुणस्य जिह्वाया अग्रे मायया कर्मणा आ । आस्थितः । वरुणजिह्वाग्र आपस्तिष्ठन्ति । तासु सोमो वसतीति वसतीवर्याद्युदकेषु स्थित इत्यर्थः । ततो धीराश्चित् कर्मणि प्राज्ञा एव तद्वरुणजिह्वाग्रस्थानं समिनक्षन्तः । इनक्षतिर्गतिकर्मा । संव्याप्नुवन्तः सन्त आशत । स्तुतिभिर्हविर्भिर्वा प्राप्नुवन् । यः पुनः कर्तम् ॥ कालाध्वनोरिति द्वितीया ॥ कर्मण्यप्रभुः समर्थो न भवति सोऽयमत्रास्मिन्नेव लोकेऽव पदाति । अवस्तान्नरके पतति । नोपरि गच्छति ॥ पद गतौ । लेट्याडागम ॥ तस्मात्सर्वैरग्निष्टोमादिकर्म कर्तव्यमित्येषोऽर्थोऽभिहितो भवति ॥

Gr.—The thread of sacrifice spun in the cleansing sieve, on Varuna's tongue-tip, by supernatural might,—

This, by their striving, have the prudent ones attained : he who hath not this power shall sink into the pit.

योगी—ऋत का सूत्र पवित्र (शोधनयन्त्र, छाननी) में वरुण की माया से [धीर जनों की] जिह्वा के अग्रभाग में वितत है । धीर जन उस तन्तु को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हुए प्राप्त करते रहते हैं; अशक्त जन यहाँ गर्त में ही गिरता है ॥९॥

इनक्षन्तः—इनक्ष्—M. W (Said to be desiderative of नश्) to endeavour to reach, strive to obtain—मो० वि०(एवं कथ्यते यदिदं रूपं नश् धातोः सनि) किंचिल्लक्ष्यं प्राप्तुं प्रयासः, प्राप्तुमुद्यमः ।

इमे दिव्यानन्दमयाः सोमोपासका धीरा हृदये वरुणं (दृश्यतां वरुणसूक्तम्) धारयन्ति, अतो महाप्रज्ञावन्तः सबलकर्मवन्तश्च भवन्ति, तथा तेषां जिह्वाया अग्रे विश्वस्य सर्वविधनियमव्यवस्थाविधानं तिष्ठति—कस्यांचित् परिस्थित्यां किं कर्तुमुचितम्, सर्वं ते सम्यग् जानन्ति । ते यत् किंचिदपि प्राप्तुमिच्छन्ति तस्य कृते प्रयत्नशीला भवन्ति । अधीरा जनाः शक्तिहीना (अप्रभवः) भवन्ति विनाशस्य च गर्ते पतन्ति ॥९॥

———

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# ज्ञानम्

अस्मिन् सूक्ते ज्ञानमहिमा वर्णितः। तत्त्वज्ञानस्याध्यात्मिकज्ञानस्य वा देवो ब्रह्मणस्पतिः। एतदतिरिक्तं सर्वविधज्ञानस्य देवो बृहस्पतिः। बृहस्पतिब्रह्मणस्पतिसूक्तेषु सर्वत्र ज्ञानस्य निरतिशयो महिमा वर्णितः। बृहस्पतिना सह त्रिविधा वाणी सम्बद्धा—वैखरी मध्यमा पश्यन्ती च; ब्रह्मणस्पतिना सह तुरीया परा वाणी सम्बद्धा। बृहस्पतिना सह रवस्य (शब्दस्य) सम्बन्धः, स हि पुराणेषु देवानां गुरुः।

एतदतिरिक्तं वाक्सूक्तेषु सरस्वतीसूक्तेषु चापि ज्ञानमहिमा वर्णितः।

### ब्रह्मणस्पतिः

ब्रह्मणस्पतेः कतिपयानि विशेषणानि, मन्त्रा मन्त्रखण्डा वा—

सहसस्पुत्रः, सुवीर्यः, 'गणानां गणपतिः', 'कवीनां कविः', ज्येष्ठराजः, सत्यः, ऋणयाः, कृतब्रह्मा 'सिन्धुर्न क्षोदः',

मन्त्रः

'प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्'

ऋ० १.४०.५

नेता

'स संनयः स विनयः पुरोहितः'

ऋ० २.२४.९

आध्यात्मिकज्ञानम्

'पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते
प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते
शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत॥'

ऋ० ९.८३.१

सविता ब्रह्मणस्पतिश्च

'येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन्।
तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन॥'

अथर्व० १९.२४.१

### बृहस्पतिः

कतिपयविशेषणानि—

होता, 'जगृम्भा...श्लोकम्', 'श्लोकं यंसत् सवितेव', 'ब्रह्मद्विषस्तपनः', पथिकृत्, विचक्षणः, अधिवक्ता, त्रिषधस्थः, मन्द्रजिह्वः, सप्तास्यः, सप्तरश्मिः, उस्रियाः, हव्यसूदः, विश्ववारः, स्वावेशः, ऋष्वः, दुर्गहा, यशस्वी.....

मन्त्रा मन्त्रखण्डाश्च

'श्लोकं यंसत् सवितेव प्र बाहू'

ऋ० १.१९०.३

अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्याम्

ऋ० १.१९०.४

बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण

ऋ० ४.५२.१

बृहस्पतिः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत्

ऋ० ४.५२.५

आ रोदसी वृषभो रोरवीति

ऋ० ६.७३.१

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न
ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत्।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्यो-
ऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन्॥

ऋ० १०.६७.१

बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्

ऋ० १०.६७.४

सिंहमिह नानदतं सधस्थे

ऋ० १०.६७.९

बृहस्पते सवितर्बोधयैनम्

यजुः० २७.८

ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः

अथर्व० ३.२७.६

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्

अथर्व० ४.१.१

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यात्

अथर्व० ४.१.३

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः
सरस्वती मन्युमन्तं जगाम।
विश्वैस्तद्देवैः सह संविदानः
सं दधातु बृहस्पतिः॥

अथर्व० १९.४०.१

सरस्वती

'चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती'—ऋ० १.३.११

इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व

ऋ० २.४१.१८

धीनामवित्र्यवतु ऋ० ६.६१.४

यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा।
श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा॥

अथर्व० ५.७.५

वागाम्भृणी

ऋ० १०.१२५ सूक्ते वागाम्भृणी स्वकीयं रूपं महिमानं च स्वयं स्फुटीकरोति। तत्र साऽऽत्मानमधिकृत्य कथयति—

'अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्'

ज्ञानमहिमा

वेदेषु स्थाने स्थाने ज्ञानमहिमा वर्णितः। वेदशब्दस्यार्थ एव ज्ञानमिति। विश्रुते गायत्रीमन्त्रे बुद्धिप्रेरणायाः कृते प्रार्थना (धियो यो नः प्र चोदयात्)।

ज्ञानविषये निरुक्तम्

'विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम
गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि॥'

नि० २.४

यथा जानपदीषु विद्यातः पुरुषविशेषो भवति पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति।

नि० १.१६

अथापि ज्ञानप्रशंसा भवत्यज्ञाननिन्दा च।

नि० २.१७

अस्य (ऋ० १०.७१) सूक्तस्य ऋषिः

अस्य सूक्तस्य ऋषिर्बृहस्पतिराङ्गिरसः। आङ्गिरसः—दृश्यतामिन्द्रसूक्ते। बृहस्पतिः—या० वक्ता पाता पालयिता वा।

सा०—बृहस्पत इत्येकादशर्चं तृतीयं सूक्तम्। आङ्गिरसस्य बृहस्पतेरार्षं नवमी जगती शिष्टा दश त्रिष्टुभः। अनेन सूक्तेनर्षिः परमपुरुषार्थसाधनं परब्रह्मज्ञानं स्तुतवान्। अतस्तद्देवत्यमिदम्। उक्तं हि बृहद्देवतायाम्। सुज्योतिः परमं ब्रह्म यद्योगात्समुपाप्नुते। तज्ज्ञानमभितुष्टाव सूक्तेनाथ बृहस्पतिः। बृ० ७. १०८४। इति। अनुक्रान्तं च। बृहस्पते बृहस्पतिर्ज्ञानं तुष्टाव नवमी जगती॥ सूक्तविनियोगो गतः॥ देवसुवां हविःषु बृहस्पतिर्वाचस्पतिरित्यस्य प्रथमानुवाक्या। सूत्रितं च। बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिः। आ० ४. ११। इति॥

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं
यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्
प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥१॥

सा०— बृहस्पतिरनेन सूक्तेन विदितवेदार्थविज्ञानान्दृष्ट्वा स्मयमानः स्वात्मानं सम्बोध्याह। हे बृहस्पतेऽन्तरात्मन् प्रथममुत्पत्त्यनन्तरमितरवाक्प्रवृत्तेरग्रतोवेद नामधेयं नाम दधानाः पदार्थेषु निदधाना वाचो यत्तैरत प्रेरितवन्तः तद्वाचोऽग्रं भवति। यत्तत् वाक्येष्वादिमं वाक्यं पूर्वमभिधाय पश्चादन्या वाचो वदिष्यन्ति खलु तद्वाचोऽग्रम्। अस्यां दशायामवस्थितान्वालान्वक्ष्यमाणान्। तदेषामेषां श्रेष्ठं प्रशस्यतमं यच्चारिष्टं पापरहितं वेदार्थज्ञानमासीत् एषां तज्ज्ञानं गुहा गुहायां निहितं गोप्यं तदेषां॥ मकारलोपश्छान्दसः। प्रेणा विर्भवति। वेदव्याख्याकाले सरस्वती स्वार्थमेभ्यः प्रकाशयतीत्यर्थः। एवं विस्मये बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रमित्यादिकमारण्यकमनुसन्धेयम्। ऐ० आ० १. ३. ६.॥

Gr. —When, men, Brihaspati, giving names to objects, sent out Vak's first and earliest utterances,

All that was excellent and spotless, treasured within them, was disclosed through their affection.

प्रथमः—या० प्रथम इति मुख्यनाम। प्रथमो भवति।

योगी—हे बृहस्पति, जब, [विशिष्ट] नामधेय (नाम, यश)को धारण करने वाले[मनीषियों] ने वाणी के मुख्य

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


तथा उत्कृष्ट रूप को प्रेरित किया, तब उनके पास जो भी श्रेष्ठ तथा निर्दोष [ज्ञान] था जो उनके अंदर निगूढ़ था, उसे प्रेम से (सर्वजनकल्याणार्थ) प्रकट किया ॥१॥

अरिप्रम्—रिप्रः—मलिनता, अपवित्रता; अरिप्रम्=मलिनतारहितम्—रिप् गतौ; लेपे (ह्वि०)।

प्रेणा=प्रेम्णा-प्रेमन्—प्रियस्य भावः प्रिय+इमनिच् प्रादेशः, एकाच्कत्वान्न टिलोप.—वाचस्पत्यकोशः।

प्रियः—प्री+क—प्रीङ् प्रीतौ, प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च।

गुहा=गुह+टाप्—गुह् संवरणे; हिंसागत्योः (काशकृत्स्नः), आविः—(अ०) आ+अव्+इस्—अव् रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिङ्गनहिंसादानभागवृद्धिषु।

मनीषिणो ज्ञानिनः सर्वजनहिताय ज्ञानस्य प्रकाशं ज्ञानप्रसारं च कुर्वन्ति—'सर्वेषामेष दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते (मनु०)। एषां मनीषिणां समीपे ज्ञानलाभाय गन्तव्यम्—'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' (उपनिषद्)। ज्ञानं विना न गतिः—'कुरुते गङ्गासागरगमनं, व्रतपरिपालनमथवा दानम्। ज्ञानविहीनः, सर्वमतेन, मुक्तिं भजति न जन्मशतेन ॥ (शङ्कराचार्यः)। अस्यैव ज्ञानस्य लाभाय नचिकेताः (शिष्यः—न+चिकेताः=अज्ञः) यमस्य (आचार्यस्य) समीपं गतः। ये मनुष्या वस्तुतो मनुष्या भवन्ति—मनुष्यनामधेयं यथार्थं दधति, ते प्रेम्णा सर्वजनहिताय श्रेष्ठं ज्ञानं जिज्ञासुभ्यः शिष्येभ्यो ददति ॥१॥

**सक्तुमिव तितउना पुनन्तो**
**यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।**
**अत्रा सखायः सख्यानि जानते**
**भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥२॥**

सा०—तितउना परिपूयतेऽनेनेति। यद्वा तता विस्तृता भृष्टयवा अत्रेति तितउः ॥ तनोतेर्डउः सन्वच्च। उ० ५. ५२। इति डउप्रत्ययः। सन्वद्भावादित्वम् ॥ उक्तनिर्वचनेन सूर्पेण सक्तुमिव तथा कश्चित्सक्तुं दुर्धावं पुनाति तद्वत् प्रकृतितः प्रत्ययतश्च शब्दानुत्पुनन्तो धीरा धीमन्तो विद्वांसो यत्र यस्मिन्काले विद्वत्सङ्घे वा मनसा प्रज्ञायुक्तेन वाचमक्रत अकृषत कुर्वन्ति ॥ करोतेर्लुङि रूपम् ॥ अत्र तत्र काले सखायः समानख्यानाः शास्त्रादिविषयज्ञानास्ते सख्यानि तेषु भवानि ज्ञानानि जानते। जानन्ति। यद्वा सखायो वाचा बद्धसख्यास्ते तस्यास्तस्या वाचः सख्यानि जानन्ति। वाक्ययुक्तानभ्युदयाँल्लभन्त इत्यर्थः। तस्मादेषां वाचि भद्रा कल्याणी निहिता लक्ष्मीर्भवति। अधिः सप्तम्यर्थद्योतकः। अर्थज्ञानं वाचि पश्याम इत्यर्थः। तितउ परिपवनं भवति ततवद्वा तुन्नवद्वा तिलमात्रतुन्नमिति वा सक्तुमिव तितउनेत्यादि निरुक्तमनुसन्धेयम्। नि ४. १० ॥

Gr.— Where, like men cleansing corn-flour in a cribble, the wise in spirit have created language,

Friends see and recognize the marks of friendship: their speech retains the blessed sign imprinted.

अत्र यास्कः (नि० ४.१०)—

'सक्तुमिव परिपवनेन पुनन्तः सक्तुः सचतेर्दुर्धावो भवति कसतेर्वा स्याद् विपरीतस्य विकसितो भवति। यत्र धीरा मनसा वाचमकृषत प्रज्ञानम्। धीराः प्रज्ञानवन्तो ध्यानवन्तः। तत्र सखायः सख्यानि संजानते। भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचीति भद्रं भंगेन व्याख्यातं भजनीयं भूतानामभिद्रवणीयं भवद्रमयतीति वा भाजनवद्वा। लक्ष्मीर्लाभाद्वा लक्षणाद्वा लप्स्यमानाद्वा लाञ्छनाद्वा लषतेर्वा स्यात् प्रेप्साकर्मणो लग्यतेर्वा स्यादाश्लेषकर्मणो लज्जतेर्वा स्यादश्लाघाकर्मणः।

'तितउ परिपवनं भवति ततवद्वा तुन्नवद्वा तिलमात्रतुन्नमिति वा।' (दुर्गः—ततेन चर्मणा नद्धं तितउ। तुन्नैर्वा छिद्रैस्तद्वत् तितउ। तिलमात्राणि वा तुन्नानि तस्मिन्निति तितउ। यथासंभवमेताः शब्दसमाधयः) नि० ४.९।

मन्त्रव्याख्यायां दुर्गः—

'सक्तुः सचतेः' स हि सूक्ष्मत्वात् सचति संश्लिष्यत्यङ्गे। ततो 'दुर्धावो भवति' इत्युपपत्तिः। दुःखं धाव्यते प्रक्षाल्यत इत्यर्थः।.....यथा सक्तुं कश्चित् परिपवनेन पुनात्येवं मनसा परिपवनस्थानीयेन परिपूय विनिश्चित्य शब्दार्थं न्याययुक्तां वाचं यत्र यस्मिन् समाजे यज्ञे वा धीराः धीमन्तो मेधाविनः अक्रत अकृषत। कुर्वन्तीत्यर्थः। अत्र केचिदकृषत प्रज्ञानमित्यभिधीयते प्रज्ञानार्थत्वाद्वाचः। तत्र किमिति। तत्र सखायः समानख्यानाः समानख्यानानामेव समानेषु शास्त्रेषु कृतश्रमाणाम्। तद्यथा। वैयाकरणानां

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



विदितवेदार्थमाह । त्वस्मा एकस्मा अपि तन्वमात्मीयं शरीरं वि सस्रे । स्वयं वाग्विविधं गमयति । आत्मानं विवृणुते प्रकाशयतीत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः । जायेव यथोशती सम्भोगं कामयमाना सुवासाः शोभनवसना जाया पत्ये भर्त्रे ऋतुकाले सम्भोगार्थं स्वयमात्मानं विवृणुते । तद्वदेनां पश्यति शृणोति चेति विदितवेदार्थस्य प्रशंसा । अप्येकः पश्यन्न पश्यति वाचमित्यादि निरुक्तमत्र द्रष्टव्यम् । नि० १.१९॥

Gr.—One man hath ne'er seen Vāk, and yet he seeth : one man hath hearing but hath never heard her.

But to another hath she shown her beauty as a fond well-dressed woman to her husband.

अस्य मन्त्रस्य दुर्गकृतव्याख्यायाः केचिदंशाः—'बहूनामपि समानपृष्ठोदरपाणिपादानां समानमेवाध्ययनमधीयानानामेकः कश्चित् पश्यन्नपि वाचं मनसा स्वभ्यस्ताध्ययनोऽपि तीक्ष्णविधः सन्न पश्यत्यर्थानभिज्ञत्वात् । स हि तां सम्यक् पश्यति यस्तस्या अर्थं विजानाति ।' 'यदा सुवासा भवति निर्णिक्तवासा भवति निर्णिक्तवासा नीरजस्का 'ऋतुकालेषु' तदा ह्यतितरां स्त्री पुरुषं प्रार्थयते ।'

योगी—एक व्यक्ति वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता, और एक (अन्य) व्यक्ति इसको (वाणी को) सुनता हुआ भी नहीं सुनता । तथा यह (वाणी) एक (किसी तीसरे) व्यक्ति के लिए अपने शरीर को विवृत कर देती है, जिस प्रकार कामयमाना शोभनवसना पत्नी पति के लिए [अपने शरीर को विवृत कर देती है] । ४॥

विसस्रे—विपूर्वकः सृधातुः (सृ गतौ) । जाया = जन् + यक् + टाप् ।

उशती—वश्—कान्तौ (कान्तिः = इच्छा—क्षीर०), वश् गतौ; निघ० वष्टि कान्तिकर्मा ।

वाचः (वेदानां, साहित्यस्य) शब्दार्थमात्रेण न कश्चिल्लाभः । अन्तर्निहितनिगूढार्थो द्रष्टव्यः ।

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहु-
र्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अधेन्वा चरति माययैष
वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥५॥

सा०—त्वमुतैकमपि सख्ये [illegible]

सा सखिकर्मत्वात्सख्यमित्युच्यते । सा च वाचा क्रियते । अतो वाक्सम्बन्धाद्वाक्यसख्ये स्थिरपीतं मधु यस्य हृदये स्थितं भवति । यद्वा । स्थिरपीतं स्थिरप्राप्तिमाहुः । यद्वा । तस्मिञ्ज्ञातार्थमाहुः । लोके यथा ज्ञातार्थं पुरुषं पीतार्थमिति वदन्ति । किञ्चैनं विज्ञातार्थं पुरुषं वाजिनेषु । वागिनेश्वरा येषां ते वाजिना अर्था वाच आयत्ताः खलु । वाग्ज्ञेयेष्वर्थेषु नापि हिन्वन्ति । अपिशब्दोऽन्वर्थे । केचिदपि नानुगच्छन्ति । अयमेवातिशयेन विद्वानित्यर्थः । यद्वा । वाजिनेषु सारभूतेषु निरूपणीयेष्वर्थेष्वेनं न हिन्वन्ति । न बहिःकुर्वन्ति । एनं पुरस्कृत्यैव सर्वं वेदार्थं विचारयन्तीत्यर्थः । इत्यर्थज्ञः प्रशस्तः । अनन्तरमुत्तरार्धेन केवलपाठको निन्द्यते । एषोऽविज्ञातार्थः पुरुषोऽधेन्वा धेनुत्वविवर्जितया कामानामदोग्ध्र्या देवमनुष्यस्थानेषु वाक्प्रतिरूपया मायया चरति । किं कुर्वन् । अफलामपुष्पाम् । वाचोऽर्थः पुष्पफलम् । अर्थवर्जिताम् । यद्वा वाचोऽर्थो याज्ञदैवते । यज्ञे भवं ज्ञानं याज्ञं देवतासु भवं ज्ञानं दैवतम् । तद्वर्जितां कर्मादिविषयज्ञानवर्जितां वाचं शुश्रुवाञ्श्रुतवान् । केवलं पाठमात्रेणैव श्रुतवान् स चरति । यथा वन्ध्या पीना गौः किं द्रोणमात्रं क्षीरं दोग्धीति मायामुत्पादयन्ती चरति यथा वन्ध्यो वृक्षोऽकाले पल्लवादियुक्तः सन्पुष्प्यति फलतीति भ्रान्तिमुत्पादयंस्तिष्ठति तथा पाठं प्रब्रुवाणश्चरतीत्यर्थः । अप्येकं वाक्सख्ये स्थिरपीतमित्यादि निरुक्तमनुसन्धेयम् । नि० १.२० ॥

One man they call a laggard, dull in friendship : they never urge him on to deeds of valour.

He wanders on in profitless illusion : the voice he heard yields neither fruit nor blossom.

अस्य मन्त्रस्य यास्ककृतव्याख्यायाः केचिदंशाः—स्थिरपीतम् = विपीतार्थम् । सख्ये = देवसख्ये रमणीये स्थान इति वा । अफला, अपुष्पा = अफला, अपुष्पा किंचित्पुष्पफलेति वा । याज्ञदैवते पुष्पफले देवताध्यात्मे वा ।

दुर्गकृतव्याख्यायाः केचिदंशाः—देवानां समानस्थानतायां देवसायुज्य इत्यर्थः । वक्ष्यति हि 'यां यां देवतां निराह तस्यास्तस्यास्ताद्भाव्यमनुभवति (नि० १३.१३) । [illegible] देवतापरिज्ञानं दैवतमात्मन्यधि यद्वर्तते

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



Gr.—With Sacrifice the trace of Vak they followed, and found her harbouring within the Rishis.

They brought her, dealt her forth in many places : seven singers make her tones resound in concert.

यज्ञः—या०—'यज्ञः कस्मात् प्रख्यातं यजतिकर्मेति नैरुक्ताः। याच्ञो भवतीति वा। यजुरुन्नो भवतीति वा। बहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यवः। यजूंष्येनं नयन्तीति वा।' अध्वरशब्दस्य निर्वचनं कुर्वन् यास्कः—'अध्वर इति यज्ञनाम। ध्वरति हिंसाकर्मा, तत्प्रतिषेधः।' ऋषिः—या०—'साक्षात्कृतधर्माण ऋषयः।' 'ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यवः। तद्यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् तद् ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते (तै० आ० २.१९)।' अत्र दुर्गः—'दर्शनात्'='पश्यत्यसौ सूक्ष्मानप्यर्थान्'। 'स्तोमान् ददर्श'='तानसौ तारकेण ज्ञानेन पश्यति'। 'यद् यस्मादेनांस्तपस्यमानांस्तप्यमानान् ब्रह्म ऋग्यजुः सामाख्यं स्वयंभु अकृतकम् आगच्छत्। अनधीतमेव तत्त्वतो दृष्टवन्तस्तपोविशेषेण।

धीर जनों ने यज्ञ के द्वारा वाक् के यातव्य पथ को प्राप्त किया, ऋषियों में प्रविष्ट हुई उस [वाक्] को प्राप्त किया, उसका आहरण या आभरण करके उसे अनेक देशों में व्यवस्थित किया। सात गायक(स्तुतिकर्ता) उसकी ओर अभिमुख होकर उसकी स्तुति करते हैं ॥३॥

यज्ञः—यज् देवपूजासंगतिकरणदानेषु।

ऋषिः—ऋष्—गतौ, ऋष् संवरणे आदाने च। आभृत्य—आ हृ—हरणे, अथवा भृ—धारणपोषणयोः, भरणे। रेभाः—रेभ् शब्दे, निघ० रेभति अर्चतिकर्मा। नवन्ते—णु==नु स्तवने अथवा गू==नू स्तवे।

आत्मसंयमनेनात्मविकासः संगतिकरणेन च यत् सर्वजनहितकारि कार्यं क्रियते तत्सर्वं यज्ञाभिधेयम्। तत्र हि सर्वे सम्मिल्य परस्परं भावयन्तः परं श्रेयोऽवाप्नुवन्ति। श्रीमद्भगवद्गीतायामपि सर्वजनहितकारि कार्यं यज्ञ इति कथितम्—

**यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।**
**भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥**

इदमात्मसंयमनं हितकार्यं च ज्ञानेन तपसा [illegible]

बहुभिर्मार्गैः कर्तुं पार्यते। अग्निहोत्रात्मको यज्ञोऽपि सर्वजनहितायैव। एवं यज्ञानां बहुविधता। श्रीमद्भगवद्गीतायां बहुविधा यज्ञाः कीर्तिताः—

**गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।**
**यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥**
**ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।**
**ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥**
**दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।**
**ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥**
**श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।**
**शब्दादीन् विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥**
**सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।**
**आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥**
**द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे।**
**स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥**
**अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे।**
**प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥**
**अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति।**
**सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥**
**यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।**
**नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥**
**एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।**
**कर्मजान् विद्धि तान् सर्वान् एवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥**

ऋषिष्वेव यथार्थज्ञानमस्ति। ऋषिभ्यस्तज्ज्ञानमधिगम्य प्रचारकैस्तस्य प्रचारो विधेयः। सप्त स्तोतारो वाचं स्तुवन्ति—वेदे सप्त छन्दांसि संगीते सप्त स्वराः मानवशरीरे सप्त ऋषयः (पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि मनो बुद्धिश्च) ॥३॥

**उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाच-**
**मुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।**
**उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे**
**जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥४॥**

सा०—त्वशब्द एकवाची। एकः। उतशब्दोऽप्यर्थे। पश्यन्नपि मनसा पर्यालोचयन्नपि वाचं न ददर्श। दर्शनफलाभावान्न पश्यति। त्व एकः शृण्वन्नप्येनां वाचं न शृणोति [illegible] तत्फलाभावात्। इत्यनेनार्थेनाविद्वानभिहितः। तृतीयपादेन

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



विदितवेदार्थमाह । त्वस्मा एकस्मा अपि तन्वमात्मीयं शरीरं वि सस्रे । स्वयं वाग्विविधं गमयति । आत्मानं विवृणुते प्रकाशयतीत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः । जायेव यथोशती सम्भोगं कामयमाना सुवासाः शोभनवसना जाया पत्ये भर्त्रे ऋतुकाले सम्भोगार्थं स्वयमात्मानं विवृणुते । तद्वदेनां पश्यति शृणोति चेति विदितवेदार्थस्य प्रशंसा । अप्येकः पश्यन्न पश्यति वाचमित्यादि निरुक्तमत्र द्रष्टव्यम् । नि० १.१९॥

Gr.—One man hath ne'er seen Vāk, and yet he seeth : one man hath hearing but hath never heard her.

But to another hath she shown her beauty as a fond well-dressed woman to her husband.

अस्य मन्त्रस्य दुर्गकृतव्याख्यायाः केचिदंशाः—'बहूनामपि समानपृष्ठोदरपाणिपादानां समानमेवाध्ययनमधीयानानामेकः कश्चित् पश्यन्नपि वाचं मनसा स्वभ्यस्ताध्ययनोऽपि तीक्ष्णविधः सन्न पश्यत्यर्थानभिज्ञत्वात् । स हि तां सम्यक् पश्यति यस्तस्या अर्थं विजानाति ।' 'यदा सुवासा भवति निर्णिक्तवासा भवति निर्णिक्तवासा नीरजस्का 'ऋतुकालेषु' तदा ह्यतितरां स्त्री पुरुषं प्रार्थयते ।'

योगी—एक व्यक्ति वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता, और एक (अन्य) व्यक्ति इसको (वाणी को) सुनता हुआ भी नहीं सुनता । तथा यह (वाणी) एक (किसी तीसरे) व्यक्ति के लिए अपने शरीर को विवृत कर देती है, जिस प्रकार कामयमाना शोभनवसना पत्नी पति के लिए [अपने शरीर को विवृत कर देती है] । ४॥

विसस्रे—विपूर्वकः सृधातुः (सृ गतौ) । जाया = जन् + यक् + टाप् ।

उशती—वश्—कान्तौ (कान्तिः = इच्छा—क्षीर०), वश् गतौ; निघ० वष्टि कान्तिकर्मा ।

वाचः (वेदानां, साहित्यस्य) शब्दार्थमात्रेण न कश्चिल्लाभः । अन्तर्निहितनिगूढार्थो द्रष्टव्यः ।

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहु-
र्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अधेन्वा चरति माययैष
वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥५॥

सा०—त्वमुतैकमपि सख्ये [illegible]

सा सखिकर्मत्वात्सख्यमित्युच्यते । सा च वाचा क्रियते । अतो वाक्सम्बन्धाद्वाक्यसख्ये स्थिरपीतं मधु यस्य हृदये स्थितं भवति । यद्वा । स्थिरपीतं स्थिरप्राप्तिमाहुः । यद्वा । तस्मिञ्ज्ञातार्थमाहुः । लोके यथा ज्ञातार्थं पुरुषं पीतार्थमिति वदन्ति । किञ्चैनं विज्ञातार्थं पुरुषं वाजिनेषु । वागिनेश्वरा येषां ते वाजिना अर्था वाच आयत्ताः खलु । वाग्ज्ञेयेष्वर्थेषु नापि हिन्वन्ति । अपिशब्दोऽन्वर्थे । केचिदपि नानुगच्छन्ति । अयमेवातिशयेन विद्वानित्यर्थः । यद्वा । वाजिनेषु सारभूतेषु निरूपणीयेष्वर्थेष्वेनं न हिन्वन्ति । न बहिःकुर्वन्ति । एनं पुरस्कृत्यैव सर्वं वेदार्थं विचारयन्तीत्यर्थः । इत्यर्थज्ञः प्रशस्तः । अनन्तरमुत्तरार्धेन केवलपाठको निन्द्यते । एषोऽविज्ञातार्थः पुरुषोऽधेन्वा धेनुत्वविवर्जितया कामानामदोग्ध्र्या देवमनुष्यस्थानेषु वाक्प्रतिरूपया मायया चरति । किं कुर्वन् । अफलामपुष्पाम् । वाचोऽर्थः पुष्पफलम् । अर्थवर्जिताम् । यद्वा वाचोऽर्थो याज्ञदैवते । यज्ञे भवं ज्ञानं याज्ञं देवतासु भवं ज्ञानं दैवतम् । तद्वर्जितां कर्मादिविषयज्ञानवर्जितां वाचं शुश्रुवाञ्श्रुतवान् । केवलं पाठमात्रेणैव श्रुतवान् स चरति । यथा वन्ध्या पीना गौः किं द्रोणमात्रं क्षीरं दोग्धीति मायामुत्पादयन्ती चरति यथा वन्ध्यो वृक्षोऽकाले पल्लवादियुक्तः सन्पुष्प्यति फलतीति भ्रान्तिमुत्पादयंस्तिष्ठति तथा पाठं प्रब्रुवाणश्चरतीत्यर्थः । अप्येकं वाक्सख्ये स्थिरपीतमित्यादि निरुक्तमनुसन्धेयम् । नि० १.२० ॥

One man they call a laggard, dull in friendship : they never urge him on to deeds of valour.

He wanders on in profitless illusion : the voice he heard yields neither fruit nor blossom.

अस्य मन्त्रस्य यास्ककृतव्याख्यायाः केचिदंशाः—स्थिरपीतम् = विपीतार्थम् । सख्ये = देवसख्ये रमणीये स्थान इति वा । अफला, अपुष्पा = अफला, अपुष्पा किंचित्पुष्पफलेति वा । याज्ञदैवते पुष्पफले देवताध्यात्मे वा ।

दुर्गकृतव्याख्यायाः केचिदंशाः—देवानां समानख्यानतायां देवसायुज्य इत्यर्थः । वक्ष्यति हि 'यां यां देवतां निराह तस्यास्तस्यास्ताद्भाव्यमनुभवति (नि० १३.१३) । [illegible] देवतापरिज्ञानं दैवतमात्मन्यधि यद्वर्तते

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



तदध्यात्मम् । स एष सर्वोऽपि मन्त्रब्राह्मणराशिरेव त्रिधा विभक्तः । तत्रैवं सति यदाऽभ्युदयलक्षणो धर्मोऽभिप्रेयते तदा याज्ञं पुष्पं दैवतं फलम्...यदा पुनर्निःश्रेयसलक्षणो धर्मोऽभिप्रेयते तदोभे अपि याज्ञदैवते पुष्पत्वमेव बिभ्रतः ।

योगी—तथा एक को सख्य में जिसने स्थिर रूप से पान किया है ऐसा कहते हैं, वाक्प्रतिस्पर्धाओं में कोई भी इस तक नहीं पहुँचते । यह(एक ऐसा भी—अवाग्विद्–है) जो प्रयोजन को सिद्ध न करने वाली (दूध न देने वाली) गौ के समान माया से युक्त हुआ हुआ भटकता रहता है; वह अफल तथा अपुष्प वाणी को सुनता रहता है ।

हिन्वन्ति—हि गतौ वृद्धौ च । वाजिनेषु—वाजिनः—(वाजिनम्, वाजिना ) M. W. 'Race, Contest (अश्वधावनप्रतिस्पर्धा, प्रतिस्पर्धा)' ।

वाजः—शक्तिः, ऊर्जा→वाजिन्→वाजिन ।

अफलाम्—फल् (त्रिफला) विशरणे ।

अपुष्पाम्—पुष्प्—विकासे; गतौ ( काशकृत्स्नः ), फुल्लने (बोपदेवः) ।

यदा किंचित्पठ्यते, ध्यानेन पठनीयम्—अध्येतव्यम् । तत्रैतादृशमैकात्म्यं स्याद् यादृशं कस्यचित् सख्या सह भवति । यो वाचोऽर्थविद् भवति, स सर्वत्र वार्तालापेषु—विचारविमर्शसंवादेषु—अप्रतिमो भवति । यो साहित्यस्य निगूढार्थं न जानाति, केवलं शब्दार्थमात्रमेव करोति, स एतादृशो जनो यस्य समीपे सुरूपा सुपुष्टा च धेनुरस्ति परं सा (धेनुः) दुग्धं न ददाति । एतादृशो जनो वाचः किंचिदपि फलं न प्राप्नोति नैव च वाक् तस्य शोभां वर्धयति ।।५।।

यस्तित्याज सचिविदं सखायं
न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति
नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ।।६।।

सा०—सचिविदम् । सचिशब्दः सख्यिवाची सखिविदम् । योऽध्येता स वेदस्य सखा सम्प्रदायोच्छेदनिवारकत्वेन वेदं प्रत्युपकारित्वात् । तादृशमुपकारिणमध्येतारं वेत्तीति सचिवित् । तमभिज्ञं सखायमध्येतॄणां पुरुषाणां स्वार्थबोधनेनोपकारित्वात्सखिभूतं वेदं यः पुमांस्तित्याज परार्थविनियोगेन परित्यजति ।। त्यजतेर्लिटचपस्पृधेथामानृचुरित्यादिना निपातितः ।। तस्य पुरुषस्य वाचि सर्वस्यां लौकिक्यां शास्त्रीयायां वाच्यपि भागो भजनीयः कश्चिदर्थो नास्ति । ईमयं पुरुषो यद्वेदव्यतिरिक्तं शृणोति तदलकमलीकं व्यर्थमेव शृणोति । हि यस्मात्कारणात्सुकृतस्य पन्थां पन्थानं न प्रवेद श्रद्धाराहित्यादनुष्ठानमार्गं न जानाति । तस्मात्तदीयश्रवणमपि निष्फलमित्यर्थः । द्वितीयचतुर्थपादयोरभिप्राय आरण्यके दर्शितो न तस्यानूक्ते भागोऽस्तीत्यादिना । ऐ० आ० ३. २. ४. । तथा तं योऽनूत्सूजत्यभागो वाचि भवत्यभागो नाके तदेषाभ्युक्ता । तै० आ० २. १५. ५. । इत्यध्वर्युभिश्च ।।

Gr.—No part in Vak hath he who hath abondoned his own dear friend who knows the truth of friendship.

Even if he hears her still in vain he listens: naught knrows he of the path of righteous action.

योगी—जो व्यक्ति घनिष्ठता (अन्तरङ्गता) को जानने वाले सखा को छोड़ देता है, उसका वाणी में भी भाग नहीं है । वह व्यक्ति जो कुछ सुनता है, अलीक (व्यर्थ, मिथ्या) सुनता है, वह सुकृत के मार्ग को नहीं जानता ।।६।।

सचिविदम्—षच् समवाये, सेवने । भागः—भज् सेवायाम्, विश्राणने, भोगसेवयोः (बोपदेवः) ।

मनुष्यस्य हितमस्मिन्नस्ति यदसौ कंचिज्ज्ञानयुक्तमन्तरङ्गं मित्रं (वेदज्ञानं वा) प्राप्नोतु, अन्यथाऽसौ सृष्टेर्निगूढान् अर्थान् कदापि न ज्ञास्यति—'उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत' (कठोपनिषद्) 'तद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत्' (मुण्ड० उ०) 'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः' (गीता) । सदैव ज्ञानिनां मित्राणां संग्रहः कार्यः, तैः सह घनिष्ठता स्थापनीया । ज्ञानदृष्ट्या वेदाः सर्वाधिकसचिविदः सखायः । यो जनो वेदस्वाध्यायं करोति स सदा महाज्ञानिना मित्रेण सह वर्तते—'स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् (अथर्व० १९. ७१. १) । 'साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः । तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मेभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः (नि. १.२०)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो
मनोजवेष्वसमा बभूवुः ।
आदध्नास उपकक्षास उ त्वे
ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥७॥

सा०—अक्षण्वन्तोऽक्षिमन्तः ॥ छन्दस्यपि दृश्यत इत्यक्षिशब्दादनङ् । अनो नुडिति नुट् ॥ अनेन दृश्यते सर्वमित्यक्षि । यद्वा । तैजसत्वादन्येभ्योऽङ्गेभ्यो व्यक्ततरम् तथा च श्रूयते । तस्मादेते व्यक्ततरे इवेति । तादृशाक्षियुक्ताः कर्णवन्तः । कर्णो निकृत्तद्वारः । गर्भावस्थायामेव केनापि निर्मितविल इत्यर्थः । यद्वा । शरीरस्य शिरसो वोर्ध्वं गते उच्चैः स्थिते । कर्णविलक्षणाकाशवन्तः । तथा चाम्नायते । ऋच्छन्ती इव खे उदगन्तामिति । तादृशाः सखायः । समानं ख्यानं ज्ञानं येषामिति सखायः । तेषु वाक्येषु बाह्येष्विन्द्रियेषु समानज्ञाना इत्यर्थः । ते मनोजवेषु । मनसा गम्यन्ते ज्ञायन्त इति मनोजवाः प्रज्ञाद्याः । तेष्वसमा अतुल्या बभूवुः । भवन्ति । तेषु मध्ये केचिदादध्नासः ॥ आस्यशब्दस्य पृषोदरादित्वादाकारादेशः ॥ आस्यदध्ना आस्यप्रमाणोदका ह्रदा इवेति मध्यमप्रज्ञानाह । अथ त्व एके ॥ सर्वनामत्वाज्जसः शीभावः ॥ उपकक्षासः कक्षसमीपप्रमाणोदका ह्रदा इव । अल्पोदका इत्यर्थः । अनेनाल्पप्रज्ञानाह । तथा त्व एके स्नात्वाः ॥ स्नातेः कृत्यार्थे त्वन्प्रत्ययः । पा ३. ४. १४ । स चार्हे कृत्यतृचश्च । पा० ३. ३. १६९ । इत्यर्हार्थे च भवति ॥ स्नानार्हा अक्षोभ्योदका ह्रदा इव ददृश्रे । दृश्यन्ते । अनेन महाप्रज्ञानाह । उः पूरणः । अक्षिमन्तः कर्णवन्तः सखायोऽक्षि चष्टेरित्यादिकं निरुक्तमत्र द्रष्टव्यम् । नि० १.९ ॥

Gr—Unequal in the quickness of their spirit are friends endowed alike with eyes and hearing.

Some look like tanks that reach the mouth or shoulder, others like pools of water fit to bathe in.

अक्षि—या०-चष्टेः निघ० चक्षिङ्=चक्ष् पश्यतिकर्मा, अनक्तेः [व्यक्त्यर्थस्य] इत्याग्रायणः ।

कर्णः—या० कृन्ततेर्निकृत्तद्वारो भवति, ऋच्छतेरित्याग्रायणः । आस्यम्—या० अस्यतेः [क्षेपार्थस्य], आस्यन्दत एनदन्नमिति वा । दध्नम्—या०—दध्यते स्रवतिकर्मणो दस्यतेर्वा स्याद् वितस्ततरं भवति । कक्षः=या०—कक्षो गाहतेः क्स इति नामकरणः ख्यातेर्वानर्थकोऽभ्यासः किमस्मिन् ख्यानमिति कषतेर्वा । ह्रदः—या०—ह्रादतेः शब्दकर्मणो ह्लादतेर्वा स्याच्छीतीभावकर्मणः ।

योगी—समान आंखों वाले और कर्णों वाले व्यक्ति मन के वेगों में असमान होते हैं । कुछ व्यक्ति उन सरोवरों के समान हैं जिनका जल मुख तक आता है [तथा कुछ उनके] जिनका जल कक्ष (कांख अथवा कमर) तक आता है तथा कुछ ऐसे हैं जो स्नानार्ह हैं (जिनमें डुबकी लगाई जा सकती है) ॥७॥

चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि । कक्षः—कष् हिंसायाम्, कषणे; कोषणे (ह्विट०), आदानसंवरणयोः (काशकृत्स्नः),

यदा मनुष्यो ज्ञानिनां गवेषणां विदधातु तदा सावधानं परीक्षेत, महाज्ञानिनामेव समीपे गच्छेद् यथा स्नानार्थं मनुष्यस्तान्येव सरांसि गच्छति यत्र साधु निमज्जनं कर्तुं पार्यते ॥७॥

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु
यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभि-
रोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ॥८॥

सा०—सखायः समानख्याना ब्राह्मणा हृदा बुद्धिमतां हृदयेन तष्टेषु निश्चितेषु परिकल्पितेषु मनसो जवेषु गन्तव्येषु वेदार्थेषु गुणदोषनिरूपणा यद्यदा संयजन्ते सङ्गच्छन्ते । यजिरत्र सङ्गतिकरणवाची । अत्रास्मिन्ब्राह्मणसङ्घे त्वमविज्ञातार्थमेकं पुरुषं वेद्याभिर्वेदितव्याभिर्विद्याभिः प्रवृत्तिभिर्वा वि जहुः । विशेषेण परित्यजन्ति । अहेति विनिश्चये । ओहब्रह्माणः । उह्यमानं ब्रह्म विद्याश्रुतिमतिबुद्धिलक्षणं येषां ते तथोक्ताः । तादृशास्त एके विद्वांसो वि चरन्ति । यथाकामं वेदार्थेषु विनिश्चयार्थं प्रवर्तन्ते । उः प्रसिद्धौ । हृदा तष्टेषु मनसां प्रजवेष्वित्यादिकं निरुक्तं द्रष्टव्यम् । नि. १३. १३ ॥

Gr.—When friendly Brahmans sacrifice together with mental impulse which the heart hath fashioned,

They leave one far behind through their

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


attainments, and some who count as Brahmans wander elsewhere.

अस्य मन्त्रस्य यास्ककृता व्याख्या—

'हृदा तष्टेषु मनसां प्रजवेषु यद् ब्राह्मणाः संयजन्ते समानख्याना ऋत्विजोऽब्राह त्वं विजहुर्वेद्याभिर्वेदितव्याभिः प्रवृत्तिभिरोहब्राह्मण ऊहब्रह्मण ऊह एषां ब्रह्मेति वा सेयं विद्या स्तुतिमतिबुद्धिस्तस्यास्तपसा पारमीप्सितव्यम् ।'

दुर्गकृतव्याख्यायाः केचिदंशाः— तष्टेषु = सूक्ष्मतामापादितेषु अचिन्त्याध्यात्मादिषु । मनसो जवेषु = मनसा येषु प्रजवाः प्रगमाः । न साक्षात्ते । ओहब्रह्माणः = इदं निरुक्तशास्त्रम् ऊहब्रह्म येषामस्ति ते । ब्रह्म—या० परिवृढं सर्वतः ।

योगी—हृदय द्वारा सूक्ष्मता से विनिर्मित मन के वेगों में (गतियों में) जब समानख्यान (एक जैसे गुण वाले) ब्राह्मण मिलकर यजन करते हैं (मिल कर बैठते एवं विचारविनिमय, वाद इत्यादि करते हैं ) । इस (यजन) में वे एक व्यक्ति को वेदितव्य विद्याओं के द्वारा पीछे छोड़ देते हैं । कुछ ऐसे होते हैं जो ब्रह्म विषयक ऊहा (वितर्क, विचार) कर सकते हैं तथा विशेष गति से युक्त होते हैं ।।८।।

तष्टः—तक्ष् तनूकरणे; कार्श्ये; तक्षे (वोपदेवः); विधाने, निर्माणे (ह्विट०); त्वचने (त्वचनम् = संवरणम्—मैत्रेयः) । जवः—जु गत्यर्थः, निघ० गतिकर्मा; रंहसि (वोपदेवः) । ब्राह्मणः—ब्रह्म वेदं शुद्धं चैतन्यं वेत्त्यधीते वा —ब्रह्मन्+अण् । ब्रह्म = बृंह्+मनिन् । ऊहः—ऊह् तर्के, वितर्के (मैत्रेयः, काशकृत्स्नः इत्यादयः),

मनसः कार्यं मननं, हृदयस्य च कार्यमनुभूतिः । मननं तदा वेगवद् भवति यदा तदनुभूतिसमन्वितं भवति— 'सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा' (निस्तराय दृश्यतां नासदीयसूक्तम्) । एतादृशा मननानुभूतिसंयुक्ता ब्रह्मवेत्तारो ब्रह्माध्येतारो वा सर्वाणि कार्याणि सम्यक् कुर्वन्ति, तेषां ज्ञानं गभीरं भवति, सामान्यविधा जनास्तन्नावगच्छन्ति । इमे पूर्णविद्या जना ओहब्रह्माणो भवन्ति, एषां तर्कशक्तिस्तीक्ष्णा भवति । एतादृशानां जनानां जीवनप्रगतिस्तीव्रा भवति । मनुष्ये श्रद्धा स्यात्, प्रशस्यमिदं; परन्तु ऊहरहिता श्रद्धाऽन्धविश्वासो मिथ्याविश्वासो वा जायते । अत एवाह भगवान् मनुः— 'आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना । यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः ।' तथा यास्कः—'मनुष्या वा ऋषिपूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन् । को न ऋषिर्भविष्यतीति । तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन् मन्त्रार्थचिन्ताऽभ्यूहमभ्यूढम् । तस्माद् यदेव किंचानूचानोऽभ्यूहत्यार्षं तद् भवति ।।८।। (नि० १३. १२)

**इमे ते नार्वाङ् न परश्चरन्ति**
**न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ।**
**त एते वाचमभिपद्य पापया**
**सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ।।९।।**

सा०—अनया वेदार्थानभिज्ञा निन्द्यन्ते । इमे येऽविद्वांसोऽर्वागर्वाचीनमधोभावित्यस्मिँल्लोके ब्राह्मणैः सह न चरन्ति ये परः परस्ताद्देवैः सह न चरन्ति ते ब्राह्मणासो ब्रह्मणा वेदार्थतत्परा न भवन्ति । तथा सुतेकरासः । सोमं सुतमभिषुतं कुर्वन्तीति सुतेकरा ऋत्विजः । तेऽपि न भवन्ति । अप्रजज्ञयः ।। जानातेराद्दगमहन इति किप्रत्ययः ।। अविद्वांसस्त एते मनुष्या वाचं लौकिकीमभिपद्य प्राप्य तया पापया पापकारिण्या वाचा युक्तास्ते सिरीः ।। छन्दसीवनिपाविति प्रत्ययः । सुपां सु लुगिति जसः सुः ।। सीरिणो भूत्वा तन्त्रं कृषिलक्षणं तन्वते । विस्तारयन्ति । कुर्वन्तीत्यर्थः । सर्वथा वेदार्थो ज्ञेय इत्यभिप्रायः ।।

Gr.—Those men who step not back and move not forward, nor Brahmans nor preparers of libations, Having attained to vāk in sinful fashion spin out their thread in ignorance like spinsters.

Like spinsters: '(like) female weavers. Such is the sense which Prof. Aufrecht thinks may, with probability, be assigned to सिरीः, a word which occurs only here'—muir.

अर्वाङ्—दुर्गः—अस्मानाभिमुख्येन

योगी—ये वे न तो इस ओर और न ही उस ओर गति करते हैं; न तो ब्राह्मण बनते हैं और न ही सोमनिष्पादक । वे ये वाणी को प्राप्त करके अत्यन्त अज्ञान-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



ग्रस्त हुए पापपूर्ण वाणी के द्वारा जुलाहे (अथवा तुरी) के समान ताना बाना बुनते रहते हैं ॥९॥

सिरी:—M. W. "a shuttle (others, a weaver) —तुरी (अन्येषां मतेन कौलिकः)"।

योगी— ज्ञानं हि द्विविधम्—सांसारिकमाध्यात्मिकं च । ईशोपनिषदि सांसारिकज्ञानमविद्याऽऽध्यात्मिकं च ज्ञानं विद्येति कथ्यते तथा चोपदिष्टम्–विद्यां चाविद्यां च यस्त-द्वेदोभयं सह । अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते । मुण्डकोपनिषद्यपि विद्याद्वयमुक्तम्—'द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ॥ तत्रा-परा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ।'

पूर्णजीवनस्यायं मार्गो यन्मनुष्य उभयोरपि ज्ञानं प्राप्नोतु। परन्तु दयनीयास्ते जना येषामुभयोरेकस्या अपि न ज्ञानं भवति । ते जीवने किंचिन्न लभन्ते, व्यर्थकल्पनासु शेखचिल्लीवद् रतास्ते स्वजीवनं व्यर्थं कुर्वन्ति । ज्ञानार्जनाय साधना कर्तव्या भवति । साधनाहीना इमेऽज्ञा निरर्थक-विचारेषु भ्रान्तास्तिष्ठन्ति, स्वभावत एव पापमार्गगामिनो भवन्ति, दुःखं च प्राप्नुवन्ति । आदर्शोऽयं यन्मनुष्य उभयो-रपि विद्ययोर्ज्ञानं प्राप्नोतु, अन्यथा ज्ञानमेकाङ्गि भवति ॥९॥

सा०—सोमप्रवहणे सर्वे नन्दन्तीत्येषा । सूत्रितं च । सोम यास्ते मयोभुव इति तिस्रः सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन । आ. ४. ४ । इति ।

**सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन**
**सभासाहेन सख्या सखायः ।**
**किल्बिषस्पृत्पितुर्षणिर्ह्यो वा-**
**मरं हितो भवति वाजिनाय ॥१०॥**

सा०—सखायः समानरूपाना: समानज्ञानाः सर्वे सभ्या मनुष्याः सभासहेन सभां सोढुं शक्नुवता सख्यस्विजां प्रतिभूतेन यज्ञं प्रत्यागतेन यशसा यशस्विना सोमेन हेतुना नन्दन्ति । हृष्टा भवन्ति । स हि स एव सोम एषां जनानां किल्बिषस्पृत् । यः स्वस्मादन्यः पुरुषः श्रेष्ठतामश्नुते स किल्बिषं भवति बाल्यत्वेन । यथा पापं सदाचारैर्वर्जयितव्यं भवति तद्वत् । पापरूपस्य शत्रोर्बाधकः । यद्वा । यज्ञे साध्वनुपवचनाकरणेन यत्किल्बिषं येषां सञ्जायते तद्यो बाधते स किल्बिष-स्पृत् । तथा त्वं पितुषणिः । पितुरित्यन्ननाम दक्षिणा वा । तमनेन सोमेन सनोति यजमानः सम्भजत इति तादृशः । तेषामन्नदक्षिणादातेत्यर्थः । किञ्च हितः पात्रेषु निहितः सोमो वाजिनाय । इन्द्रियं वीर्यं वाजिनम् । तेषां वीर्याय तत्कर्तुमरमलं पर्याप्तः समर्थो भवति । सर्वे नन्दन्ति य यशसागतेनेत्यन्वाह यशो वै सोमो राजेत्यादिकमिन्द्रियं वै वीर्यं वाजिनमाजरसं ह्यस्मै वाजिनं नापच्छिद्यत इत्यन्तं ब्राह्मणमत्रानुसन्धेयम् । ऐ० ब्रा० १. १३ ॥

Gr.—All friends are joyful in the friend who cometh in triumph, having conquered in assembly.

He is their blame-averter, food-provider; prepared is he and fit for deed of vigour.

पितुः—या०–पितुरित्यन्ननाम पातेर्वा निवतेर्वाऽऽप्या-यतेर्वा । किल्बिषम्—या०–किल्बिषं किल्मिदं सुकृतकर्मणो भयं कीर्तिमस्य भिनत्तीति वा ।

योगी—सभा में विजयी, यज्ञ के साथ आए हुए इस [वाग्विद्] सखा के साथ सब सखा आनन्दित होते हैं। ऐसा [वाग्विद्] पाप को बाधित करने वाला, अन्न को देने वाला, अत्यन्त समर्थ तथा स्वयं (अथवा वीरता) के कार्य के लिए योग्य होता है ॥१०॥

किल्बिषस्पृत्—किल्बिषं स्पृणोति (स्पृणोति—बाधते —सायण.) । स्पृ—प्रीतिवर्धनयोः ।

पितुषणिः—पितु सनोति—षणु (षण्) दाने ।

वाजिनाय—इयमस्य सूक्तस्य तृतीयो मन्त्रः । यो जनो वाक्साधनां करोति, प्रभूतं ज्ञानं प्राप्नोति तथा च तस्य ज्ञानस्य समुचितामभिव्यक्तिं कर्तुं पारयति (भवन्ति ते धन्यतमा विपश्चितो मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये—भारविः)स यशस्वी भवति,सत्सिसमाजे तं प्राप्य सर्वे नन्दन्ति। अधिगतगभीरज्ञानोऽसौ सर्वपापप्रणाशी सर्वसांसा-रिकभोगप्राप्तिनिपुणोऽतिसमर्थः प्रतिस्पर्धासु चाविजेयो भवति ॥१०॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

**ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्**
**गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।**
**ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां ।**
**यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः ॥११॥**

सा०—अनया होत्राद्यृत्विक्कर्मणां विनियोगमाचष्टे । त्व एको होतर्चां पोषं यथाविधि कर्माणि प्रयोगं पुपुष्वान् । एको ह्यनुरनुवादार्थः । बह्वीर्ऋचः पुष्यञ्शंसन्नास्ते । त्व एक उद्गाता शक्वरीषु । शक्वर्य ऋचः । आभिर्ऋग्भिर्बृत्रं हन्तुमिन्द्रः समर्थोऽभूदिति शक्वर्यः । तासु गायत्रं साम गायति । त्व एको ब्रह्मा च जातविद्यां जाते जाते कर्त्तव्ये प्रायश्चित्तादौ वेदयित्रीं वाचं वदति । ब्रह्मा हि सर्व वेदितुं योग्यो भवति खलु ॥ चादिलोपे विभाषेति न निघातः ॥ त्व एकोऽध्वर्युश्च यज्ञस्य मात्रां यज्ञो यथा मीयतेऽभिषवग्रहणादिकया क्रियया तां मात्रां यज्ञशरीरं विमिमीते । अत्यर्थं निर्मिमीते । ऋचामेकः पोषमास्ते पुपुष्वान् होतर्गेचेनी । नि० १.८ । इत्यादिनिरुक्तानुसारेणार्थोऽभ्यधायि । एवं बृहस्पतिर्विदितवेदार्थं तुष्टाव ॥

Gr.—One plies his constant task reciting verses: One sings holy psalm in Shakvari measures.

One more, the Brahman, tells the lore of being, and one lays down the rules of sacrificing.

ऋक्—या० अर्चना । गायत्रम्—या० गायतेः स्तुतिकर्मणः । शक्वर्यः—या० ऋचः 'यदाभिर्बृत्रमशकद्धन्तुं तच्छक्वरीणां शक्वरीत्वमिति विज्ञायते । ब्रह्मा—या० परिवृढः श्रुततो ब्रह्म परिवृढं सर्वतः (अत्र दुर्गः—'स हि त्रयीं विद्यां वेद', ··· 'ऋगादिपरं चोभयमपि तत्परिवृढं सर्वासु दिक्षु') जातविद्याम्—या० 'जाते जाते विद्यां वदति ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदितुमर्हति । अध्वर्युः—या० अध्वरयुरध्वरं युनक्त्यध्वरस्य नेताऽध्वरं कामयत इति वाऽपि वाधीयाने युरुपबन्धोऽध्वर इति यज्ञनाम ध्वरतिर्हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः । (दुर्गः—अथवा 'अधीयाने' तमध्वरं कस्मिश्चिद् ब्राह्मणेऽध्वर इतीयमेव संज्ञा भवति मञ्चक्रोशनवद्) ।

**योगी**—एक व्यक्ति आसीन है जिसने ऋचाओं की पुष्टि को पुष्ट किया है, अन्य शक्वरियों में (शक्तिवर्धक ऋचाओं में) सामगायन करता है । एक ब्रह्मा है जो सम्पूर्ण सृष्टि की विद्या का कथन करता है तथा एक है जो यज्ञ की मात्रा का सम्यक्तया निर्धारण करता है ॥११॥

कर्मकाण्डे चत्वार ऋत्विजो भवन्ति—होता, अध्वर्युः, उद्गाता तथा ब्रह्मा । एषां सम्बन्धः क्रमश ऋग्यजुःसामाथर्ववेदैः सहास्ति । मानवस्याध्यात्मजगत्यपि जीवनयज्ञे चतुर्णां गुणानामपेक्षा—१. ऋचां पुष्टिः—सर्वविधज्ञान प्राप्तिः (२) संगीतम् (संगीतकाव्यनृत्यादिकम् (३) सृष्टिरहस्यगवेषणा (४) जीवनयज्ञकार्याणां सम्यक्तया चालनम् । मनुष्यो विद्वान् (होता) भवतु, संगीतादिकलाकुशलो (उद्गाता) भवतु, सर्वविद्यो (ब्रह्मा) भवतु तथा च संयमनियमादिज्ञाता (अध्वर्युः) भवतु । मनुष्यस्य सर्वाणि कर्माणि हिंसारहितानि स्युः—विश्वप्रेममयानि स्युः । इयमेव जीवनयज्ञस्य पूर्णता ॥११॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# पुरुषः (ऋ. १०.९०)

प्रायः पाश्चात्या विद्वांसस्तदनुयायिनश्च भारतीया विद्वांसः पुरुषशब्दस्याऽऽदिमदैत्य (primeval giant) इत्यर्थं विदधति। प्रायो भारतीया विद्वांसः केचन च पाश्चात्या विद्वांसः सर्वव्याप्यात्मेत्यर्थं विदधति।

वालिस (wallis) प्रभृतीनां पाश्चात्यविदुषां सम्मतौ पुरुषसूक्ते प्राचीनकाले प्रचलितायाः पुरुष (मनुष्य) बलेः संकेताः प्राप्यन्ते।

मैकडोनलमहोदयः कथयति—'The gods are the agents of creation while the matter out of which world is made is the body of a primeval giant named Purusha. The act of creation is here treated as a sacrifice in which the Purusha is the victim, the parts when cut up becoming portions of the universe'—'देवाः सृष्टिकर्तारः सन्ति तथा विश्वनिर्माणोपादानं पुरुषाभिधेयस्य कस्यचिदादिमदैत्यस्य शरीरम्। सृष्टिसर्जनकार्यमत्र यज्ञरूपेण कल्पितं यत्र पुरुषो बलिपशुः। अस्य पुरुषरूपबलिपशोर्निकृत्तान्यङ्गान्येव विश्वस्य विभिन्ना भागाः संजाताः।'

पुनर्मैकडोनलमहोदयः कथयति — 'भाषा-विषय-दृष्टिभ्यामिदं सूक्तमतिपरवर्तिकालम्। अस्मिन् सर्वदेववादस्य (pantheism इत्यस्य) मूलं प्राप्यते।'

विलसनमहोदयः कथयति यत् परम आत्मा विश्वं प्राणसंपन्नं व्यधात् तथा च स स्वयं मनुष्यरूपेणोपस्थितः।

ग्रिफिथमहोदयसम्मतौ पुरुषः शरीरधर आत्मा यस्य विश्वस्य मूलस्रोतोरूपेण कल्पना कृता।

अत्र सविस्तरं विचारयन् ग्रिस्वोल्डमहोदयः कथयति—परवर्त्येकदेववादसिद्धान्तस्य 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (monism) इत्याद्यद्वैतवेदान्तस्य स्रोतोऽस्मिन् सूक्ते।

अत्रास्माकमिदं मतं यद् ये विद्वांस आदिमदैत्य इत्यर्थं कुर्वन्ति ते स्वपक्षपोषकं किंचित् प्रमाणं न प्रस्तुवन्ति तथा सर्वव्याप्यात्मपक्षपोषका विद्वांसोऽप्यप्रस्तुतप्रमाणाः। ऋग्वेदे पुरुषसूक्तादन्यत्र प्रायः षोडशस्थलेषु पुरुषशब्दः प्राप्यते। पाश्चात्येन पौरस्त्येन वा प्राचीनेनार्वाचीनेन वा केनचिदपि विदुषा तेषु तेषु स्थलेषु 'मनुष्य' इत्यर्थमपहायाऽन्यः न कश्चिदर्थो व्यधायि। उपरिदृष्टा तेषां षोडश स्थलानां संकेता निर्दिष्टाः।

सायणाचार्यः कथयति—'अव्यक्तमहदादिविनश्वरश्चेतनो यः पुरुषः।

सायणाचार्येण चतुर्थमन्त्रे प्रथमं 'पुरुष' शब्दस्याऽऽदिपुरुष (परमात्मा, ब्रह्म, इत्यादि) इति तथा द्वितीय-पुरुष (पूरुष) शब्दस्य मनुष्य इत्यर्थः कृतः। प्रथमपुरुषशब्द स्तस्मादिति सर्वनाम्ना कथितः (सायणः—तस्माद् आदिपुरुषात्; पुरुषः—तद्देहाभिमानी कश्चिद् पुमान्)।

## सायणपक्षविवेचना

(१) ऋग्वेदेऽन्येषु सूक्तेषु (प्रायः षोडशस्थलेषु) नास्ति परमात्मेत्यर्थः पुरुषशब्दस्य।

(२) चतुर्थमन्त्रे कस्माद् द्वौ वारौ समानस्य पुरुषशब्दस्य विभिन्नौ द्वौ (आदिपुरुष-मनुष्यात्मकौ) अर्थौ?

(३) देवाः पुरुषेण (परमात्मना) हविषा सृष्टयुत्पत्तियज्ञं कृतवन्तस्तदा देवानां रचना केन व्यधायि?

(४) पुरुषः (परमात्मा) देवैः पशुरूपेण बद्ध इति न मतिपथमारोहति।

(५) एकादशमन्त्रे प्रजापतेश्चर्चा। कोऽयं प्रजापतिः? किं परमात्मनो भिन्नः? यदि भिन्नस्तदा कोऽयं पुरुषः? कोऽयं विराट्?

## अस्माकं पक्षः

(१) पुरुषशब्दस्यार्थौ मनुष्य इत्यन्यार्थे प्रमाणाभावात् मनुष्येणास्माकं तात्पर्यं मनुष्यो मनुष्यस्यात्मा वा।

(२) पाश्चात्यविद्वद्भिः प्रतिपादित 'आदिमदैत्या'र्थे न किंचित्प्रमाणम्। परमात्मपरकेऽर्थेऽपि बहवो विसङ्गतयो विप्रतिपत्तयश्च।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



(३) प्रतिमन्त्रं पुरुषशब्दस्य मनुष्यार्थपरेयं व्याख्या—

(१) मनुष्यो यदा स्वान्तर्निहितप्रसुप्तशक्तीनां विकासं करोति तदाऽसौ महामहिमा, सहस्रशीर्षा, सहस्राक्षः, सहस्रपाच्च भवति, तथा च भूमिं विश्वतो वृत्वा तिष्ठति। तात्पर्यमिदं यन्मनुष्येऽनन्ताः प्रसुप्तशक्तयः सन्ति, केवलं ताः जागरणमपेक्षन्ते। अद्वैतवेदान्तसिद्धान्तेनापीदमेव सिध्यति (अहं ब्रह्मास्मि)। यजुर्वेदेऽन्तिमेऽध्यायेऽपि (ईशोपनिषदि) कथितमिदमेव तथ्यम्—'योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि'।

अथर्ववेदेऽपीदमेव तथ्यमुद्घोषितम्—तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते। सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते॥ —अथर्व० ११.८.३२

(२) अमृतत्वम्=आध्यात्मिकजीवनम्। यदन्नेनातिरोहति=भौतिकं पार्थिवं वा जीवनम्।

(३) त्रयोंऽशा आध्यात्मिकजीवनस्यैकांशश्च पार्थिवजीवनस्य भवेन्मनुष्यस्य।

(४) एवमात्मविकासशीलो मनुष्यः सर्वत्राप्रतिहतगतिः।

(५) आत्मविकासेन सामान्यो मनुष्योऽपि 'विराड्' इति जायते—विशिष्टरूपेण राजते ह्यसौ।

(६) यदि मनुष्यो दिव्यभावनाभिर्दिव्यशक्तिभिर्वा नियन्त्रितस्तिष्ठेत् तदा सृष्टियज्ञः सफलो भवति। वसन्तादय ऋतवो मनुष्यस्य विभिन्नस्थितीनां विविधशक्तीनां च प्रतिनिधयः।

(७) एतादृशो मनुष्यो बहिर्वत् पवित्रः। सृष्टियज्ञ एतादृशानामेव मनुष्याणां साहाय्येन प्रचलति।

(८) एतादृशो मनुष्यः सर्वसंसाराय पुष्टिप्रदः। पशुपक्षिभिरपि सह तस्य तादात्म्यम्। बलिवैश्वदेवयज्ञ इदमेव तादात्म्यं स्फुटीक्रियते।

(९) ऋचः=शास्त्रीयज्ञानम्। सामानि=आध्यात्मिकसाक्षात्कारः, संगीतम्। छन्दांसि=काव्यम्। यजुः=व्यावहारिकं जगत् कर्मकाण्डं च।

(१०) सर्वे पशवः पक्षिणश्च मनुष्यस्य परिवाररूपेण सन्ति। कुमारसम्भवे कालिदासः—

अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः
करस्थदर्भप्रणयापहारिषु ५.३५

अभिज्ञानशाकुन्तले कालिदासः—

'न केवलं तातनियोग एव। अस्ति मे सोदरस्नेह एतेषु।' १.१५

तथा

'पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥'
४.९

(११, १२) मनुष्यशरीरे विभिन्नाङ्गानि ब्राह्मणादिवत् सन्ति। तेषां यथोचितोपयोगः कर्तव्यः।

(१३, १४) मनःप्रभृतीनां विकासस्योपायः प्रदर्शितः। आलङ्कारिकदृष्ट्या चन्द्रादिभ्य उत्पत्तिः कथिता। अन्धकारेऽपि प्रकाशमयं शीतलं च भवेन्मनस्तथा चन्द्रवन्मनो ह्लस्यति वर्धते च ज्योतिर्मयं चाऽस्ति। एवमन्यत्राप्यूह्यम्। अथवा वैज्ञानिकदृष्ट्या चन्द्रादीनां मनुष्यस्य मनःप्रभृतिभिरिन्द्रियैः सह कश्चित् सम्बन्धः स्यात्।

(१५) इन्द्रियमनोबुद्धिसहितः संयमबन्धने पशुवद् बद्धो मनुष्य एव सफलो भवति। यावन्मनुष्यः संयमबन्धने बद्धो न भवति तावज्जीवनयज्ञस्य साफल्यं नास्ति। नाकूलबद्धा नदी नदी तिष्ठति।

(१६) एवं दिव्यशक्तयो महान्तं जीवनयज्ञं साधयन्ति। यज्ञश्चायं देवपूजासंगतिदानमयः। तदा नाक-(सुख) प्राप्तिर्भवति।

एवमस्मिन् सूक्ते पुरुषशब्दस्य मनुष्य इत्येवार्थः प्रतिभाति। वस्तुतः एतद्गुणविशिष्टो जन एव पुरुषो यथा मननयुक्तो मनुष्यो नेतृत्वगुणयुक्तश्च नरः। अन्ये तु केवलं जना एव। अद्यत्वे येषां कृते 'महापुरुष' इति शब्दः प्रयुज्यते, अस्मिन् सूक्ते तेषां कृते 'पुरुष' शब्दस्य प्रयोगः। यदा शनैः शनैरर्थविस्तरेण सर्वेऽपि जनाः पुरुषमनुष्यनरादिनामधारिणो जातास्तदा 'महापुरुषः', 'मनस्वी मनुष्यः', 'वीरो नर' इत्यादिशब्दाः प्रचलिताः।

ऋग्वेदे निम्नस्थलेषु पुरुषशब्दो दृश्यते—१.११४.३; ३.३३.८; ४.१२.४; ४.५४.४; ५.४८.५; ७.२९.८; ७.५७.४; ७.७५.८; ७.१०२.२; ७.१०४.५; १०.२७.२२; १०.५१.८; १०.९० (अनेकवारान्); १०.९७.८; तथा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



यजुर्वेदेऽपि पुरुषसूक्तमस्ति । तत्र हि द्वाविंशतिमन्त्राः । यजुर्वेदस्यैकत्रिंशोऽध्यायः पुरुषसूक्तम् । ऋग्वेदस्य पुरुषसूक्तस्य षोडश मन्त्रास्तत्र किंचित्क्रमभेदेन पाठभेदेन च सन्ति—ऋग्वेदस्य मन्त्रा यजुर्वेदे निम्नक्रमेण—१, २, ३, ४, ५, १४, ९, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १५, १६ । पाठभेदः—

| मन्त्रः ऋ० | मन्त्रः यजुः |
|---|---|
| १. विश्वतो वृत्वा | १. सर्वतः स्पृत्वा |
| २. भव्यम् | २. भाव्यम् |
| ५. तस्मात् | ५. ततः |
| ८. आरण्यान् | ६. आरण्याः |
| ११. किमस्य को बाहू का ऊरू | १०. किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरू |
| १३. मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत | १२. श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत |

अस्मिन् पाठ्यपुस्तके दयानन्दभाष्यं यजुर्वेदभाष्यादुद्धृतम् ।

अथो वेदेषु पुरुषस्वरूपद्योतका मन्त्रा मन्त्रखण्डाश्च प्रस्तूयन्ते—

मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः ।
राजः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि
—अथर्व० १९. ६. १६

प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्रयः ।
आनन्दानुप्रोन्दांश्च कस्माद् वहति पूरुषः ॥
—अथर्व० १०. २. ९

ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ।
ब्रह्मेममग्निं पुरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ॥
—अथर्व० १०.२.२१

ऊर्ध्वो नु सृष्टा ३स्तिर्यङ् नु सृष्टा ३ः
सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ ३ ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥
—अथर्व० १०.२.२८

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
नान्यः पन्या विद्यतेऽयनाय ॥
यजुः० ३१.१८

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि
यजु ३१. २

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ।
ओ३म् खं ब्रह्म
यजुः० ४०. १७

पुरुषविषय उपनिषदः—

य एवैष आदित्ये पुरुषस्तमेवाहमुपासे ।
कौषी० ४.१

ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग् रसः ।
छा० १.१.२

अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति ।
छा० ३.१४.१

षोडशकलः सोम्य पुरुषः
छा० ६.७.१

एकैकः पुरुषो देवान् भुनक्ति
बृ० १. ४. १०

तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषः
बृ० २.५.१

अयं पुरुषः सर्वासु पूर्षु पुरिशयः
बृ० २.५.१८

हृदन्तर्ज्योतिः पुरुषः
बृ० ४.३.७

हिरण्मयः पुरुष एकहंसः
बृ० ४.३.११

अग्नौ देवाः पुरुषं जुह्वति तस्या आहुत्यै पुरुषः संभवति ।
बृ० ६.२.१४

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः
कठ० ४.१२

तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्
श्वेत० ३.९

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


अस्य (ऋ० १०. ९०) सूक्तस्य ऋषिः

अस्य सूक्तस्य ऋषिर्नारायणः । मनुस्मृतौ नारायणशब्दव्याख्या—

**आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।**
**ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥**

योगिमतेन नराणामयनम्=नरायणम्; नरायणस्यापत्यं पुमान् नारायणः । अथवा, नराणां समूहो नारः, नारस्यायनम्=नारायणम्=नारायणः; अथवा नारमयनं यस्य स नारायणः । नरः=वीर, नेतृत्वगुणयुक्तः, नृ नये । स एव वस्तुतः पुरुषः यो वीरः स्यात्, नेतृत्वगुणयुक्तः स्यात् ।

सा०—सहस्रशीर्षेति षोडशर्चं षष्ठं सूक्तम् । नारायणो नामर्षिरस्त्या त्रिष्टुप् शिष्टा अनुष्टुभः । अव्यक्तमहदादिविलक्षणश्चेतनो यः पुरुषः । वेदा० १.४.१ । पुरुषान्न परं किञ्चित् । क० उ० ३-११ । इत्यादिश्रुतिषु प्रसिद्धः स देवता । तथा चानुक्रान्तम् । सहस्रशीर्षा षोडश नारायणः शेषस्यानुष्टुभं त्रिष्टुब्न्तं त्रिष्टि ॥ सतो विनियोगः ॥

**सहस्रशीर्षा पुरुषः**
**सहस्राक्षः सहस्रपात् ।**
**स भूमिं विश्वतो वृत्वा-**
**त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥**

सा०—सर्वेन्द्रियसमन्वितैकरो ब्रह्माण्डदेहो विराडाख्यो यः पुरुषः शीर्षं सहस्रशीर्षा । सहस्रसम्ख्योपलक्षणलाक्षणैः विशिष्टमुक्त इत्यर्थः । यानि सर्वप्राणिनां शिरांसि सन्ति सर्वाणि स्वदेहगतानीत्यात्मतदीयान्येवेति सहस्रशीर्षेत्युक्तम् । एवं सहस्राक्षित्वं सहस्रपादत्वं च । स पुरुषो भूमिं ब्रह्माण्डोपलक्षितां विश्वतः सर्वतो वृत्वा परिवेष्टय दशाङ्गुलं दशाङ्गुलपरिमितं देशमत्यतिष्ठत् । अतिक्रम्य व्यवस्थितः । दशाङ्गुलमित्युपलक्षणम् । ब्रह्माण्डाद् बहिरपि सर्वतो व्याप्यावस्थित इत्यर्थः ॥

द०—अब सर्वान्तर्यामिस्वरूपपूर्वक सृष्टिविद्या विषयकमन्त्र ॥

पदार्थः—( सहस्रशीर्षा ) सहस्रपरमाद्यसङ्ख्याताभिः शिरोभिः युक्तः यः (पुरुषः) सर्वत्र पूर्णो जगदीश्वरः पुरुषः पुरियाः पुरियाः पुरुषोपुरुष्यपरिपूरकत्वात् पुरुषवचनाच्च ॥ सम्पादक

णीयो न ज्यायोस्ति किञ्चित् । वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वमित्यपि निगमो भवति ॥ नि० अ० २ । ख० ३ । (सहस्राक्षः) सहस्राण्यसङ्ख्यान्यक्षीणि यस्मिन् सः (सहस्रपात्) सहस्राण्यसङ्ख्याताः पादा यस्मिन् सः (सः) (भूमिम्) भूगोलम् (सर्वतः) सर्वस्माद्देशात् (स्पृत्वा) अभिव्याप्य (अति) उल्लङ्घने (अतिष्ठत्) तिष्ठति (दशाङ्गुलम्) पञ्चस्थूलसूक्ष्मभूतानि दशाङ्गुलान्यङ्गानि यस्य तज्जगत् ॥१॥

**अन्वयः**—हे मनुष्या यः सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात्पुरुषोऽस्ति स सर्वतो भूमिं स्पृत्वा दशाङ्गुलमत्यतिष्ठत्तमेवोपासीध्वम् ॥

**भावार्थः**—हे मनुष्या यस्मिन् पूर्णे परमात्मन्यस्मदादीनामसङ्ख्यातानि शिरांस्यक्षीणि पादादीन्यङ्गानि च सन्ति यो भूम्यादीनुपलक्षितं पञ्चभिः स्थूलैर्भूतैः सूक्ष्मैश्च युक्तं जगत् स्वसत्तया प्रपूर्य्य यच्च जगन्नास्ति तत्रापि पूर्णोऽस्ति तं सर्वनिर्मातारं परिपूर्णं सच्चिदानन्दस्वरूपं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं परमेश्वरं विहायान्यस्योपासनां यूयं कदाचिन्नैव कुरुत किन्त्वस्योपासनेन धर्मार्थकाममोक्षानलं कुर्यात ॥१॥

Gr.—A thousand heads hath Purusha, a thousand eyes, a thousand feet.

On every side pervading earth he fills a space ten fingers wide.

**सहस्रम्**—दृश्यता सोमसूक्तम् । शिरः—या० 'समाभितान्येतदिदियाणि भवन्ति ।' अक्षि—दृश्यता सोमसूक्तम् । पुरुषशब्द विवेचनम्—दृश्यतां दयानन्दभाष्यम् । **भूमिम्**—या०—'अपशाखिनो भवन्तीति वाचकारिण्यो भवन्तीति वाचकारिण्यो भवन्तीति वाचकारिण्यो भवन्तीति वाचका भवन्तीति वाचि वाच्यमर्थवादेन स्तुवन् ।'

**पदार्थ**—पुरुष सहस्रशीर्षा, सहस्राक्ष तथा सहस्रपाद है । वह भूमि को सब ओर से आवृत करके दशाङ्गुल परिमाण अतिक्रान्त करके स्थित है ॥१॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



मनुष्यो यत्किञ्चिदिच्छति, कर्तुं पारयति । अस्य शक्तिर्भूमिमावृत्य तिष्ठति । सर्वं भूमिलोकं त्वयं जेतुमलमेव, अतोऽप्यधिकतराः शक्तयोऽस्मिन् प्रसुप्तरूपेण तिष्ठन्ति । यदेयं शक्तिः प्रबुध्यति तदाऽयं मनुष्यः कथयति—'हन्ताहं पृथिवीमिमां निदधानीह वेह वा । कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ऋ० १०.११९.९ ॥१॥

उवटः—दशाङ्गुलम्—दश च तानि अङ्गुलानि दशाङ्गुलानीन्द्रियाणि । केचिदन्यथा रोचयन्ति दशाङ्गुलप्रमाणं हृदयस्थानम् । अपरे तु नासिकाग्रं दशाङ्गुलमिति ।

महीधरः—अव्यक्तमहदादिविलक्षणश्चेतनो यः पुरुषः 'पुरुषान्न परं किंचि' दित्यादिश्रुतिषु प्रसिद्धः सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रह्माण्डदेहो विराजाख्योऽस्ति ।'''सहस्रमसंख्यानि शीर्षाणि शिरांसि यस्य सः 'शीर्षश्छन्दसि (पा० ६.१.६०) इति शिरःशब्दस्य शीर्षन्नादेशः । शिरोग्रहणं सर्वावयवोपलक्षणम् ।'''अक्षिग्रहणं सर्वज्ञानेन्द्रियोपलक्षकम् सहस्रपात् सहस्रं पादा यस्य 'संख्या सुपूर्वस्य' (पा० ५.४.१४०) इति पादस्यान्त्यलोपः । पादग्रहणं कर्मेन्द्रियोपलक्षणम् ।'''भूमि ब्रह्माण्डलोकरूपाम्'''यद्वा भूमिशब्दो भूतोपलक्षकः पञ्चभूतानि व्याप्य'''यद्वा नाभेः सकाशाद् दशाङ्गुलमतिक्रम्य हृदि स्थितः ।

**पुरुष एवेदं सर्वं**
**यद्भूतं यच्च भव्यम् ।**
**उतामृतत्वस्येशानो**
**यदन्नेनातिरोहति ॥२॥**

सा०—यदिदं वर्तमानं जगत्तत्सर्वं पुरुष एव । यच्च भूतमतीतं जगद्यच्च भव्यं भविष्यज्जगत् तदपि पुरुष एव । यथास्मिन्कल्पे वर्तमानाः प्राणिदेहाः सर्वेऽपि विराट्पुरुषस्यावयवाः तथैवातीतागामिनोरपि कल्पयोर्द्रष्टव्यमित्यभिप्रायः उतापि चामृतत्वस्य देवत्वस्यायमीशानः स्वामी । यद्यस्मात्कारणादन्नेन प्राणिनां भोग्येनान्नेन निमित्तभूतेनातिरोहति स्वकीयां कारणावस्थामतिक्रम्य परिदृश्यमानां जगदवस्थां प्राप्नोति तस्मात्प्राणिनां कर्मफलभोगाय जगदवस्थास्वीकारान्नेदं तस्य वस्तुत्वमित्यर्थः ॥

द०—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पदार्थः—(पुरुषः)सत्यैर्गुणकर्मस्वभावैः परिपूर्णः (एव) (इदम्) प्रत्यक्षाऽप्रत्यक्षात्मकं जगत् (सर्वम्) समस्तम् (यत्) (भूतम्) उत्पन्नम् (यत्) (च) (भाव्यम्) उत्पत्स्यमानम् । (उत) अपि (अमृतत्वस्य) अविनाशिनो मोक्षसुखस्य कारणस्य वा (ईशानः) अधिष्ठाता (यत्) (अन्नेन) पृथिव्यादिना (अतिरोहति) अत्यन्तं वर्द्धते ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यद्भूतं यच्च भाव्यमुतापि यदन्नेनाऽतिरोहति तदिदं सर्वममृतत्वस्येशानः पुरुष एव रचयति ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्या येनेश्वरेण यदा यदा सृष्टिरभूत्तदा तदा निर्मिता इदानीं धरति पुनर्विनाश्य रचयिष्यति यदाधारेण सर्वं वर्द्धते च तमेव परेशं परमात्मानमुपासीध्वं नाऽस्मादितरम् ॥२॥

Gr—This Purusha is all that yet hath been and all that is to be:

The Lord of Immortality which waxes greater still by food,

योगी—जो सत्ता में आ चुका है और जो सत्ता में आएगा, यह सब पुरुष ही है । तथा [वह पुरुष] अमृतत्व का स्वामी है [और उसका भी स्वामी है] जो अन्न से बढ़ता है । ('अमृतत्व'=आध्यात्मिक जीवन; 'जो अन्न से बढ़ता है'=भौतिक, शारीरिक अथवा पार्थिव जीवन) ॥२॥

मनुष्येणैव जगति सर्वं वर्त्तते भूतं च भावि च । जगत उन्नतिर्जगत इतिहासोऽतीतं भावि च सर्वं मनुष्यमेवाधिकृत्य । अस्य मनुष्यस्य वास्तविकं स्वरूपमिदं यदयममृतत्वस्येशानोऽस्ति । शरीरं गृहीत्वाऽयं जीवात्माऽस्य (शरीरस्य) अधिष्ठाता भवति यत् (शरीरम्) अन्नेनातिरोहति ॥२॥

उवटः—अमृतत्वस्यापि मोक्षस्यापि...अतिरोहति अतिरोहं करोति ।

महीधरः—उतापि च अमृतत्वस्य देवस्य ईशानः स्वामी स पुरुषः यद् यस्मात् अन्नेन प्राणिनां भोग्येनान्नेन फलेन निमित्तभूतेनातिरोहति स्वीयां कारणावस्थामतिक्रम्य परिदृश्यमानां जगदवस्थां प्राप्नोति तस्मात् पुरुष एव । प्राणिनां कर्मफलभोगाय जगदवस्थास्वीकारान्नेदं तस्य वस्तुत्वमित्यर्थः । यद्वा । सर्वं पुरुषश्चेत्तर्हि परिणामिव्यावर्त्तत्वात् । अमृतत्वस्यामरणधर्मस्येशानः मुक्तेरीशः ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


यो हि मोक्षेश्वरो नासौ म्रियत इत्यर्थः। किंच यज्जीवजातमन्नेनातिरोहति उत्पद्यते तस्य सर्वस्य चेशानः ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तो भूतग्राम उक्तः तस्यान्नेनैव स्थितेः 'इतः प्रदानाद्धि देवा उपजीवन्ति' इति श्रुतेः।

**एतावानस्य महिमा-**
**तो ज्यायांश्च पूरुषः।**
**पादोऽस्य विश्वा भूतानि**
**त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥**

सा०—अतीतानागतवर्तमानरूपं जगद्यावदस्ति एतावान्सर्वोऽप्यस्य पुरुषस्य महिमा। स्वकीयसामर्थ्यविशेषः। न तु तस्य वास्तवस्वरूपम्। वास्तवस्तु पुरुषोऽतो महिम्नोऽपि ज्यायान्। अतिशयेनाधिकः। एतच्चोभयं स्पष्टीक्रियते। अस्य पुरुषस्य विश्वा सर्वाणि भूतानि कालत्रयवर्तीनि प्राणिजातानि पादः। चतुर्थोंऽशः अस्य पुरुषस्यावशिष्टं त्रिपात्स्वरूपममृतं विनाशरहितं सद्दिवि द्योतनात्मके स्वप्रकाशस्वरूपे व्यवतिष्ठत इति शेषः। यद्यपि सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। तै० आ० ८. १. उ० २. १। इत्यास्नातस्य परब्रह्मण इयत्ताभावात्पादचतुष्टयं निरूपयितुमशक्यं तथापि जगदिदं ब्रह्मस्वरूपापेक्षयाल्पमिति विवक्षितत्वात्पादत्वोपन्यासः ॥

द०—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पदार्थः— (एतावान्) दृश्यादृश्यं ब्रह्माण्डरूपम् (अस्य) जगदीश्वरस्य (महिमा) माहात्म्यम् (अतः) अस्मात् (ज्यायान्) अतिशयेन प्रशस्तो महान् (च) (पूरुष.) परिपूर्णः (पादः) एकोंशः (अस्य) (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि (भूतानि) पृथिव्यादीनि (त्रिपात्) त्रयः पादा यस्मिन् (अस्य) जगत्स्रष्टुः (अमृतम्) नाशरहितम् (दिवि) द्योतनात्मके स्वस्वरूपे ॥३॥

अन्वयः—हे मनुष्य अस्य परमेश्वरस्यैतावान्महिमाऽतोऽयं पूरुषो ज्यायानस्य च विश्वा भूतान्येकः पादोऽस्य त्रिपादमृतं दिवि वर्त्तते ॥३॥

भावार्थः—इदं सर्वं सूर्यचन्द्रादिलोकलोकान्तरं यावज्जगदस्ति तच्चित्रविचित्ररचनानुमानेनेश्वरस्य महत्त्वं सम्पाद्योत्पत्तिस्थितिप्रलयरूपेण कालत्रये ह्रासवृद्ध्यादिनाऽपि परमेश्वरस्य चतुर्थांशे तिष्ठति नैवास्य तुरीयांशस्याप्यवधिं प्राप्नोति। अस्य सामर्थ्यस्यांशत्रयं स्वेऽविनाशिनि मोक्षस्वरूपे सदैव वर्त्तते नानेन कथनेन तस्याऽनन्तत्वं विहन्यते किन्तु जगदपेक्षया तस्य महत्त्वं जगतो न्यूनत्वञ्च ज्ञाप्यते ॥३॥

उवटः—विश्वा भूतानि विश्वानि चतुर्दशभुवनसमूहे यानि चतुर्धा भूतानि तान्येकोंऽशः। त्रिपात् पुनस्त्रयोंऽशाः। अस्य पुरुषस्य अमृतम् ऋग्यजुःसामलक्षणम् आदित्यलक्षणं वा दिवि द्योतते।

Gr—So mighty is his greatness; yea greater than this is Purusha.

All creatures are one-fourth of him, three fourths eternal life in heaven.

योगी—इतनी इय (पुरुष) की महिमा है, पूरुष (पुरुष) इससे भी अधिक बड़ा है। सम्पूर्ण भूत (सृष्टि) प्राणी, उसका चतुर्थांश ($\frac{1}{4}$) हैं। उसका अमृतरूप तीन-चौथाई भाग ($\frac{3}{4}$) द्युलोक में है। (द्युलोक=आध्यात्मिक जीवन) ॥३॥

पूरुषः—प्रचलितसम्मतिः—छन्दोदृष्ट्या दीर्घः। योगी—काव्यदृष्ट्या दीर्घः प्रबुद्धमनुष्यस्य शक्तिमत्ताप्रदर्शनाय

उपर्युक्तमन्त्रद्वये गौरवविषये यत्कथितं तदत्यल्पं कथनम्—महिममात्रस्यैव कथनम्। मनुष्योऽतो ज्यायान्। मनुष्यो भौतिकजगति समुन्नतिं करोति स एवास्य भौतिकजगतो राजा। परमिदं भौतिकं जगत् तस्य कार्यक्षेत्रस्य चतुर्थो भागः। मनुष्यस्य शक्तीनां चतुर्थभागेन सर्वेयं भौतिकी समुन्नतिः संभाव्यते। अवशिष्टेन भागेन मनुष्य (जीवात्मा) आध्यात्मिकेऽमृते प्रकाशमयजगति निवसति। अयमत्र सन्देशो यदुभयोरपि जगतोऽनुपातो मानजीवनेऽयं स्यात्—

एकपादः—त्रयः पादाः ($\frac{1}{4}$ : $\frac{3}{4}$) ॥३॥

**त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः**
**पादोऽस्येहाभवत्पुनः।**
**ततो विष्वङ् व्यक्रामत्**
**साशनानशने अभि ॥४॥**

सा०—योऽयं त्रिपात्पुरुषः संसाररहितो ब्रह्मस्वरूपः सोऽयमूर्ध्व उदैत्। अस्मादज्ञानकार्यात्संसाराद् बहिर्भूतोऽत्रत्यैर्गुणदोषैरस्पृष्ट उत्कर्षेण स्थितवान्। तस्यास्य सोऽयं पादो लेशः सोऽयमिह मायायां पुनरभवत्। सृष्टिसंहाराभ्यां

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



पुनः पुनरागच्छति । अस्य सर्वस्य जगतः परमात्मलेशत्वं भगवताप्युक्तम् । विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् । भ० गी० १०.४२ । इति । ततो मायायामागत्यनन्तरं विष्वङ् देवमनुष्यतिर्यगादिरूपेण विविधः सन् व्यक्रामत् । व्याप्तवान् । किं कृत्वा । साशनानशने अभिलक्ष्य । साशनं भोजनादिव्यवहारोपेतं चेतनं प्राणिजातम् अनशनं तद्रहितमचेतनं गिरिनद्यादिकम् । तदुभयं यथा स्यात्तथा स्वयमेव विविधो भूत्वा व्याप्तवानित्यर्थः ॥

द०—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

**पदार्थः**—(त्रिपात्) त्रयः पादा अंशा यस्य सः(ऊर्ध्वः) सर्वेभ्य उत्कृष्टः संसारात् पृथक् मुक्तिरूपः (उत्) (ऐत्) उदेति (पुरुषः) पालकः (पादः) एको भागः (अस्य) (इह) जगति (अभवत्) भवति (पुनः) पुनः पुनः (ततः) ततोऽनन्तरम् (विष्वङ्) यो विषु सर्वत्राञ्चति प्राप्नोति (वि) विशेषेण (अक्रामत्) व्याप्नोति (साशनानशने) अशनेन भोजनेन सह वर्त्तमानं साशनं न विद्यतेऽशनं यस्य तदनशनं साशनञ्चानशनञ्च ते प्राण्यप्राणिनौ ( अभि ) अभिलक्ष्य ॥४॥

**अन्वयः**—पूर्वोक्तस्त्रिपात्पुरुष ऊर्ध्व उदैत् । अस्य पाद इह पुनरभवत् । ततः साशनानशने अभि विष्वङ् सन् व्यक्रामत् ॥४॥

**भावार्थः**—अयं परमेश्वरः कार्यजगतः पृथगंशत्रयेण प्रकाशितः सन् एकांशस्वसामर्थ्येन सर्वं जगत्पुनः पुनरुत्पादयति पश्चात् तस्मिन् चराऽचरे जगति व्याप्य तिष्ठति॥४॥

**उवटः**—ऊर्ध्वं उपरिष्टात् उदैत् देदीप्यमानस्तिष्ठति । ···साशनं स्वर्गम् अनशनं मोक्षम् सर्वं जगत्स्वर्गं प्रति मोक्षं प्रति च तस्मादेवोत्पन्नमित्यर्थः ।

Gr.—With three-fourths Purusha went up : one-fourth of him again was here.

Thence he strode out to every side over what eats not and what eats.

**योगी**—तीन अंशों वाला पुरुष ऊपर उठा हुआ है (अथवा तीन अंश वाला उत्कृष्ट पुरुष ऊपर उठा हुआ है); पुनः इसका एक अंश यहाँ स्थित है । तदनन्तर वह भोजन करने वालों (चेतनों) तथा भोजन न करने वालों (अचेतनों) को अभिलक्षित करके सर्वत्र व्याप्त हुआ ॥४॥

विष्वङ्=विषु सर्वत्र अञ्चति गतिं करोति—अञ्च्—गतिपूजनयोः ।

पुरुषजीवनस्य पुरुषशक्तीनां च त्रयोंऽशा आध्यात्मिकजीवनलीना भवेयुः, एकोंऽशः सांसारिकजीवनस्य कृते समर्पणीयः । यस्याध्यात्मिकविकासो भवति सोऽल्पसमयेन यथेच्छसांसारिककार्याणि सफलतया करोति । दुर्बलो मनुष्यो द्वादशहोरा धावित्वाऽपि न तावद् गच्छति यावत् सबलो मनुष्यो होरामात्रं धावित्वा । यस्य जनस्याऽऽध्यात्मिकजीवनं पूर्णं भवति, तस्य समीपेऽक्षयाऽनन्ता वा शक्तिरस्ति । भौतिकजगत्यपि कार्यमत्यावश्यकं यत आध्यात्मिकशक्तिर्भौतिकजगन्माध्यमेनैव कार्यं विदधाति, परन्त्वनुपातः सर्वदाऽयं स्यात्—'आध्यात्मिकजीवनम् : भौतिकजीवनम् : : $\frac{3}{4}$ : $\frac{1}{4}$ । चतुराश्रमेष्वपि गृहस्थाश्रमः=$\frac{1}{4}$, अन्ये त्रय आश्रमा ब्रह्मचर्यवानप्रस्थसंन्यासरूपा आध्यात्मिकजीवनप्रतिनिधयः । नक्तन्दिवा चतुर्विंशति होरास्वपि षड् होरा भौतिकजीवनाय समर्पणीयाः ॥४॥

तस्माद्विराळजायत
विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत
पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

सा०—विष्वङ्व्यक्रामदिति यदुक्तं तदेवात्र प्रपञ्च्यते। तस्मादादिपुरुषाद्विराड्ब्रह्माण्डदेहोऽजायत । उत्पन्नः । विविधानि राजन्ते वस्तून्यत्रेति विराट् । विराजोऽधि विराड्देहस्योपरि तमेव देहमधिकरणं कृत्वा पुरुषस्तद्देहाभिमानी कश्चित्पुमानजायत । सोऽयं सर्ववेदान्तवेद्यः परमात्मा स्वयमेव स्वकीयया मायया विराड्देहं ब्रह्माण्डरूपं सृष्ट्वा तत्र जीवरूपेण प्रविश्य ब्रह्माण्डाभिमानी देवतात्मा जीवोऽभवत् । एतच्चाथर्वणिका उत्तरतापनीये विस्पष्टमामनन्ति । स वा एष भूतानीन्द्रियाणि विराजं देवताः कोशांश्च सृष्ट्वा प्रविश्यामूढो मूढ इव व्यवहरन्नास्ते माययैव । नृ० ता० २. १. ६. । इति । स जातो विराट् पुरुषोऽत्यरिच्यत । अतिरिक्तोऽभूत् । विराड्व्यतिरिक्तो देवतिर्यङ्मनुष्यादिरूपोऽभूत् । पश्चाद्देवादिजीवभावादूर्ध्वं भूमिं ससर्जेति शेषः । अथो भूमिसृष्टेरनन्तरं तेषां जीवानां पुरः ससर्ज । पूर्यन्ते सप्तभिर्धातुभिरिति पुरः शरीराणि ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


द०—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पदार्थः—(ततः) तस्मात्पूर्णादादिपुरुषात् (विराट्) विविधैः पदार्थैः राजते प्रकाशते विराट् ब्रह्माण्डरूपः (अजायत) जायते (विराजः) (अधि) उपरि अधिष्ठाता (पूरुष) परिपूर्णः परमात्मा (सः) (जातः) प्रादुर्भूतः (अति) (अरिच्यत) अतिरिक्तो भवति (पश्चात्) (भूमिम्) (अथो) (पुरः) पुरस्ताद्वर्त्तमानः ॥५॥

अन्वयः—हे मनुष्यास्ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः अथो स पुरो जातोऽत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिं जनयति तं विजानीत ॥

भावार्थः—परमेश्वरादेव सर्वं समष्टिरूपं जगज्जायते स च तस्मात्पृथग्भूतो व्याप्तोऽपि तत्कल्मषालिप्तोऽस्य सर्वस्याधिष्ठाता भवति । एवं सामान्येन जगन्निर्माणमुक्त्वा विशेषतया भूम्यादिनिर्माणं क्रमेणोच्यते ॥

Gr.— From him Virāj was born: again Purusha from Viraj was born.

As soon as he was born he spread eastward and westward o'er the earth.

योगी—उस(पुरुष)से विराट् प्रादुर्भूत हुआ, वह शक्तिशाली पुरुष विराट् का अधिष्ठाता है। प्रादुर्भूत हुआ हुआ वह (विराट्) पृथ्वी के पश्चाद् भाग तथा पुरोभाग (पीछे आगे अर्थात् सर्वत्र) में सबको अतिक्रान्त करके व्याप्त है ॥५॥

विराट्= वि राज् (राजृ) दीप्तौ । अत्यरिच्यत अति रिच् (रिचिर्) विरेचने, विरेके (वोपदेवः); रिच् वियोजनसंपर्चनयोः ।

विराट्=विशेषेण दीप्तिमान्, शक्तिवीर्यसंपन्नः । पुरुषः तपःसाधनया शक्तिवीर्यादिकं जनयति, पुनस्तत्सर्वं स्ववशे स्थापयित्वा जीवनयात्रां करोति—पूर्वं शक्तेः संग्रहस्तदनन्तरं तस्य रक्षणं सदुपयोगश्च । एतादृशो विराट्संपन्नः पुरुष एव महान् भवति तथा सर्वामपि पृथ्वीं व्याप्य तिष्ठति—असौ यदपि कर्तुं वाञ्छति करोति, प्राप्तुं वाञ्छति, प्राप्नोति । एतादृशस्य विराट्संपन्नस्य पुरुषस्य कीर्तिगीतानि सर्वस्यां पृथ्व्यां सर्वासु च दिक्षु गीयन्तेतराम् ॥५॥

यत्पुरुषेण हविषा
देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं
ग्रीष्म इध्म शरद्धविः ॥६॥

सा०—यद्यदा पूर्वोक्तक्रमेणैव शरीरेषूत्पन्नेषु सत्सु देवा उत्तरसृष्टिसिद्धयर्थं बाह्यद्रव्यस्यानुत्पन्नत्वेन हविरन्तरासम्भवात्पुरुषस्वरूपमेव मनसा हविष्ट्वेन सङ्कल्प्य पुरुषेण पुरुषाख्येन हविषा मानसं यज्ञमतन्वत अन्वतिष्ठन् तदानीमस्य यज्ञस्य वसन्तो वसन्तर्तुरेवाज्यमासीत् । अभूत् । तमेवाज्यत्वेन सङ्कल्पितवन्त इत्यर्थः । एवं ग्रीष्म इध्म आसीत् । तमेवेध्मत्वेन सङ्कल्पितवन्त इत्यर्थः । तथा शरद्धविरासीत् । तामेव पुरोडाशादिहविष्ट्वेन सङ्कल्पितवन्त इत्यर्थः । पूर्वं पुरुषस्य हविःसामान्यरूपत्वेन सङ्कल्पः । अनन्तरं वसन्तादीनामाज्यादिविशेषरूपत्वेन सङ्कल्प इति द्रष्टव्यम् ॥

द०—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पदार्थः—(यत्) यदा (पुरुषेण) पूर्णेन परमात्मना (हविषा) होतुमादातुमर्हेण(देवाः) विद्वांसः (यज्ञम्) मानसं ज्ञानमयम् (अतन्वत) तन्वते विस्तृण्वन्ति (वसन्तः) पूर्वाह्णः (अस्य) यज्ञस्य (आसीत्) अस्ति (आज्यम्) (ग्रीष्मः) मध्याह्नः (इध्मः) प्रदीपकः अर्द्धरात्रः (हविः) होतव्यं द्रव्यम् ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यद्धविषा पुरुषेण सह देवा यज्ञमतन्वत तदाऽस्य वसन्त आज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविरासीदिति यूयमपि विजानीत ।

भावार्थः—यदा बाह्यसामग्र्यभावे विद्वांसो सृष्टिकर्त्तुरीश्वरस्योपासनाख्यं मानसं ज्ञानयज्ञं विस्तारयेयुस्तदा पूर्वाह्णादिकाल एव साधनरूपेण कल्पनीयः ।

उवटः—तथा योगिनोऽपि पुरुषेणैवामूर्तभूतेन दीपितेनात्मना आत्मयज्ञं समधिकृतवन्तः । ...इतरयागे वसन्तशब्देन सात्त्विको गुण उच्यते । ग्रीष्मशब्देन राजसः । शरच्छब्देन तामसः । त्रयो हि गुणास्तत्रात्मयज्ञे योगिनो जुह्वतीति ।

Gr.—when Gods prepared the sacrifice with Purusha as their offering,

Its oil was spring, the holy gift was autumn, summer was the wood.

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



देवाः—या०—दैवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता। दुर्गः—ददात्यसौ ह्यैश्वर्यात्। दीपयत्यसौ तेजोमयत्वात्। द्योतनाद्वा—धात्वन्यत्वमर्थैकत्वम्।

ग्रीष्मः—या०—ग्रस्यन्तेऽस्मिन् रसाः। शरद्—या०—शृता अस्यामोषधयो भवन्ति शीर्णा आप इति वा

या०—'अथैतान्यग्निभक्तीनि—अयं लोकः, प्रातः सवनम्, वसन्तः.....।'

अथैतानीन्द्रभक्तीनि — अन्तरिक्षलोकः, माध्यंदिनं सवनम्, ग्रीष्मः...।'

इध्मः—या०—'इध्मः समिन्धनात्।...यज्ञेध्म इति कात्थक्यः अग्निरिति शाकपूणिः।

योगी—जब पुरुषरूप हवि से देवों ने यज्ञ का विस्तार किया, वसन्त इसका आज्य था, ग्रीष्म ईंधन और शरत् हवि ॥६॥

यज्ञः—व्याख्यातः पुरस्तात्। यदाऽयं मनुष्यो दिव्यशक्तीनां दिव्यभावनानां (देवानां) वा संमुखमात्मानं हवीरूपेण स्थापयति तदा संसारयज्ञः सफलो भवति। 'आसुरीं संपदं' विहाय 'दैव्याः संपदः' आश्रयणं कर्तव्यम् (दृश्यताम्, गीता १६. १-२१)। अनेनैव मनुष्यस्योन्नतिः। अस्मिन् हि मानवजीवनयज्ञे वसन्त आज्यं ग्रीष्म इध्मः शरच्च हविः। अधोलिखिततालिकयेदं स्पष्टीक्रियते—

वसन्तः—वसन्त ऋतुः, प्रभातकालः, शैशवम्, ब्रह्मचर्याश्रमः, ब्राह्मणः, सात्त्विको गुणः।

ग्रीष्मः—ग्रीष्म ऋतुः, मध्याह्नकालः, यौवनम्, गृहस्थाश्रमः, क्षत्रियः, राजसो गुणः।

शरद्—शरद् ऋतुः, सायंकालः, वार्द्धकम्, वानप्रस्थाश्रमः (तथा संन्यासाश्रमः), वैश्यः, तामसो गुणः।

यज्ञा बहुविधाः सन्ति 'एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे। (गीता) ॥६॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्
पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त
साध्या ऋषयश्च ये ॥७॥

यज्ञं यज्ञसाधनभूतं तं पुरुषं पशुत्वभावनया यूपे बद्धं बर्हिषि मानसे यज्ञे प्रौक्षन्। प्रोक्षितवन्तः। कीदृशमित्यत्राह। अग्रतः सर्वसृष्टेः पूर्वं पुरुषं जातं पुरुषत्वेनोत्पन्नम्। एतच्च प्रागेवोक्तं तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुष इति। तेन पुरुषरूपेण पशुना देवा अयजन्त। मानसयागं निष्पादितवन्त इत्यर्थः। के ते देवा इत्यत्राह। साध्याः सृष्टिसाधनयोग्याः प्रजापतिप्रभृतयः तदनुकूला ऋषयो मन्त्रद्रष्टारश्च ये सन्ति। ते सर्वेऽप्ययजन्तेत्यर्थः।

द०—पुनस्तमेव विषयमाह॥

पदार्थः—(तम्) उक्तम् (यज्ञम्) संपूजनीयम् (बर्हिषि) मानसे ज्ञानयज्ञे (प्र) प्रकर्षेण (औक्षन्) सिञ्चन्ति (पुरुषम्) पूर्णम् (जातम्) प्रादुर्भूतञ्जगत्कर्तारम् (अग्रतः) सृष्टेः प्राक् (तेन) तदुपदिष्टेन वेदेन (देवाः) विद्वांसः (अयजन्त) पूजयन्ति (साध्याः) साधनं योगाभ्यासादिकं कुर्वन्तो ज्ञानिनः (ऋषयः) मन्त्रार्थविदः (च) (ये)॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये देवाः साध्या ऋषयश्च यमग्रतो जातं यज्ञं पुरुषं बर्हिषि प्रौक्षन् त एव तेनायजन्त च तं यूयं विजानीत॥

भावार्थः—विद्वद्भिर्मनुष्यैः सृष्टिकर्तेश्वरो योगाभ्यासादिना सदा हृदयान्तरिक्षे ध्यातव्यः पूजनीयश्च॥

उवटः—तद्वदात्मयज्ञे बर्हिषा प्राणायामेन दीप्तिना तस्मिन् पुरुषो जातः। ज्ञानमुत्पन्नो दिव्यम्।...तेन देवा इन्द्रादयः साध्याश्च ऋषयश्च यथा अयजन्त। तथा देवा योगिनः कपिलादयश्च साध्यावस्थारे ऋषयः। ऋषयश्चाप्येतेनैव प्रणवाधिष्ठितेन पुरुषेणात्मयज्ञं कृतवन्त इति।

महीधरः—यज्ञसाधने यज्ञशब्दः।...मानसयागं निष्पादितवन्तः।...साध्याः सृष्टिसाधनयोग्याः प्रजापतिप्रभृतयः।

Gr.—They balmed as Victim on the grass Purusha born in earlier time.

With him the Deities and all Sadhyas and Rishis sacrificed.

बर्हिः—या० परिवर्हणात्। दु०—'परिच्छेदनात्। लून हि तद् भवति वृद्धं वा।' साध्याः—या०—साध्या

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



देवाः साधनात् । दु० ते हि सर्वमिदं साधयन्ति । यदन्येन सर्वकर्मभिरसाधितं तत्साधयन्तीति साध्या उच्यन्ते । ते च पुनः प्राणा विश्वसृज ऋषयो ये सहस्रसंवत्सरेण सत्रेणेदं विश्वमसृजन्त त एवैतेऽधिदैवं रश्मयः । विज्ञायते हि । प्राणा वै सप्त ऋषयः साध्या विश्वसृज' इति । ऋषयः—या०—साक्षात्कृतधर्माण ऋषयः; ऋषिर्दर्शनात् । दु०—'ऋषन्त्यमुष्मात् कर्मण एवमर्थवता मन्त्रेण संयुक्तादमुना प्रकारेणैवं लक्षणः फलविपरिणामो भवतीत्यृषयः ।

योगी—प्रथम जात (प्रादुर्भूत) उस पुरुष रूप यज्ञ को बर्हिः पर सिञ्चित किया । उसके द्वारा (उसके साथ) देव, साध्य तथा ऋषियों ने यज्ञ किया ॥७॥

यज्ञः—यज्—देवपूजासंगतिकरणदानेषु । प्रौक्षन्—प्र—उक्ष्—सेचने, वृषि (वोपदेवः), बर्हिः—वर्ह्+इस्—वर्ह्—परिभाषणहिंसादानेषु, प्राधान्ये । वर्ह्—स्तृतौ हिंसायां दाने वाचि (वोपदेवः), वर्ह् प्रयत्ने (काशकृत्स्नः), वर्ह्—परिभाषणहिंसाच्छादनेषु ।

एवंविधो मनुष्यो यज्ञरूपः । अयमेवाग्रजन्माऽग्रगण्यो वा । एतादृशा महात्मानो लोककल्याणायात्मबलिदानं कुर्वन्ति । दिव्यशक्तयः (देवाः) एषां जनानामेव बलिरूपेण संसारोत्कर्षयज्ञ उपयोगं कृत्वा संसारचक्रं प्रचालयन्ति । एषां जीवनं बर्हिर्वत् पवित्रं भवति । देवाः साध्या ऋषयश्चैतादृशानां जनानां साहाय्येन विश्वकल्याणयज्ञं विदधति । ये साधयितुं योग्यास्ते साध्याः । इमे सामान्यजनानां कृते जीवने साध्यरूपेण (लक्ष्यरूपेण) भवन्ति । इमे सर्वे देवाः साध्या ऋषयश्च प्रेरणामेव ददति । अस्याः प्रेरणायाः क्रियात्मकरूपमापादयति महापौरुषसंपन्नो राम-कृष्ण-राणाप्रताप-शिवाजी-गुरुगोविन्दसिंह-तिलक-सुभाषचन्द्रवसु-सदृशो विशिष्टतपस्तेजोमयो विराट् पुरुष एव॥७॥

**तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः**
**सम्भृतं पृषदाज्यम् ।**
**पशून्तांश्चक्रे वायव्या-**
**नारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥८॥**

सा०—सर्वहुतः । सर्वात्मकः पुरुषो यस्मिन्यज्ञे हूयते सोऽयं सर्वहुत् । तादृशात्तस्मात्पूर्वोक्तान्मानसाद्यज्ञात्पृषदाज्यं दधिमिश्रमाज्यं सम्भृतम् । सम्पादितम् । तथा चेत्येवमादिभोग्यजातं सर्वं सम्पादितमित्यर्थः । तथा वायव्यान्वायुदेवताकाँल्लोकप्रसिद्धानारण्यान्पशूंश्चक्रे । उत्पादितवान् । आरण्या हरिणादयः । तथा ये च ग्राम्या गवाश्वादयः तानपि चक्रे । पशूनामन्तरिक्षद्वारा वायुदेवत्यत्वं यजुर्ब्राह्मणे समाम्नायते । वायवः स्थेत्याह वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः । अन्तरिक्षदेवत्याः खलुर्वै पशवः । वायव एवैनान्परिददाति । तै० ब्रा० ३.२.१.३ । इति ।

द०—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

(तस्मात्) पूर्वोक्तात् (यज्ञात्) पूजनीयात् पुरुषात् (सर्वहुतः) सर्वं हूयत आदीयते तस्मात् (सम्भृतम्) सम्यक् सिद्धं जातम्(पृषदाज्यम्) दध्याज्यादि भोज्यं वस्तु (पशून्) (तान्) (चक्रे) करोति (वायव्यान्) वायुवद्गुणान् (आरण्याः) अरण्ये भवाः सिंहादयः (ग्राम्याः) ग्रामे भवा गवादयः (च) (ये) ॥८॥

**अन्वयः**—हे मनुष्यास्तस्मात्सर्वहुतो यज्ञात्सर्वं पृषदाज्यं सम्भृतं च आरण्या ग्राम्याश्च तान् वायव्यान् पशून् यश्चक्रे तं विजानीत ॥

**भावार्थः**—येन सर्वैर्ग्रहीतव्येन पूज्येन जगदीश्वरेण सर्वजगद्धिताय दध्यादिभोग्यं वस्तु ग्रामस्था वनस्थाश्च पशवो निर्मितास्तं सर्व उपासीरन् ॥८॥

**उवटः**—एवमात्मयज्ञात् सर्वहुतात् शरीरात् योगिनः सर्वान् पशून् सर्वाणि भूतजातानि करतलवत् पश्यन्ति किल ज्ञानतेजसा भूतजातानि ।

**महीधरः**—सर्वं हूयते यस्मिन् स सर्वहुत् ।

Gr.—From that great general sacrifice the dripping fat was gathered up.

He formed the creatures of the air, and animals both wild and tame.

**पृषतः**—दु० प्रुष स्नेहने, तस्य पृषतः ।

**योगी**—उस सर्वहुत (जिसमें सब कुछ आहुति रूप से डाला गया है, अथवा जिस यज्ञ में सर्वजनहिताय आहुति डाली गई है) यज्ञ पुरुष से (अथवा उसके हेतु) सम्पूर्ण पृषदाज्य संभृत किया गया । उस पुरुष ने वायव्य [illegible] पशुओं को कार्यसमर्थ बनाया ॥८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



**पृषदाज्यम्**—पृषत्—पृष् सेचने; हिंसा संक्लेशनदानेषु —इति काश्यपः, गतौ (काशकृत्स्नः)। पर्षान्=सञ्चितान् पूलान् (दुर्गाचार्यः)। आज्यम् —आ+अञ्ज्+क्यप् —अञ्ज् (अञ्चू) व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु; अञ्ज् (अजि) भासार्थः।

एवं पृषदाज्यम्=१. स्वादिष्ठपौष्टिकभोजनं भौतिकमाध्यात्मिकं च २. (१) पृषत्=आनन्द (२) आज्यम्=पुष्टिः।

यदैतादृशो यज्ञो भवति यन्मनुष्य आत्महवनं (आत्मत्यागं) करोति, तदा महती सांसारिकी (भौतिकी, वैज्ञानिकी) तथाऽऽध्यात्मिकी समुन्नतिर्भवति। एतादृशो महापुरुषः सर्वजनहिते रतस्तिष्ठति, तथा चाभ्युदयनिःश्रेयसयोः सामञ्जस्यं करोति। सर्वेषां कृते विविधा रसमयी पुष्टिस्तेन संपाद्यते। मानवानां तु कथैव का, पशूनां कृतेऽप्यसौ सुखसाधनानि समुपस्थितानि विदधाति। बलिवैश्वदेवयज्ञ एतद्विषयक एव। मनुष्यस्य जीवनं पशुपक्षिभिः (अश्व-श्व-गो-मृग-मयूरादिभिः)सहैव पूर्णं भवति। एतेषामपि पूर्णता मनुष्येण सहैव। दधिक्रा (=अश्व) शब्दस्य यास्केन निरुक्तिः प्रस्तुता — 'दधदाकारी भवतीति। कालिदासे सर्वत्र पशुपक्षिभिः सह मानवस्नेहसम्बन्धचर्चा (द्रष्टव्यतामस्मिन्नेव सूक्ते पुरस्तात्)।

एतादृशः सर्वप्राणिहितकारी मनुष्यः सर्वत्रैकात्मदर्शनं करोति ॥८॥

**तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत**
**ऋचः सामानि जज्ञिरे।**
**छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्**
**यजुस्तस्मादजायत ॥९॥**

**सा०**—सर्वहुतस्तस्मात्पूर्वोक्ताद्यज्ञादृचः सामानि जज्ञिरे। उत्पन्नाः। तस्माद्यज्ञाच्छन्दांसि गायत्र्यादीनि जज्ञिरे। तस्माद्यज्ञाद्यजुरप्यजायत ॥

**द०**—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

**पदार्थः**— तस्मात् (पूर्णात्) (यज्ञात्) पूजनीयतमात् (सर्वहुतः) सर्वे जुह्वति सर्वं समर्पयन्ति वा यस्मै (ऋचः) ऋग्वेदः (सामानि) सामवेदः (जज्ञिरे) जायन्ते (छन्दांसि) अथर्ववेदः (जज्ञिरे) (तस्मात्) परमात्मनः (यजुः) यजुर्वेदः (तस्मात्) (अजायत) जायते।

**अन्वयः**—हे मनुष्या युष्माभिस्तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः परमात्मन ऋचः सामानि जज्ञिरे तस्माच्छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुरजायत स विज्ञातव्यः ॥

**भावार्थः**—हे मनुष्या भवन्तो यस्मात्सर्वे वेदा जायन्ते तं परमात्मानमुपासीरन् वेदादेवाधीयीरन्तदाज्ञानुकूलं च वर्तित्वा सुखिनो भवन्तु ॥९॥

**उवटः**—एवमात्मयज्ञे प्रणवेन दीपिते स्वयमेव ज्ञानादधिष्ठितानि भवन्ति।

Gr.—From that great general sacrifice Richas and Sāma hymns were born :

Therefrom were spells and charms produced; the yajus had its birth from it.

**ऋचः**—या० ऋगर्चनी। 'यद्वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तद् यद् ऋचा तद् दृढम्'—तै० सं० ६.५. १०.३। 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्'—ऋ० १.१६४.३९। 'ऋच एवातितरां पिहितार्थाः' — दुर्गः। साम—या० 'सम्मितगृचा'। छन्दांसि—या० 'छादनात्'। यजुः—या० 'यजतेः'।

**योगी**—उस सर्वहुत यज्ञ से(अथवा उनके हेतु)ऋचाएँ तथा साम प्रादुर्भूत हुए, छन्दस् उससे प्रादुर्भूत हुए, यजुः उससे प्रादुर्भूत हुआ ॥९॥

जज्ञिरे—जन् (जनी) प्रादुर्भावे।

अष्टममन्त्रे विशेषकरेण भौतिकजगतश्चर्चा। नवममन्त्रे साहित्यिकाध्यात्मिकादिजगतां चर्चा।

ऋचः=शास्त्रीयज्ञानम्; सामानि = आध्यात्मिकसाक्षात्कारः; छन्दांसि=काव्यम्; यजुः=लौकिककर्मजातम्, कर्मकाण्डम् इत्यादि।

अस्य सर्वविधज्ञानस्याविर्भावो महापुरुषाणां हृद्येव भवति—'सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा (नासदीयसूक्तम्)।

सृष्ट्याः प्रारम्भ ऋषीणां हृदये विभिन्नज्ञानप्रादुर्भावो जातः।

ऋषीणां विषये भवभूतिः कथयति — 'ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।' युगे युगे महापुरुषा जायन्ते येषां वाग् विश्वमार्गप्रदर्शिका भवति ॥९॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


**तस्मादश्वा अजायन्त**
**ये के चोभयादतः ।**
**गावो ह जज्ञिरे तस्मात्**
**तस्माज्जाता अजावयः ॥१०॥**

**सा०**—तस्मात्पूर्वोक्ताद्यज्ञादश्वा अजायन्त । उत्पन्नाः । तथा ये के चाश्वव्यतिरिक्ता गर्दभा अश्वतराश्चोभयादत ऊर्ध्वाधोभागयोरुभयोर्दन्तयुक्ताः सन्ति तेऽप्यजायन्त । तथा तस्माद्यज्ञाद् गावश्च जज्ञिरे । किञ्च तस्माद्यज्ञादजावयश्च जाताः ॥

**पदार्थः**—(तस्मात्)परमेश्वरात्(अश्वाः)तुरङ्गाः (अजायन्त) उत्पन्नाः, (ये) (के) (च) गर्दभादयः (उभयादतः) उभयोरधऊर्ध्वभागयोर्दन्ता येषान्ते (गावः) धेनवः । गाव इत्युपलक्षणमेकदताम् (ह) किल (जज्ञिरे)उत्पन्नाः(तस्मात्) (जाताः) उत्पन्नाः (अजावयः) अजाश्चावयश्च ते॥

**अन्वयः**—हे मनुष्या युष्माकमश्वा ये के चोभयादतः सन्ति ते तस्मादजायन्त । तस्माद्गावो ह जज्ञिरे तस्मादजावयो जाता इति वेद्यम् ॥

**भावार्थः**—हे मनुष्या यूयं गवाश्वादयो ग्राम्याः सर्वे पशवो यस्मात्सनातनात्पूर्णात्पुरुषादेवोत्पन्नास्तस्याज्जोल्लङ्घनं कदापि मा कुरुत ॥१०॥

Gr.—From it were horses born, from it all cattle with two rows of teeth.

From it were generated kine, from it the goats and sheep were born.

**अश्वाः**—या० —अश्नुतेऽध्वानम्, महाशनो भवतीति वा । गावः— या० गौः—इति पृथिव्या नामधेयम् । यद् दूरं गता भवति । यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति । गातेर्वौकारो नामकरणः । अथापि पशुनाम भवत्येतस्मादेव । आदित्योऽपि गौरुच्यते । सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते । **अजाः**—या०—अजनाः । अज एकपाद्—या०'अजन एकः पाद एकेन पादेन पातीति वैकेन पादेन पिबतीति वैकोऽस्य पाद इति वा ।' दुर्गः—स पुनरादित्यो नित्यम् 'अजनो' गमनः ।

योगी—उससे (अथवा उसके हेतु) अश्व जनित हुए तथा वे जनित हुए जिनकी ऊर्ध्व तथा अधोभाग दोनों में दांतों की पङ्क्तियां हैं, उसके हेतु गौएं जनित हुईं तथा उसके हेतु अज (अथवा अजाएं) और अवि जनित हुए ॥१०॥

**अजः(एकपाद्)**—सूर्यः । **अविः**=स्वामी, सूर्यः, वायुः, पर्वतः—इत्यादयः । **अजः**—अज् गतिक्षेपणयोः । **अविः**—अव्—रक्षणाद्यष्टादशार्थाः (दृश्यतां पुरस्तात्)

तस्मादिति हेतौ पञ्चमी, तस्य पुरुषस्य कारणात्, तस्य हितसाधनाय सर्वेषामेषां जननम् । अथवा स एव वस्तुतः सफलजन्मा मनुष्यो यस्य गृहेऽश्वादयो भवन्ति तथा यस्तेषां जननपोषणपालनादिव्यवस्थां करोति । एतान् गृहपशून् विना मनुष्यस्य विकासो न भवति—स पुरुष इति न संपद्यते ॥१०॥

**यत्पुरुषं व्यदधुः**
**कतिधा व्यकल्पयन् ।**
**मुखं किमस्य कौ बाहू**
**का ऊरू पादा उच्येते ॥११॥**

**सा०**—प्रश्नोत्तररूपेण ब्राह्मणादिसृष्टिं वक्तुं ब्रह्मवादिनां प्रश्ना उच्यन्ते । प्रजापतेः प्राणरूपा देवा यद्यदा पुरुषं विराड्रूपं व्यदधुः सङ्कल्पेनोत्पादितवन्तः तदानीं कतिधा कतिभिः प्रकारैर्व्यकल्पयन् । विविधं कल्पितवन्तः । अस्य पुरुषस्य मुखं किमासीत् । कौ बाहू अभूताम् । का ऊरू । कौ च पादावुच्येते । प्रथमं सामान्यरूपः प्रश्नः पश्चान्मुखं किमित्यादिना विशेषविषयाः प्रश्नाः ॥

द०—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

**पदार्थः**—(यत्) यम् (पुरुषम्) पूर्णम् (वि) विविधप्रकारेण (अदधुः) धरन्ति (कतिधा) कतिप्रकारैः (वि) विशेषेण (अकल्पयन्) कथयन्ति (मुखम्) मुखस्थानीयं श्रेष्ठम् (किम्) (अस्य) पुरुषस्य (आसीत्) अस्ति (किम्) बाहू भुजबलं (किम्) (ऊरू) जानुन ऊर्ध्वावयवस्थानीयम् (पादौ) नीचस्थानीयम् (उच्येते) ॥

**अन्वयः**—हे विद्वांसो भवन्तो यद्यं पुरुषं कतिधा व्यदधुस्तं कतिधा व्यकल्पयन्नस्य सृष्टौ मुखं किमासीद् बाहू किमुच्येते । ऊरू पादौ च किमुच्येते ॥

**भावार्थः**—हे विद्वांसोऽत्र संसारेऽसङ्ख्यं सामर्थ्यमीश्वरस्यास्ति तत्र समुदाये मुखमुत्तमाङ्गं बाह्वादीनि चाङ्गानि कानि सन्ति इति ब्रूत ॥११॥

Gr.—when they divided Purusha how many portions did they make ?

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



what do they call his mouth, his arms ? what do they call his thighs and feet ?

बाहू=या०—प्रबाधत आभ्यां कर्माणि ।

ऊरू=या०—वरतममङ्गमूरू ।

पादः—या०—पद्यतेः ।

योगी—जब पुरुष का विधान (व्यवस्था) किया [तब] कितने प्रकार से उसके विशेष सामर्थ्य की योजना की । उसका मुख क्या (किस गुण से संपन्न), बाहें क्या तथा जङ्घाएं और पांव क्या कहलाते हैं ॥११॥

व्यकल्पयन्—वि—क्लृप्—सामर्थ्ये ।

अत्रेयं जिज्ञासा यन्मनुष्यस्य विभिन्नानामङ्गानां शरीरे का स्थितिः, के गुणाः, किं कार्यमिति केनाङ्गेन कीदृशं कार्यं गृहीत्वा मनुष्यः पुरुषो भवति ॥११॥

**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्**
**बाहू राजन्यः कृतः ।**
**ऊरू तदस्य यद्वैश्यः**
**पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥**

सा०—इदानीं पूर्वोक्तानां प्रश्नानामुत्तराणि दर्शयति । अस्य प्रजापतेर्ब्राह्मणो ब्राह्मणत्वजातिविशिष्टः पुरुषो मुखमासीत् । मुखादुत्पन्न इत्यर्थः । योऽयं राजन्यः क्षत्रियत्वजातिमान्पुरुषः स बाहू कृतः । बाहुत्वेन निष्पादितः । बाहुभ्यामुत्पादित इत्यर्थः । तत्तदानीमस्य प्रजापतेर्यदूरू तद्रूपो वैश्यः सम्पन्नः । ऊरुभ्यामुत्पन्न इत्यर्थः । तथास्य पद्भ्यां पादाभ्यां शूद्रः शूद्रत्वजातिमान्पुरुषोऽजायत । इयं च मुखादिभ्यो ब्राह्मणादीनामुत्पत्तिर्यजुःसंहितायां सप्तमकाण्डे च मुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत । तै० सं० ७. १. १. ४ । इत्यादौ विस्पष्टमाम्नाता । अतः प्रश्नोत्तरे उभे अपि तत्परतयैव योजनीये ॥

द०—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पदार्थः—(ब्राह्मणः) वेदेश्वरविदनयोः सेवक उपासको वा (अस्य) ईश्वरस्य (मुखम्) मुखमिवोत्तमः (आसीत्) अस्ति (बाहू) भुजाविव बलवीर्य्ययुक्तः (राजन्यः) राजपुत्रः (कृतः) निष्पन्नः (ऊरू) ऊरू इव वेगादिकर्मकारी (तत्) (अस्य) (यत्) (वैश्यः) यो यत्र तत्र विशति प्रविशति तदपत्यम् (पद्भ्याम्) सेवानिरभिमानाभ्याम् (शूद्रः) मूर्खत्वादिगुणविशिष्टो मनुष्यः (अजायत) जायते ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासवो यूयमस्य सृष्टौ ब्राह्मणो मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतो यदूरू तदस्य वैश्य आसीत्पद्भ्यां शूद्रोऽजायतेत्युत्तराणि यथाक्रमं विजानीत

भावार्थः—ये विद्याशमदमादिषूत्तमेषु गुणेषु मुखमिवोत्तमास्ते ब्राह्मणाः । येऽधिकवीर्य्या बाहुवत्कार्य्यसाधकास्ते क्षत्रियाः । ये व्यवहारविद्याकुशलास्ते वैश्या ये च सेवायां साधवो विद्याहीनाः पादाविव मूर्खत्वादिनीचगुणयुक्तास्ते शूद्राः कार्य्या मन्तव्याश्च ॥२॥

Gr. The Brāhman was his mouth, of both his arms was the Rājanya made.

His thighs became the Vaiśya, from his feet the Sudra was produced.

योगी—ब्राह्मण इस का मुख था, राजन्य (क्षत्रिय) बाहों के रूप में किया गया । जो वैश्य है वह इसकी जङ्घाओं के रूप में है, पांवों से शूद्र प्रादुर्भूत हुआ ॥१२॥

मानवशरीरमपि समाजशरीरवच्चतुर्भागयुक्तम्—मुखं ब्राह्मणो बाहू राजन्य ऊरू वैश्यः पादौ च शूद्रः । तात्पर्यमिदं यद् यस्य मनुष्यस्य शरीरे चतुर्ष्वेष्ववयवेषु ब्राह्मणादीनां गुणा भवन्ति स एव पुरुषः । १—विचारशक्तिस्त्यागश्च, २—बलं क्षताद् दुःखितानां त्राणश्च, ३—भौतिकसंपत्तेरर्जनं, ४—घोरपरिश्रमः—इमे चत्वारो गुणाः मनुष्यं पुरुषपदभाजं कुर्वन्ति ॥१२॥

**चन्द्रमा मनसो जात-**
**श्चक्षोः सूर्यो अजायत ।**
**मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च**
**प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥**

सा०—यथा दध्याज्यादिद्रव्याणि गवादयः पशव ऋगादिवेदा ब्राह्मणादयो मनुष्याश्च तस्मादुत्पन्ना एवं चन्द्रादयो देवा अपि तस्मादेवोत्पन्ना इत्याह । प्रजापतेर्मनसः सकाशाच्चन्द्रमा जातः । चक्षोश्च चक्षुषः सूर्योऽप्यजायत । अस्य मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च देवावुत्पन्नौ । अस्य प्राणाद्वायुरजायत ॥

द०—पदार्थः—(चन्द्रमाः) चन्द्रलोकः (मनसः) मननशीलात्सामर्थ्यात् (जातः) (चक्षोः) ज्योतिःस्वरूपात् (सूर्यः) सूर्यलोकः (अजायत) जातः (श्रोत्राद्) श्रोत्रावकाशरूपसामर्थ्यात् (वायुः) (च) आकाशप्रदेशाः (प्राणः)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



जीवननिमित्तः (च) (मुखात्) मुख्यज्योतिर्मयाद्भक्षणरूपात् (अग्निः) पावकः (अजायत) ॥१३॥

**अन्वयः**—हे मनुष्या अस्य ब्रह्मणः पुरुषस्य मनसश्चन्द्रमा जातश्चक्षोः सूर्य्योऽजायत श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायतेति बुध्यध्वम् ॥

**भावार्थः**—यदिदं सर्वं जगत्कारणादीश्वरेणोत्पादितं वर्त्तते तत्र चन्द्रलोको मनःस्वरूपः सूर्य्यश्चक्षुस्थानी वायुः प्राणश्च श्रोत्रवन्मुखमिवाग्निलोमवदोषधिर्वनस्पतयो नाडीवन्नद्योऽस्थिवत्पर्वतादिर्वर्त्तत इति वेदितव्यम् ॥१३॥

Gr.—The moon was gendered from his mind, and from his eye the Sun had birth;

Indra and Agni from his mouth were born and Vayu from his breath.

**चन्द्रमाः**—या० चायन् द्रमति । चन्द्रो माता । चान्द्रं मानमस्येति वा । चन्द्रश्चन्दतेः कान्तिकर्मणः । चन्दनमित्यप्यस्य भवति । चारु द्रमति । चिरं द्रमति । चमेर्वा पूर्वम् । चारु रुचेर्विपरीतस्य । **मनः**—या० मनोतेः । **चक्षुः**—या० ख्यातेर्वा चष्टेर्वा । **सूर्यः**—या०—सर्तेर्वा सुवतेर्वा स्वीर्यतेर्वा । **वायुः**—या० वातेर्वेतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः । एतेरिति स्थौलाष्ठीविरनर्थको वकारः ।

**योगी**—चन्द्रमा मन से प्रादुर्भूत हुआ, चक्षु से सूर्य प्रादुर्भूत हुआ, मुख से इन्द्र और अग्नि, प्राण से वायु प्रादुर्भूत हुआ ॥१३॥

अस्य व्याख्याऽग्रिममन्त्रव्याख्यायामस्ति ।

**नाभ्या आसीदन्तरिक्षं**
**शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।**
**पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्**
**तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१४॥**

**सा०**—यथा चन्द्रादीन्प्रजापतेर्मनःप्रभृतिभ्योऽकल्पयन् तथान्तरिक्षादीँल्लोकान्प्रजापतेर्नाभ्यादिभ्यो देवा अकल्पयन् । उत्पादितवन्तः । एतदेव दर्शयति नाभ्याः प्रजापतेर्नाभेरन्तरिक्षमासीत् । शीर्ष्णः शिरसो द्यौः समवर्तत । उत्पन्ना । अस्य पद्भ्यां पादाभ्यां भूमिरुत्पन्ना । अस्य श्रोत्राद्दिश उत्पन्नाः ॥

**द०**—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

**पदार्थः**— (नाभ्याः) अवकाशमयान्मध्यवर्त्तिसामर्थ्यात् (आसीत्) अस्ति (अन्तरिक्षम्) मध्यवर्त्याकाशम् (शीर्ष्णः) शिर इवोत्तमसामर्थ्यात् (द्यौः) प्रकाशयुक्तलोकः (सम्) (अवर्त्तत) (पद्भ्याम्) पृथिवीकारणरूपसामर्थ्यात् (भूमिः) (दिशः) पूर्वाद्याः (श्रोत्रात्) अवकाशमयात् (तथा) तेनैव प्रकारेण (लोकान्) (अकल्पयन्) कथयन्ति ।

**अन्वयः**—हे मनुष्या यथाऽस्य नाभ्या अन्तरिक्षमासीच्छीर्ष्णो द्यौः पद्भ्यां भूमिः समवर्त्तत श्रोत्राद्दिशोऽकल्पयँस्तथाऽन्यांल्लोकानुत्पन्नान् विजानीत ।

**भावार्थः**—हे मनुष्या यद्यदत्र सृष्टौ कार्य्यभूतं वस्तु वर्त्तते तत्तत्सर्वं विराडाख्यस्य कार्यकारणस्याऽवयवरूपं वर्त्तते इति वेद्यम् ॥१४॥

Gr.—Forth from his navel came mid-air; the sky was fashioned from his head ;

Earth from his feet, and from his ear the regions. Thus they formed the worlds.

**नाभिः**—या०—संनहनात् । 'नाभ्या सन्नद्धा गर्भा जायन्ते' इत्याहुः । एतस्मादेव ज्ञातीन् सनाभय इत्याचक्षते । अन्तरिक्षम्—या०— अन्तरा क्षान्तं भवति । अन्तरेमे इति वा । शरीरेष्वन्तरक्षयमिति वा । द्यौः—या०—द्योतनात् ।

**योगी**—इस (पुरुष) की नाभि से अन्तरिक्ष सत्ता में आया, सिर से द्युलोक सम्यक् प्रकार से आवर्तित हुआ, पांवों से भूमि, श्रोत्र से दिशाएं—उस प्रकार लोकों को सामर्थ्ययुक्त किया ॥१४॥

अस्मिन् मन्त्रद्वय इदं स्पष्टीकृतं यन्मनुष्यः स्वविभिन्नशक्तीनां विकासं कथं करोतु । अत्रालङ्कारिकवर्णनैः सर्वमुपन्यस्तम् । मनश्चन्द्रवत् स्यात् सुशीतलमन्धकारेऽपि ज्योतिर्मयमाह्लादमयं च (चदि-आह्लादे) । चन्द्रवच्चैव मनो वर्द्धते क्षीणं च भवति । चक्षुषी सूर्यवत्तेजोमये स्याताम् । प्रभातकाले च सूर्यालोकसेवनेन चक्षुर्ज्योतिर्वृद्धिर्भवतीति चिकित्साशास्त्रविदः प्रतिपादयन्ति । एतदतिरिक्तं प्रकाशो ज्ञानस्य प्रतिनिधिः—चक्षुषी ज्ञानमये स्याताम् । मुखं वाण्याः प्रतिनिधिः । मानवस्य वाणी सदैवाग्निवत् तेजोमयी समुज्ज्वला च स्यात् तथा चैवं शक्तिमती स्यात् यदग्निवद् दाहं करोत्वज्ञानस्य । अग्नि-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



ज्ञानस्य सङ्कल्पशक्तेश्च प्रतिनिधिः। सङ्कल्पशक्तिसंपन्ना वाणी ( सरस्वती ) अग्रे नयति (अग्निः=अग्रणीः—निरुक्तम्) प्राणानां वायुना सह सम्बन्धस्तु स्पष्ट एव। मनुष्यस्य प्राणा एवं सशक्ताः स्युर्यदसौ सर्वत्रगतिकः स्यात् तथा सुदूरादपि गन्धजातं (गुणगणं) गृहीत्वा स्वात्मनि समादधातु ( वा—गतिगन्धनयोः )। नाभिरन्तरिक्षवद् सर्वव्यापिनी स्यात्। मनुष्यस्योदरस्य विश्वस्योदरेण सह तादात्म्यं स्यात्। नासौ केवलं स्वोदरपूरणरतः स्यात् परन्तु सर्वेषामुदरपूर्त्यर्थमुद्यतः स्याद् विश्वम्भरो भवेत् तथा च तस्य नाभिरन्तर्क्षीणा स्यान्नासौ स्थूलोदरो भवेत्—लोभी भूत्वा संग्रहं न करोतु। मनुष्यस्य शिरो द्युलोकवत्प्रकाशमयं ज्ञानालोकपूर्णं भवतु। मनुष्यस्य चरणा एवं गतिपरायणौ भवतां यत्सर्वाऽपि पृथ्वी ताभ्यां मीयेत—'वसुधैव कुटुम्बकमि'ति तस्य जीवनादर्शः स्यात्। मनुष्यस्य श्रोत्रे सदा श्रुतिपरे स्यातां ज्ञानसंग्रहतत्परे स्यातां सुदूरप्रदेशेभ्यो विविधज्ञानविज्ञानार्जनं च कुरुताम्। एवं कृते सति मनुष्यो विलोकनीयो भवति—पुरुष इति संपद्यते॥ १३-१४॥

सप्तास्यासन्परिधय-
स्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना
अबध्नन्पुरुषं पशुम्॥१५॥

सा०—अस्य साङ्कल्पिकयज्ञस्य गायत्र्यादीनि सप्त च्छन्दांसि परिधय आसन्। ऐष्टिकस्याहवनीयस्य त्रयः परिधय उत्तरवेदिकास्त्रय आदित्यश्च सप्तमः परिधिप्रतिनिधिरूपः। अत एवाम्नायते। स पुरस्तात्परिदध्यादित्यादित्यो ह्येवोद्यन्पुरस्ताद्रक्षांस्यपहन्तीति। तत एत आदित्यसहिताः सप्त परिधयोऽत्र सप्तच्छन्दोरूपाः। तथा समिधस्त्रिः सप्त त्रिगुणीकृतसप्तसङ्ख्याका एकविंशतिः कृताः। द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः। तै० सं० ५.१.१०.३। इति श्रुताः पदार्था एकविंशतिदारुयुक्तेन्धनत्वेन भाविताः। यद्यः पुरुषो वैराजोऽस्ति तं पुरुषं देवाः प्रजापतिप्राणेन्द्रियरूपा यज्ञं तन्वाना मानसं यज्ञं तन्वानाः कुर्वाणाः पशुमबध्नन्। विराट्पुरुषमेव पशुत्वेन भावितवन्तः। एतदेवाभिप्रेत्य पूर्वत्र यत्पुरुषेण हविषेत्युक्तम्॥

द०—पुनस्तमेव विषयमाह॥

पदार्थः—(सप्त) गायत्र्यादीनि छन्दांसि(अस्य)यज्ञस्य (आसन्) सन्ति (परिधयः) परितः सर्वतः सूत्रवद्धीयन्ते ये ते (त्रिः) त्रिवारम्(सप्त)एकविंशतिः—प्रकृतिः, महत्तत्वं, अहंकारः, पञ्च सूक्ष्मभूतानि, पञ्च स्थूलानि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो गुणाश्चेत्येकविंशतिः (समिधः) सामग्रीभूताः ( कृताः ) निष्पादिताः (देवाः) विद्वांसः (यत्) यम् (यज्ञम्) मानसं ज्ञानमयम् (तन्वानाः) विस्तृणवन्तः (अबध्नन्) बध्नन्ति (पुरुषम्) परमात्मानम् (पशुम्) द्रष्टव्यम्॥१५॥

Gr.—Seven fencing-sticks had he, thrice seven layers of fuel were prepared.

When the Gods, offering sacrifice, bound, as their victim, Purusha.

सप्त—या० सप्तपुत्रं सप्तमपुत्रं सर्पणपुत्रमिति वा सप्त सृप्ता संख्या। परिधिः—दु० परिधारयिता। पशुः—या० पश्यतेः।

योगी—इसकी सात परिधियाँ थीं, इक्कीस (७×३) समिधाएँ बनाई गईं, जब यज्ञ का विस्तार करते हुए देवों ने पुरुष को पशु के रूप में बाँधा॥१५॥

परिधिः—परि धा ( डुधाञ् धारणपोषणयोः )। समिधः—सम् इन्ध् (ञिइन्धी दीप्तौ)। पशुः—पश्—बाधनस्पर्शयोः; बाधे ग्रन्थे च (वोपदेवः)।

मनुष्यस्य जीवनयज्ञे सप्त परिधयः सन्ति। इम एव सप्त होतार इति कथ्यन्ते—'येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ यजुर्वेदः ३४.४॥ मनुष्यस्य जीवनयज्ञे सप्त होतारः=पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि मनो बुद्धिश्च। अयमेव भावो यजुर्वेदस्याधोलिखितमन्त्रेऽस्ति—

'सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयु-
स्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥
(य० ३४.५५)

अस्य व्याख्यायां यास्कः—अथाध्यात्मं सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे षळिन्द्रियाणि विद्यासप्तम्यात्मनि··· सत्रसदौ च देवौ प्राज्ञश्चात्मा तैजसश्च।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


अथवा मनुष्यस्य कृते सप्त मर्यादास्तस्य सप्त परिधयः—

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षु-
स्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ॥

ऋ० १०.५.६

अत्र सायणः— "पानमक्षाः स्त्रियो मृगया दण्डः पारुष्यमन्यदूषणमिति सप्त मर्यादाः। यद्वा 'स्तेयं गुरुतल्पारोहणं ब्रह्महत्यां सुरापानं दुष्कृतकर्मणः पुनः पुनः सेवां पातकेऽनृतोद्यम्—नि० ६.२७'।"

त्रिःसप्त समिधः कृताः—सप्तेन्द्रियाणां प्रदीपनाय (विकासाय) त्रिःसप्त समिध इष्यन्ते। सत्त्वं रजस्तमश्चेति त्रयो गुणाः समये समये विभिन्नानुपातेष्विष्यन्ते।

अस्मिन् जीवनयज्ञे पुरुषः (मानवात्मा) दिव्यशक्तिभिर्नियन्त्रितः स्यात् - पशुवद् बद्धः स्यात्—यमनियमरज्जुभिः पशुवद् बद्धः एव पुरुषो गुरुधूर्वहनसमर्थो भवति।

देवैः पशुवद् बद्धः पुरुषः=दैव्या संपदा संपन्नो मनुष्यः ॥१५॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा-
स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

सा०—पूर्वं प्रपञ्चेनोक्तमर्थं सङ्क्षिप्यात्र दर्शयति। देवाः प्रजापतिप्राणरूपा यज्ञेन यथोक्तेन मानसेन सङ्कल्पेन यज्ञं यथोक्तयज्ञस्वरूपं प्रजापतिमयजन्त। पूजितवन्तः। तस्मात्पूजनात्तानि प्रसिद्धानि धर्माणि जगद्रूपविकाराणां धारकाणि प्रथमानि मुख्यान्यासन्। एतावता सृष्टिप्रक्रियापादकसूक्तभागार्थः सङ्गृहीतः। अथोपासनतत्फलानुवादकभागार्थः सङ्गृह्यते। यत्र यस्मिन्विराट्प्राप्तिरूपे नाके पूर्वे साध्याः पुरातना विराडुपास्तिसाधका देवाः सन्ति तिष्ठन्ति तन्नाकं विराट्प्राप्तिरूपं स्वर्गं ते महिमानस्तदुपासका महात्मानः सचन्त। समवयन्ति प्राप्नुवन्ति ॥

द०—पुनस्तमेव विषयमाह ॥

(यज्ञेन) उक्तेन ज्ञानेन (यज्ञम्) पूजनीयं सर्वरक्षकमग्निवत्तपनम् (अयजन्त) पूजयन्ति (देवाः) विद्वांसः (तानि) ईश्वरपूजनादीनि (धर्माणि) धारणात्मकानि (प्रथमानि) अनादिभूतानि मुख्यानि (आसन्) सन्ति (ते) (ह) एव (नाकम्) अविद्यमानदुःखं मुक्तिसुखम् (महिमानः) महत्त्वयुक्ताः (सचन्त) समवयन्ति प्राप्नुवन्ति (यत्र) यस्मिन् सुखे (पूर्वे) इतः पूर्वसम्भवाः (साध्याः) कृतसाधनाः (सन्ति) (देवाः) देदीप्यमाना विद्वांसः। निरुक्तकार इमं मन्त्रमेवं व्याचष्टे—यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः। 'अग्निनाग्निमयजन्त देवा अग्निः पशुरासीत्तमालभन्त तेनायजन्ते'ति च ब्राह्मणम्। तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ते ह नाकं महिमानः समसेवन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः साधनाद् युस्थानो देवगण इति नैरुक्ताः। नि०। अ० १२। खं० ॥४॥

अन्वयः—हे मनुष्या ये देवा यज्ञेन यज्ञमयजन्त तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ते महिमानः सन्तो यत्र पूर्वे साध्या देवाः सन्ति तं नाकं ह सचन्त। तद्यूयमप्याप्नुत ॥

भावार्थः—मनुष्यैर्योगाभ्यासादिना सदा परमेश्वर उपासनीयः। अनेनानादिकालीनधर्मेण मुक्तिसुखं प्राप्य पूर्वविद्वद्वदानन्दितव्यम् ॥१६॥

Gr.—Gods, sacrificing, sacrificed the victim: these were the earliest holy ordinances.

The mighty ones attained the height of heaven, there where the sādhyas, Gods of old, are dwelling.

धर्माणि—या० धर्म (धर्मन्)=धारणम्।

नाकः—या० कमिति सुखनाम, तत्प्रतिषिद्धं प्रतिषिध्येत।

योगी—देवों ने यज्ञ के द्वारा यज्ञ किया, वे धर्म मुख्य थे। जहाँ प्राचीन साध्य देव हैं, वे महिमशाली महात्मा मनुष्य उस दुःखनितान्ताभावस्थिति को प्राप्त करते हैं ॥१६॥

महिमानः—मह-पूजायाम्। सचन्त—सच् (षच्) समवाये।

तदेव दिव्यं देवप्रेरितं देवनियोजितं देवमयं च जीवनं यद् यज्ञमयम् (परोपकारपरम्)। परोपकार एवं संसारं धारयति। ये जना दिव्यसाधनां कुर्वन्ति त एव महिमशालिनो भवन्ति दुःखनितान्ताभावस्थितौ च सततं निवसन्ति ॥१६॥

उवटः—एवं योगिनोऽपि दीपनाद् देवा यज्ञेन समा-

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



धिना नारायणाख्यं ज्ञानरूपम् अयजन्त । यतस्तानि समाधिरूपाणि धर्माणि प्रथमान्यासन्, ते तु नाकं सनकादीनां स्थानं गच्छन्ति । ये तु योगिनो महिमानो जन्मान्तरैर्निर्धूतगुणाः शुद्धास्ते नारायणाख्यं पुरुषमाविशन्ति । मुक्तिं गच्छन्तीत्यर्थः ।

दुर्गाचार्यः—अग्निनाग्निमयजन्त देवाः । उक्तं च 'तमुन्निन्यथुः सर्वगणं सर्वनामानम्' ( नि० ६.३६ ) इति । तम् अग्निं स्थावरजङ्गमभावेनेति । 'तं वश्चराथा वयं वसत्या' इत्येतत् (नि० १०.२१) । तस्माद् दर्शनवतः प्रयोक्तुः सर्वमिदमग्निरित्यभिप्रेत्य ब्रवीति । अग्निना स्थावरजङ्गमभावमापन्नेन हविर्भूतेन अग्निमेव सर्वदेवताभूतमादित्यप्रनाडिकया महान्तमात्मानमयजन्त देवाः देवभाविनः पूर्वे ज्ञानकर्मसमुच्चयकारिणो यजमानभावमापन्नाः साध्याः विश्वसृजः ऋषयः प्राणाः । तानि धर्माणि तानि कर्माणि तथाविधज्ञानयुक्तानि प्रथमानि मुख्यानि महदात्मभावापत्तये आसन् । तैरप्यक्रियन्तेत्यर्थः । ते च तानि कृत्वा नियमेनैवान्यभावित्वात् तत्फलस्य महिमानः तदानुपूर्वेण जातमहदात्मभावाः सन्तः तमेव नाकं महान्तमात्मानमेकान्तसुखम् । असचन्त । तद्भावमेव ते आपेदिरे । किं त एवेति । नेत्युच्यते । यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः । शब्दार्थोपदेशनित्यत्वाद् यत्र पूर्वे च पूर्वेतरे च ज्ञानकर्मसमुच्चयकारिण आसते । संविजज्ञुरित्यर्थः । विज्ञायते हि 'विश्वसृज. प्रथमे सत्रमासत' इति (तै० ब्रा० ३.१२.९) इति । शिरो ह्यध्यात्मं यूस्थानभक्तिः । अतः सप्त ऋषयो देवाः विश्वेदेवाः साध्या इति सर्वं एते प्राणा रश्मयो वेत्युपपद्यते । ब्राह्मणमपि चैतमर्थमेवानुविधत्ते 'अग्निः पशुरासीत्' इत्येवमादि ॥१६॥

———

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# धनान्नदानम् (ऋ० १०.११७)

अस्मिन् सूक्ते दानप्रशंसा। वैदिकसंस्कृतिर्हि देवसंस्कृतिः। यास्को देवशब्दस्य प्रथमं निर्वचनं प्रस्तौति 'देवो दानाद्'। शत्रुपर्यायवाचिनोररात्यरिशब्दयोर्मूलार्थोऽदातेत्यस्ति (रा दाने न राति — इत्यरिररातिर्वा) वैदिकधर्मे सर्वजनहितकार्याणां निरतिशयं महत्त्वम्। यज्ञस्यार्थोऽपि परोपकार एव। ऋग्वेदस्यान्तिमे सूक्ते परस्परसहयोगमयसामाजिकजीवनस्य प्रशंसा। धनसंग्रहकर्तारः कृपणा वेदेषु पदे पदे निर्भर्त्सिताः। पणय एतादृशा एव धनसंग्रहकर्तारोऽदातारः कृपणाः सन्ति। कृपणशब्दस्यार्थ एव दयनीय इति।

अस्य सूक्तस्य ऋषिरङ्गिरसः पुत्रो भिक्षुः। अङ्गिरःशब्दो व्याख्यातः पुरस्तात्। अयमेतादृशो भिक्षुर्यः संसारस्य सर्वेष्वङ्गेषु रसप्रसाराय धनिनो याचते।

सा०—न वा इति नवर्चं पञ्चमं सूक्तम्। भिक्षुर्नामाङ्गिरस ऋषिः। प्रथमाद्वितीये जगत्यौ शिष्टाः सप्त त्रिष्टुभाः। अत्र धनस्यान्नस्य च दानं स्तूयते। अतस्तद्दैवत्यमिदम्। तथा चानुक्रान्तम्। न वा उ भिक्षुर्धनान्नदानप्रशंसाद्ये जगत्याविति॥ गतो विनियोगः॥

**न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददु-**
**रुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः।**
**उतो रयिः पृणतो नोप दस्यति**
**उतापृणन्मर्डितारं न विन्दते॥१॥**

सा०—भिक्षुः प्रथमं व्यतिरेकमुखेनान्नदानं प्रशंसति। देवा वै देवाः खलु सर्वेषां क्षुधं न ददुः। न प्रायच्छन् किन्तु वधमिद्वधमेव दत्तवन्तः। एतादृशीं वधरूपां क्षुधमन्नदानेन यः शमयति स दाता खलु। उ इति पूरणः। योऽदत्त्वा भुङ्क्ते तमाशितं भुञ्जानं पुरुषमपि मृत्यवो मरणान्युप गच्छन्ति। समीपे यान्ति॥ आशितः कर्ता। पा० ६. १. २०७। इत्याद्युदात्तत्वम्॥ क्षुधार्त्तानां भोक्तॄणां च मरणं समानम्। किं दानेन धनदानरूपेण। अत आह। उतो। उतशब्दोऽप्यर्थे। पृणतः प्रयच्छतः पुरुषस्य रयिर्धनं नोप दस्यति। नोपक्षीयते॥ दसु उपक्षये दैवादिकः। पृण दाने तौदादिकः। तस्य शत्रन्तस्य शतुरनुमो नद्यजादी इति विभक्तेराद्युदात्तत्वम्॥ दानप्रसङ्गेनादातारं दूषयति। अपृणन्नप्रयच्छन् पुरुषस्तु मर्डितारमात्मनः सुखयितारं न विन्दते। न कुत्रापि लभते। इह बन्धवोऽप्रदानान्न सुखयन्ति देवा अपि हविष्प्रदानाभावात्॥

Gr.—The Gods have not ordained hunger to be our death: even to the well-fed man comes death in varied shape.

The riches of the liberal never waste away, while he who will not give finds none to comfort him.

योगी—देवों ने भूख को ही मृत्यु के रूप में नहीं दिया, जो खाना खा लेता है (जिस का पेट भरा हुआ है) उसके पास भी मृत्युएं आती हैं। तथा दान देने वाले की संपत्ति क्षीण नहीं होती; तथा दान न देने वाला सुख देने वाले को प्राप्त नहीं करता॥१॥

न केवलं बुभुक्षयैव मृत्युः। मृत्यवो हि बहुविधाः। बहुसाधनसंपन्ना अपि जनाः क्षण एव म्रियन्ते। मृत्योरागमनस्य सहस्राणि द्वाराणि—

**अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्। गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥१॥**

**य आध्राय चकमानाय पित्वो-**
**ऽन्नवान्त्सन्फितायोपजग्मुषे।**
**स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरो-**
**तो चित्स मर्डितारं न विन्दते॥२॥**

सा०— यः पुरुषः स्वयमन्नवानप्याध्राय। आधार्यतेऽसावित्याध्रो दुर्बलः। तस्मै पित्वः पितूनन्नानि चकमानाय।



Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



चकमानः कान्तिकर्मा। रफिताय। रफतिर्हिंसार्थः। दारिद्र्येण हिंसितायोपजग्मुषे गृहं प्रत्यागतायातिशयेन मन आत्मीयमन्तःकरणमदाने स्थिरं कृणुते कुरुते। मनःस्थैर्यकरणेन तं क्लेशयतीत्यर्थः ॥ कृणुते। कृवि हिंसाकरणयोः। धिन्विकृण्व्योरुच्चेत्युप्रत्ययः। करोतेर्वा व्यत्ययेन श्नुः। विकरणस्वरः सति शिष्टोऽपि लसार्वधातुकस्वरं न बाधते। म० ६.१.१५८. ११। इति लसार्वधातुकस्वरः। न केवलं क्लेशकरणम् अपि तु पुरा तस्य पुरस्तादेव सेवते भोगान्। सोऽपि मडितारमात्मनः सुखयितारं न विन्दते। न कुत्रापि लभते ॥

Gr.—The man with food in store who, when needy comes in miserable case begging for bread to eat,

Hardens his heart against him—even when of old he did him service—finds not one to comfort him.

योगी—जो मनुष्य [धनवान् होता हुआ भी] साधन हीन, अन्न की याचना करते हुए, दारिद्र्य से हिंसित [याचना के लिए] समीप आए हुए [भिक्षुक] के लिए मन को स्थिर कर लेता है (पाषाणहृदय बन जाता है) तथा उसके सन्मुख ही भोगों का सेवन करता है, वह सुख देने वाले को प्राप्त नहीं करता है ॥२॥

यो जनोऽन्यदु खैर्द्रवितो न भवति पाषाणहृदयश्च भूत्वा स्वभोगलीनस्तिष्ठति, तस्य कल्याणं न भवति। असावेव कल्याणभाग् यस्येयं भावना—

'न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्' ॥२॥

स इद् भोजो यो गृहवे ददात्य-
न्नकामाय चरते कृशाय।
अरमस्मै भवति यामहूता उ
उतापरीषु कृणुते सखायम् ॥३॥

सा०—अन्वयमुखेन प्रशंसति। स इत् स एव भोजो दाता खलु यो गृहवे ॥ ग्रहेर्गुरुत्वादित्वात्। उ० १.३८। कुप्रत्ययः॥ प्रतिग्रहीत्रेऽन्नकामायान्नं या-

मागतवते कृशाय दारिद्र्येणैतादृशायतिथयेऽन्नं ददाति प्रयच्छति॥ अभ्यस्तानामादिरित्याद्युदात्तत्वम्॥ यामहूतौ। यामा गन्तारो देवाः ॥ अत्र यातेरतिस्तुमुहुमृ। उ० १. १३९। इत्यादिना मन्प्रत्ययः ॥ त आह्वयन्तेऽत्रेति यामहूतिर्यज्ञः। तस्मिन्नस्मै दात्रे फलमरमलं पर्याप्तं भवति। कामप्रदानं भवतीत्यर्थः। उतापि चापरीषु ॥ केवलमामकेति ङीप्। पा० ४. १३० ॥ अन्यासु शात्रवीषु सेनासु सखायं कृणुते। तद्ददाचरतीत्यर्थः। तस्य सर्वे सखाय एव न शत्रव इत्यर्थः ॥

Gr.—Bounteous is he who gives unto the beggar who comes to him in want of food and feeble.

Success attends to him in the shout of battle. He makes a friend of him in future troubles.

यामः—निघ० यातिर्गतिकर्मा।

योगी—वह ही भोज (दानी) है जो लेने की इच्छा वाले, अन्न को चाहने वाले घर आए दुर्बल, (विपन्न) को दान देता है। प्रगति के आह्वानों में इसके लिए पर्याप्त [प्राप्ति] होती है तथा वह परायों (शत्रुओं) को भी मित्र बना लेता है ॥३॥

यामः—M. W.—motion, progress etc. (गतिः, प्रगतिः— इत्यादि) या—प्रापणे। याम (यामन्)=गतिः।

यो जनः परोपकारी भवति स जीवनमार्गे उत्तरोत्तरं प्रगतिं करोति, यत् किञ्चिदपि साधनजातं इच्छति तत्तद्य उपस्थितं भवति—सर्वेऽपि जनास्तस्य सखायो भवन्ति—

{'वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः ॥'॥३॥}

न स सखा यो न ददाति सख्ये
सचाभुवे सचमानाय पित्वः। [illegible]
अपास्मात् प्रेयान्न तदोको अस्ति पृ
पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ॥४॥

सा०—व्यतिरेकेण निन्दामाह। स पुरुषः सखा न भवति यः पुरुषः सचाभुवे सर्वदा सहभवनशीलाय सचमानाय सख्ये सखिजनाय पित्वः पितून-

Bharatiya Vidya Bhavan's New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


न्नानि न ददाति न प्रयच्छति । स सुहृन्न भवतीत्यर्थः । अस्माददातुः सख्युः सोऽप प्रेयात् । अपगच्छेत् । यद्येनं परित्यज्य गच्छेत् । इण् गतौ । लिङि यासुट् तर्हि तदोको निवासः सदनं नास्ति । न भवति । सदनं हि बन्धुभिः परिवृतम् । स गतः पुरुषः पृणन्तमन्नादिकं प्रयच्छन्तमन्यमरणं चिदर्यं स्वामिनमेवेच्छेत् । कामयेत ।

Gr.—No friend is he who to his friend and comrade who comes imploring food, will offer nothing.

Let him depart—no home is that to rest in —, and rather seek a stranger to support him.

**सचा**—या०—सह्

**अरणः**—या०—अरणोऽपार्णो भवति । दु० अपार्णः= अपगतोदकसम्बन्धः परकुलजः ।

**योगी**—वह सखा नहीं है जो साथ रहने वाले मित्र तथा सेवा करने वाले अथवा सहायक जन को अन्नों (भोगों) को नहीं देता । [मनुष्य को चाहिए कि] ऐसे व्यक्ति से दूर चला जाए; वह कोई घर नहीं है, किसी दूसरे देने वाले को चाहे, भले ही वह पराया (अपरिचित) हो ॥४॥

**सचमानः**—सच् (पच)—समवाये, सेचने (वोप०) ; साहचर्ये (ह्वि०) । सच्—समवाये ।

ये जनाः कृपणा भवन्ति, ते मित्रेभ्योऽपि न प्रयच्छन्ति । तेषां सर्वदाऽयं प्रयत्नो भवति, यन्मित्रेभ्यः किञ्चित्प्राप्येत कदाचिदपि किञ्चिन्न दीयेत । ते चिन्तयन्ति यदि किंचिद् दत्तमपि तदा को लाभः । इमे कृपणा जनास्तेभ्योऽपि न प्रयच्छन्ति, ये तेषां सेवां कुर्वन्ति । अतिलघुचेतस इमे वराकाः । एतादृशान् जनान् अपहायान्यत्र गन्तव्यम् । एतादृशानां छायाऽपि मनो दूषयति ॥४॥

**पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्**
**द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् ।**
**ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा-**
**न्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ॥५॥**

**सा०**—धनवन्तं पुरुषं दाने प्रेरयति । तव्यांस्तवीयान्धनैरतिशयेन प्रवृद्धः पुरुषो नाधमानाय याचमानायातिथये पृणीयादित् । धनानि दद्यादेव ॥ पॄ पालनपूरणयोः क्र्यादिः । प्वादीनां ह्रस्वः ॥ यदि दद्यात् द्राघीयांसम् ॥ दीर्घशब्दादीयसुनि प्रियस्थिरेत्यादिना द्राघीत्यादेशः ॥ दीर्घतमं पन्थां पन्थानं सुकृतमार्गमनु पश्येत । अनुपश्येत् ॥ व्यत्ययेनात्मनेपदम् । तत्र कारणमाह । रायो धनान्यो हि । आ उ । आवर्तन्ते खलु । एकत्र न तिष्ठन्तीत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः । रथ्येव यथा रथ्यानि ॥ रथाद्यत् । पा० ४. ३. १२१ । इति तस्येदमित्यर्थे यत् ॥ रथसम्बन्धीनि चक्राण्युपर्यधोभावेनावर्तन्ते तद्वदावृत्तिमेव दर्शयति । अन्यमन्यं पुरुषं धनान्युपतिष्ठन्त । उपतिष्ठन्त । उपतिष्ठन्ते । समवेतानि भवन्ति ॥ उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणेति । का० १. ३. २५. १ । आत्मनेपदम् ॥ तस्माद्धनानि देयानीतिभावः ॥

Gr.—Let the rich satisfy the poor implorer, and bend his eye upon a longer pathway,

Riches come now to one, now to another, and like the wheels of cars are ever rolling.

**तव्यान्**—या० 'तवस इति महतो नामधेयम् ।' (तव्यान्=तवसः) ।

**योगी**—महान् (समर्थ) व्यक्ति याचक को अवश्य दान दे दे, उसे चाहिए कि दीर्घतर मार्ग को भलीभांति देखे अर्थात् मार्ग पर दूर तक देखे । संपत्तियां रथ के चक्रों के समान आवर्तित होती रहती हैं और अन्य अन्य के पास जाती रहती हैं ॥५॥

**पृणीयात्**—पृण्—प्रीणने; अपनयने (का० कृ०) योऽद्य महाधनी, श्वो निर्धनोऽपि भवति निर्धनश्च धनी—

'कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः ॥
—(भासः)

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥
—(कालिदासः)

एवं न कथनीयं यद् 'योनिर्धनोऽस्ति, स स्वकर्मफलभोगं करोति, वयं कस्मात्तस्मै प्रयच्छेम ।' दानेन दाता पुण्यकर्मसंचयं करोति । दानेन हृदयं महद् भवति । तथा च यस्य हृदयं महद् भवति स दानं करोत्येव ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


महाहृदयो जनः सर्वत्रैकात्मदर्शनं करोति—

'अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।'

ईशोपनिषदो मन्त्रद्वये ('यस्मिन् सर्वाणि भूतानि० तथा 'यस्तु सर्वाणि भूतानि०) सर्वत्रैकात्मदर्शनवर्णनम् । अथर्ववेदे कथितम्—

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर ।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फाति समावह ।।
(अथर्व० ३. २५. ५)

महति हृदय एवं महतो (ब्रह्मणो) निवासः । लघुस्थाने ब्रह्म (महत्) कथमागच्छेत्, क्षुद्रमूषकबिले हस्तिप्रवेशः कथं स्यात् । यदि ब्रह्मत्वमिष्यते, हृदये ब्रह्मनिवास इष्यते, तदा हृदयं महद् विशालं विस्तृतं च कर्तव्यम् । सर्वत्रैकात्मदर्शी मनुष्य एव महाशयो महात्मा वा ।।५।।

14 मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी ।।६।।

सा०—अदातारं दूषयति । अप्रचेता अप्रकृष्टज्ञानः दाने चेतो मनो यस्य न भवति स मोघं व्यर्थमेवान्नं विन्दते । लभते ।। विद्लृ लाभे तौदादिकः । शे मुचादीनामिति नुमागमः ।। इदं सत्यं यथार्थमेवेति ब्रवीमि ।ऋषिरहं वदामि । न केवलं व्यर्थं किन्तु तस्य पुरुषस्य स वध इदृश एवान्नं परामृशतः ।। तच्छब्दस्य वधसामानाधिकरण्यात्पुंल्लिङ्गता । यथा णेरणावित्यत्र । पा १. ३. ६७ । यत्कर्म स एव कर्तेति ।। अथवा स निरर्थको वध एव यः पुरुषोऽर्यमणम् । उपलक्षणमिदम् । सर्वान्देवानर्यमादीन्न पुष्यति हविष्प्रदानेन न पोषयति नो नापि सखायं समानस्थानमभ्यागतमतिथिं मित्रवर्गं च न पोषयति ।। पुष पुष्टौ दैवादिकः । यच्छब्दाध्याहारादनिघातः ।। अत एव केवलादी ।। अदेः शुग्यजातौ । पा० ३. २. ७८ । इति णिनिः । अत उपधालक्षणा वृद्धिः ।। केवलमसाधिकमन्नं भुञ्जानः स केवलाघो भवति । केवलपापवान्भवति । अयमेव केवलं तस्य शिष्यते । ऐहिकामुष्मिकमिति । तस्माद्यथाकथञ्चिद्दातव्यमित्यभिप्रायः ।।

Gr.—The foolish man wins food with fruitless labour: that food—I speak the truth—shall be his ruin.

He feeds no trusty friend, no man to love him. All guilt is he who eats with no partaker.

अर्यमा (अर्यमन्)—या० अरीन् नियच्छति ।

योगी—अप्रकृष्टज्ञान व्यक्ति व्यर्थ ही अन्न को प्राप्त करता है; सच कहता हूं कि वह उसका वध (मृत्यु) ही है । [ऐसा कृपण व्यक्ति) न तो किसी श्रेष्ठ व्यक्ति को पुष्ट करता है न ही मित्र को, अकेला खानेवाला केवल पाप का भागी होता है ।।६।।

अर्यमा—अर्यं श्रेष्ठं, मिमीते, मा + कनिन् ।

कृपणस्य धनं तस्य वध (मृत्युः) एव । तस्य हृदयं प्रतिदिनं क्षुद्रतरं जायते—शनैः शनैरसौ जडत्वं प्राप्नोति, जन्मान्तरे च जडयोनिमधिगच्छति ।

'यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।।६।।
(गीता)

कृषन्नित्फाल आशितं कृणोति
यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः ।
वदन् ब्रह्मावदतो वनीयान्
पृणन्नापिरपृणन्तमभि स्यात् ।।७।।

सा०—कृषन् कृषि कुर्वन्फाल आशितं कर्षकं भोक्तारं कृणोति । करोति । तमाध्वानं मार्गं यन् ।। दृणः शतरि नुमागमः ।। गच्छन्पुरुषचरित्रैरात्मीयैर्यमनैरप वृङ्क्ते । स्वामिनो धनमावर्जयति ।। वृजी वर्जने आदादिकः । अनुदात्तेत् ।। वदञ्शास्त्रार्थं ब्रुवाणो ब्रह्मा ब्राह्मणोऽवदतः शास्त्रार्थमब्रुवानाज्जनाद्वनीयान् । सम्भावितृतमः प्रियकरो भवति ।। वनतेस्तृजन्तस्येयसुनि तुरुष्ठेमेयःस्सिति तृचो लोपः ।। ते यथा स्वकर्मणि प्रवर्तमानाः परेषामुपकारकाः तथा पृणन् दाता पुरुषोऽपृणन्तमदातारं जनमभ्यभिलक्ष्यापिः स्यात् । बन्धुर्भवेत् ।।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Gr.—The ploughshare ploughing makes the food that feeds us, and with its feet cuts through the path it follows.

Better the speaking than the silent Brāhman: the liberal friend outvalues him who gives not.

**योगी**—कर्षण करता हुआ फाल (हल का फल) खाद्य (धान्यादि) को उत्पन्न करता है। मार्ग पर गमन करता हुआ [वह] अपने चरणन्यासों से उसे संपन्न करता है (अथवा उसे द्विधा विभक्त करता है), प्रवचन करने वाला ज्ञानी अप्रवचन करने वाले [ज्ञानी] से उत्कृष्टतर है। दान देने वाला बन्धु (मित्र इत्यादि) दान न देने वाले से बढ़कर है ॥७॥

कृषन्—कृष् विलेखने, कृष्+शतृ

फालः—फल् (त्रिफला) विशरणे। आशितम्—अश् भोजने। अप वृङ्क्ते—अप—वृज्—वर्जने।

मनुष्येणजीवने सर्जनात्मकः कार्यकलापो विधातव्यः। यो जनः संग्रहं करोति, दानं न करोति सोऽसर्जनात्मकः। तस्य जन्म सर्वं च कार्यजातं निरर्थकम्। हलफालः कार्यं करोति, तेनान्नोत्पादनं भवति, तदन्नं न स्वात्मने परोपकारायैव—'परोपकाराय सतां विभूतयः'। वस्तुतः स एव जनः सफलजन्मा यस्य कार्याणि सर्वजनहिताय भवन्ति ॥७॥

७ एकपाद् भूयो द्विपदो वि चक्रमे
द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे
संपश्यन्पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः ॥८॥

सा०—अत्र पादशब्दो भागवचनः। एकपादेकभागधनः पुरुषो द्विपदो द्विगुणधनस्य मार्गं भूयः॥ तृतीयायाः सुः॥ भूयसा कालेन वि चक्रमे। विविधं गच्छति॥ वेः पादविहरणे। पा० १.३.४१। इत्यात्मनेपदम्॥ तथा द्विपात्पुरुषस्त्रिपादं त्रिभागधनं पुरुषं पश्चादभ्येति। अभिगच्छति। चतुष्पाच्चतुर्भागधनस्तु द्विपदाम्। बहुवचनादेकपादादय उपलक्ष्यन्ते। एकपादधनादीनां पङ्क्तीरभिस्वरेऽभिगमने संपश्यन् सम्यगीक्षमाणः सन्नुपतिष्ठमान एति। गच्छमानो भवति। अन्योन्यापेक्षया सर्वं उत्तमाधमाः। तस्मात्त्वमहमेव धनवानिति न मन्येः किन्त्वतिथिभ्यो धनानि ददस्वेत्यर्थः॥

Gr.—He with one foot hath far outrun the biped, and the two-footed catches the three-footed.

Four-footed creatures come when bipeds call them, and stand and look where five are met together.

The victory is not always theirs who appear to be more richly endowed than others. *He with one foot*—एकपाद्—the Sun appears to be meant, elsewhere called अज एकपाद्. See VI. 50. 14. *The biped* is man. *The three-footed* is the old man who walks with a staff and is overtaken by one who does not require such assistance. *Four-footed creatures*: *dogs*. *Five*: several men together, the dogs being first uncertain whether their masters are among them or not. पङ्क्तीः—Sets of five, is apparently used with reference to the one, two, three, and four in the preceding compound words. Others explain पङ्क्तिः by 'steps' or 'traces.'

I have adopted explanation given by the authors of *Siebenzig Lieder*.

**योगी**—एक पाँव वाला अपनी [गति में] दो पाँवों वालों का अतिक्रमण कर जाता है। दो पावों वाला पीछे से आकर तीन पाँव वाले का अभिभव कर लेता है। चार पाँवों वाला प्राणी दो पाँवों वालों के पुकारने पर आ जाता है [तथा] चरणन्यासों के समीप खड़ा हुआ देखता हुआ स्थित रहता है ॥८॥

'सीबन्जिग लीडर' इत्यस्मिन् व्याख्याग्रन्थे व्याख्येयम्—एकपात्=सूर्यः; द्विपात्=मनुष्यः; त्रिपात्=वृद्धो मनुष्यो यो दण्डसाहाय्येन चलति; चतुष्पात्=कुक्कुरः। पङ्क्तिः—पूर्वोक्तपञ्चसमूहः।

योगिमतेनात्र सांसारिकभोगास्वादनानुपातचर्चा—
एकपाद्—यो जनश्चतुर्थांशं भुङ्क्ते।
द्विपात्—यो जनोऽर्धांशं भुङ्क्ते।
त्रिपात्—यो जनस्त्रीन् भागान् भुङ्क्ते।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



चतुष्पात्—यश्चतुरो भागान् भुङ्क्ते, पूर्णतया भोगवादी ।

एषु क्रमशो भौतिकजीवनाध्यात्मिकजीवनयो-

रनुपातः—$\frac{१}{४} : \frac{३}{४}$; $\frac{१}{२} : \frac{१}{२}$; $\frac{३}{४} : \frac{१}{४}$; $\frac{४}{४} = १ : ०$ । प्रथमजनस्य विषये दृश्यतां पुरुषसूक्ते—'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।' अयं प्रथमजनो लोकोत्तरः । द्वितीयो जनोऽपि प्रशस्य एव । चतुर्थो जनो यः पूर्णतया भोगवादी वर्तते स्वजीवनोत्थानाय द्वितीयजनस्याश्रयं गृह्णाति, शनैःशनैस्तस्यानुसरणं कृत्वाऽऽत्मविकासं करोति ।

चतुष्पाच्छब्दस्य पशुरित्यप्यर्थः । पूर्णभोगवादी मनुष्यः पशुरेव—

'आहारनिद्राभयमैथुनं च
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः' ॥८॥

**समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः**
**सम्मातरा चिन्न समं दुहाते ।**
**यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि**
**ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः ॥९॥**

सा०—अतिथिभ्यो धनमप्रयच्छन्नपि मम भ्राता दास्यतीति चेत् तत्र हेतुमाह । समौ चिद्धस्तौ समावपि समं समानं न विविष्टः । कार्यं न व्याप्नुतः ॥ विष्लृ व्याप्तौ जौहोत्यादिकः । सञ्ज्ञापूर्वकस्य विधेरनित्यत्वादभ्यासस्य गुणाभावः ॥ तथा संमातरा वत्सस्य मातरौ धेनू समे अपि समं समानं पयो न दुहाते । यमयोश्चित् सहजातयोः पुत्रयोरपि समा समानि वीर्याणि न सन्ति । तस्माज्ज्ञाती चिदेकस्मिन्कुले सन्तौ जातावपि समं न पृणीतः । न प्रयच्छतः । तस्माद्यस्य धनमस्ति स एव दद्यादित्यर्थः ॥

Gr.—The hands are both alike: their labour differs. The yield of sister milch-kine is unequal.

Twins even differ in their strength and vigour: two, even kinsmen, differ in their bounty.

योगी—[मनुष्य के] दोनों समान हाथ भी समान रूप से कार्यसमर्थ नहीं हैं; एक माता से उत्पन्न हुई हुई [दो गौएँ] भी समान दूध नहीं देतीं, दो जुड़वें भाइयों की भी शक्तियाँ समान नहीं होतीं; एक कुल में उत्पन्न हुए हुए दो [मनुष्य] भी समान रूप से दान नहीं देते ॥९॥

केवलं मनुष्याकारेणैव मनुष्यो न भवति—

'येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥'

(भर्तृहरिः)

दानेनैव मनुष्यो भवति—

'युध्यन्ते पक्षिपशवः पठन्ति शुकसारिकाः ।
दातुं शक्नोति यो वित्तं स शूरः स च पण्डितः ॥'
'अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥'

एकः कविः कथयति—

'ते मूर्खतरा लोके येषां धनमस्ति नास्ति च त्यागः ।
केवलमर्जनरक्षणविभोगदुःखान्यनुभवन्ति ॥'

स एव मनुष्यो देवो यो ददाति (देवो दानाद्०—यास्कः) । समाकारेषु सर्वेषु मनुष्येषु विद्यादानेन धनदानेन जनताजनार्दनसेवया चैव मनुष्यो विशिष्टो भवति ॥९॥

———

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# भाववृत्तम् (नासदीय सूक्तम्) (ऋ० १०.१२९)

ऋग्वेदस्य कतिपयसूक्तेषु सृष्टयुत्पत्तिमधिकृत्य दार्शनिको विचारः प्रस्तुतः। ऋग्वेदे 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (१.११५.१) कथितः। अन्यत्र हिरण्यगर्भचर्चा —'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्' (१०.१२१.१) तथा 'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव' (ऋ० १०.१२१.१०)। ऋ० १०.१२१ सूक्तं 'कस्मै देवाय' इति सूक्तं कथ्यते। पुनः पुनः प्रश्नोऽयं—'कोऽसा'विति।

ऋ० १०.७२.२ इति मन्त्रे काव्यशैल्या वर्णनम्—

बृहस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत्।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत॥

अस्मिन् सूक्त इदं विस्पष्टं यत्सदुत्पत्त्यनन्तरं क्रमशो भूराशा अदितिर्दक्षो देवाः सूर्यश्चाजायन्त।

नासदीयसूक्तेऽपि सृष्ट्युत्पत्तिविषये विचारः प्रस्तुतः—

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीम्

अयं सिद्धान्त एव सांख्ये—

'नासतः सज्जायते'—इत्यत्र।

गीतायां च—'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'।

नासदीयसूक्तस्य प्रथममन्त्रे असन्नासीत् = शून्यं नासीत्; नो सदासीत्=यदासीत् तद् अभिव्यक्तरूपेण नासीत्।

किमासीदादौ ? को जानाति ?

'यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद'। 'को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः'। 'अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव।' तथाप्येकं निश्चितं मतमभिव्यक्तम्—

'कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।'

अस्य सूक्तस्य ऋषिः

अस्य सूक्तस्य ऋषिः प्रजापतिः परमेष्ठी। परमे (स्थाने) तिष्ठति—इति परमेष्ठी। अस्मिन् सूक्ते परमे स्थाने स्थितस्य प्रजापतेः (प्रजानामुत्पादयितुः) चर्चा—

'यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्'।

अस्यसूक्तस्य देवता भाववृत्तम् (=सृष्टेर्वृत्तान्तः)।

सा०—एकादशेऽनुवाके त्रयोविंशतिसङ्ख्यानि सूक्तानि तत्र नासदासीदिति यत्पञ्चं प्रथमं सूक्तं त्रैष्टुभम्। परमेष्ठी नाम प्रजापतिर्ऋषिः। वियदादिभावानां सृष्टिस्थितिप्रलयादीनामत्र प्रतिपाद्यत्वात्तेषां कर्ता परमात्मा देवता। तथा चानुक्रान्तम्। नासत्सप्त प्रजापतिः परमेष्ठी भाववृत्तं त्विति॥ गतो विनियोगः॥

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्॥१॥

सा०—तपसस्तन्महिनाजायतैकमित्यादिनाग्रे सृष्टिः प्रतिपादयिष्यते। अधुना ततः प्रागवस्था निरस्तसमस्तप्रपञ्चा या प्रलयावस्था सा निरूप्यते। तदानीं प्रलयदशायामवस्थितं यदस्य जगतो मूलकारणं तदसच्छशविषाणवन्निरुपाख्यं नासीत्। न हि तादृशात्कारणादस्य सतो जगत उत्पत्तिः सम्भवति। तथा नो सन्नैव सदात्मवत्सत्त्वेन निर्वाच्यमासीत्। यद्यपि सदसदात्मकं प्रत्येकं विलक्षणं भवति तथापि भावाभावयोः सहावस्थानमपि सम्भवति। कुतस्तयोस्तादात्म्यमिति उभयविलक्षणमनिर्वाच्यमेवासीदित्यर्थः। ननु नो सदिति पारमार्थिकसत्त्वस्य निषेधः। तर्ह्यात्मनोऽप्यनिर्वाच्यत्वप्रसङ्गः। अथोच्येत। न। आनीदवातमिति तस्य सत्त्वमग्रे वक्ष्यते परिशेषान्मायाया एवात्र सत्त्वं निपिद्यत इति। एवमपि तदानीमिति विशेषणानर्थक्यं व्यवहारदशायामपि तस्याः पारमार्थिकसत्त्वाभावात्। अथ व्यावहारिकसत्तां पृथिव्यादीनां भावानां



Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



विद्यमानत्वात् कथं नो सदिति निषेधः । तत्राह । नासीद्रज इत्यादि । लोका रजांस्युच्यन्ते । नि० ४.१९ । इति यास्कः । अत्र च सामान्यापेक्षमेकवचनम् । व्योम्नो वक्ष्यमाणत्वात्तस्याधस्तनाः पातालादयः पृथिव्यन्ता नासन्नित्यर्थः । तथा व्योमान्तरिक्षं तदपि नो नैवासीत् । पर इति सकारान्तं परस्तादित्यर्थे वर्तते ॥ परशब्दाच्छान्दसोऽस्तातेरर्थेऽसिप्रत्ययः ॥ परो व्योम्नः परस्तादुरिदेशे द्युलोकप्रभृतिसत्यलोकान्तं यदस्ति तदपि नासीदित्यर्थः । अनेन चतुर्दशभुवनगर्भं ब्रह्माण्डं स्वरूपेण निषिद्धं भवति । अथ तदावरकत्वेन पुराणेषु प्रसिद्धानि यानि वियदादिभूतानि तेषामवस्थानप्रदेशं तदावरणनिमित्तं चाक्षेपमुखेन क्रमेण निषेधयति किमावरीवरिति । किमावरणीयं तत्त्वमावरकभूतजातमावरीवः । अत्यन्तमावृणुयात् । आवार्याभावात्तदावरकमपि नासीदित्यर्थः ॥ पृणोतेर्यङ्लुगन्ताच्छान्दसे लङि तिपि रूपमेतत् ॥ यद्वा । किमिति प्रथमैव । किं तत्त्वमावरकमावृणुयात् । आवार्याभावादाव्रियमाणवत्तदपि स्वरूपेण नासीदित्यर्थः । आवृण्वत्तत्त्वं कुह कुत्र देशेऽवस्थायावृणोति । आधारभूतस्ताद्दशो देशोऽपि नासीदित्यर्थः ॥ किंशब्दात्सप्तम्यर्थे हप्रत्ययः । कुतिहोः । पा० ७.२.१०४ । इति प्रकृतेः क्वादेशः ॥ कस्य शर्मन् कस्य वा भोक्तुर्जीवस्य शर्मणि सुखदुःखसाक्षात्कारलक्षणे वा निमित्तभूते सति तदावरकं तत्त्वमावृणुयात् । जीवानामुपभोगार्था हि सृष्टिः । तस्यां हि सत्यां ब्रह्माण्डस्य भूतैरावरणं प्रलयदशायां च भोक्तारो जीवा उपाधिविलयात्पलीना इति कस्य कश्चिदपि भोक्ता न सम्भवतीत्यावरणस्य निमित्ताभावादपि तन्न घटत इत्यर्थः । एतेन भोग्यप्रपञ्चवद्भोक्तृप्रपञ्चोऽपि तदानीं नासीदित्युक्तं भवति ॥ किंशब्दादुत्तरस्य । ङसः सावेकाच इति प्राप्तस्योदात्तत्वस्य न गोश्वन्सावर्णेति प्रतिषेधः । सुपां सुलुगिति शर्मणः सप्तम्या लुक् ॥ यद्यपि सावरणस्य ब्रह्माण्डस्य निषेधेन तदन्तर्गतमप्सत्त्वमपि निराकृतं तथाप्यापो वा इदमग्रे सलिलमासीत् । तै० सं० ७.१.५.१ । इत्यादिश्रुत्या कश्चिदपां यद्भावमाशङ्केत । तं प्रत्याचष्टेऽम्भः किमासीदिति । गहनं दुष्प्रवेशं गभीरं दुःखस्थानमत्यगाधम् । ईदृशमम्भः किमासीत् । तदपि नैवासीदित्यर्थः । श्रुतिस्त्ववान्तरप्रलयविषया ॥१॥

tent: there was no realm of air, no sky beyond it.

What covered in, and where? and what gave shelter? was water there, unfathomed depth of water?

रजः—या०—रजो रजतेः । ज्योती रज उच्यते । उदकं रज उच्यते । लोका रजांस्युच्यन्ते । असुगृहनी रजसी उच्येते । व्योम—या० व्यवनम् । शर्म—या०—शरणम् ।

योगो—उस समय न असत् था, न ही सत्, न रजस् था, न ही उससे परे व्योम । किसने आवृत किया हुआ था ? कहाँ ? किसकी शरण में ? क्या गहन तथा गम्भीर जल था ? ॥१॥

आवरीवः—आ वृ—वरणे ।

यदा कश्चिन्मनुष्यः सृष्ट्युत्पत्तिविषये विचारं प्रारभते तदा तस्य मनसि प्रथमा जिज्ञासेयं यत्सर्वमिदं किमासीत् । इदं निश्चितं यदसन्नासीद् यतोऽभावः सन्न जायते । परन्तु यत्किञ्चिदप्यासीदभिव्यक्तरूपेण नासीदतो 'नो सदासीत्' ।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास ॥२॥

सा०—ननूक्तस्य प्रतिसंहारस्य बहुपक्षत्वात् स एव संहर्ता मृत्युर्विवक्षत इत्यत आह । न मृत्युरासीदिति । ननु यदि स नासीत् तर्हि तदभावकृतममृतमरणं प्राणिनामवस्थानं तदानीमपि स्यात् तत्राह । अमृतं न तर्हीति । तर्हि तस्मिन् प्रतिहारसमये । अयं भावः । सर्वेषां प्राणिनां परिपक्वं भोगहेतुभूतं सर्वं कर्म यदोपभुक्तमासीत् तदा भोगाभावान्निष्प्रयोजनमिदं जगदिति परमेश्वरस्य मनसि संजिहीर्षा जायते । तयैव स मृत्युः सर्वं जगत्संहरत इति किमनेन मृत्युना संहर्ता तदभावकृतं वा कथममरणं स्यादिति । एतदेवाभिप्रेत्य कठैराम्नायते—'यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनम् । मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ।' क० उ० २. २४ । इति मनसस्तस्याधिकरणभूतः कालो विवक्षत इत्यत आह ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection.

Gr.—Then was not non-existent nor was

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



न रात्र्या इति । न रात्र्या अह्नश्च प्रकेतः प्रज्ञानमासीत् तद्धेतुभूतयोः सूर्याचन्द्रमसोरभावात् । एतेनाहोरात्रनिषेधेन तदात्मको मासर्तुसंवत्सरप्रभृतिकः सर्वः कालः प्रत्याख्यातः । कथं तर्हि नो सदासीत्तदानीमिति कालवाची प्रत्ययः । उपचारादिति ब्रूमः । यथेदानीन्तननिषेधस्य कालोऽवच्छेदस्तथा मायापि तदवच्छेदहेतुरित्यवच्छेदकत्वसाम्येनाकालेऽपि कालवाची प्रत्ययः । यदवादिष्म ब्रह्मणः परमार्थसत्त्वमग्रे वक्ष्यत इति तदिदानीं दर्शयत्यानीदिति । तत्सकलवेदान्तप्रसिद्धं ब्रह्मतत्त्वमानीत् । प्राणितवत् । नन्वेवं प्राणनकर्तुर्जीवभावापन्नस्यैव ब्रह्मणः सत्त्वं स्यात् न विवक्षितस्य निरुपाधिकस्य ब्रह्मणः । अप्राणो ह्यमनाः शुद्ध इति तस्य प्राणसम्बन्धाभावात् तत्राहानीदवातमिति । अयमाशयः । आनीदित्यत्र धात्वर्थक्रिया तत्कर्ता तस्य च भूतकालसम्बन्ध इति त्रयोऽर्थाः प्रतीयन्ते । तत्र समुदायो न विधीयते यथाग्नेयोऽष्टाकपाल इति येन ब्रह्मणः सत्त्वं न स्यात् । किं तर्ह्यनेन कर्तृत्वमनूद्य भूतकालसत्तालक्षणो गुणो विधीयते दध्ना जुहोतीति वाक्यान्तरविहिताग्निहोत्रानुवादेन तत्र गुणविधानम् । तत्राप्यनेन कर्तृत्वविशिष्टस्य न पूर्वकालसत्ता विधीयते तन्निषेधानुपपत्तिप्रसङ्गात् अतोऽनेन कर्तृत्वेनेदानीन्तनेनोपलक्षितं यन्निरुपाधिकं परं ब्रह्म तस्यैव भूतकालसत्ता विधीयत इति न कश्चिद्दोष इति । नन्वीदृशस्य ब्रह्मणो मायया सह सम्बन्धासम्भवात्साङ्ख्याभिमता स्वतन्त्रा सद्रूपा सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका मूलप्रकृतिरेवाभिमतेति कथं नो सदिति निषेधः । तत्राह स्वधयेति । स्वस्मिन्धीयत ध्रियत आश्रित्य वर्तत इति स्वधा माया । तया तद् ब्रह्मैकमविभागापन्नमासीत् ॥ सहयुक्तेऽप्रधाने । पा० २. ३. १९ । इति तृतीया सहशब्दयोगाभावेऽपि सहार्थयोगे भवति वृद्धो यूना । १. २. ६५ । इति निपातनाल्लिङ्गात् ॥ अत्र प्रकृतिप्रत्ययाभ्यां तस्याः स्वातन्त्र्यं निवार्यते । यद्यप्यसङ्गस्य ब्रह्मणस्तया सह सम्बन्धो न सम्भवति तथापि तस्मिन्नविद्यया तत्स्वरूपमिव सम्बन्धोऽप्यध्यस्यते यथा शुक्तिकायां रजतस्य । एतेन सद्रूपत्वमपि तस्याः प्रत्याख्यातम् । ननु यदि माया ब्रह्मणा सहाविभागापन्ना तर्हि तस्या अनिर्वाच्यत्वाद् ब्रह्मणोऽपि तत्प्रसङ्ग इति कथं तस्य सत्त्वमुक्तमानीदवातमिति । ब्रह्मणो वा सत्त्वात्तस्य अपि सत्त्वप्रसङ्ग इति कथं नो सदासीदिति सत्त्वप्रतिषेधः । मैवम् । अयुक्तिदृष्ट्यैवमाभासेऽपि युक्त्या विविच्य मायांशस्यानिर्वाच्यत्वं ब्रह्मणः सत्त्वं च प्रतिपादितम् । ननु दृग्दृश्याविति द्वावेव पदार्थावानीदवातम् स्वधयेति तौ चेदङ्गीक्रियेते तत्किमपरमवशिष्यते यन्नासीद्रज इत्यादिना प्रतिषिध्येत तत्राह तस्मादिति । तस्माद्ध तस्मात्खलु पूर्वोक्तान्मायासहिताद् ब्रह्मणोऽन्यत् किंचन किमपि वस्तु भूतभौतिकात्मकं जगन्नास । न बभूव ॥ छन्दस्युभयथेति लिटः सार्वधातुकत्वादस्तेर्भूभावाभावः ॥ ननु तदानीमन्यस्य सत्त्वनिषेधो न शङ्क्यः । असत्त्वे चाप्रसक्तत्वान्न निषेधोपयोग इत्यत आह पर इति । परः परस्तात्सृष्टेरूर्ध्वं वर्तमानमिदं जगत्तदानीं न बभूवेत्यर्थः । अन्यथोक्तरीत्या क्वचिदपि निषेधो न स्यादिति भावः ॥२॥

Gr.—Death was not then, nor was there aught immortal: no sign was there, the day's and night's divider.

That One Thing, breathless breathed by its own nature: apart from it was nothing whatsoever.

स्वधा—दु० अन्नेन हविषा आज्येन पुरोडाशेन च । यदुक्तं निगमे 'घृतं चापां पुरुषं चौषधीनाम्' (ऋ० १० ५१. ८) । अस्य मन्त्रस्य दुर्गाचार्येण व्याख्या प्रस्तुता । तस्याः केचिदंशा अत्रोद्ध्रियन्ते—'अविशिष्टमप्रज्ञातमेकमेव सर्वशक्तिमद् ब्रह्मासीत्...तस्मिन्नेव परमात्मनि यान्नशक्तिस्तया निमित्तभूतया, प्राणितीत्यवशिष्यते तद् ब्रह्म ।

योगी—उस समय न मृत्यु थी न अमृत, न रात्रि तथा दिन का प्रज्ञान था, वह एक अपनी शक्ति से बिना वायु के प्राण धारण कर रहा था, उससे परे अन्य कुछ भी नहीं था ॥२॥

प्रकेतः—प्र—कित् ज्ञाने (ह्वि०) ।

तस्मिन् समये किंचिदपि दृश्यं नासीत्—एकं तदेवासीत् ॥२॥

**तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे-**
**ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।**
**तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्**
**तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥३॥**

सा०—ननूक्तप्रकारेण यदि पूर्वमिदं जगन्नासीत्कथं तर्हि [illegible] जायमानस्य जनिक्रियायां कर्तृत्वेन

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



कारकत्वात् कारकं च कारणावान्तरविशेष इति कारकस्य सतो नियतपूर्वक्षणवर्तित्वस्यावश्यंभावात् । अथ तद्दोषपरिजिहीर्षया जनिक्रियायाः प्रागपि तद्विद्यत इत्युच्यते । कथं तस्य जन्म । अत आह । तमसा गूळ्हमग्र इति । अग्रे सृष्टेः प्राक् प्रलयदशायां भूतभौतिकं सर्वं जगत्तमसा गूळ्हम् । यथा नैशं तमः सर्वपदार्थजातमावृणोति तद्वत् । आत्मतत्त्वस्यावरकत्वान्मायापरसंज्ञं भावरूपाज्ञानमत्र तम इत्युच्यते । तेन तमसा निगूढं संवृतं कारणभूतेन तेनाच्छादितं भवति । आच्छादकात्तस्मात्तमसो नामरूपाभ्यां यदाविर्भवनं तदेव तस्य जन्मेत्युच्यते । एतेन कारणावस्थायामसदेव कार्यमुत्पद्यत इत्यसद्वादिनोऽसत्कार्यवादिनो ये मन्यन्ते ते प्रत्याख्याताः । ननु कारणे तमसि तज्जगदात्मकं कार्यं विद्यते चेत् कथं नासीद्रज इत्यादिनिषेधः । तत्राह तम आसीदिति । तमो भावरूपाज्ञानं मूलकारणम् । तद्रूपता तदात्मनाम् । यतः सर्वं जगत्प्राक् तम आसीदतो निषिध्यत इत्यर्थः । नन्वावरकत्वादावरकं तमः कर्तृ आवार्यत्वाज्जगत्कर्म । कथं तयोः कर्मकर्तृस्तादात्म्यम् । तत्राह । अप्रकेतमिति । अप्रकेतमप्रज्ञायमानम् । अयमर्थः । यद्यपि जगतस्तमसश्च कर्मकर्तृभावो यौक्तिको विद्यते तथापि व्यवहारदशायामिव तस्यां दशायां नामरूपाभ्यां विस्पष्टं न ज्ञायत इति तादात्म्यवर्णनम् । अत एव मनुना स्मर्यते । आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातलक्षणम् । अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः । मनु० १. ५ । इति कुतो वा न प्रज्ञायते तत्राह ॥ सलिलम् ॥ सल गतौ । औणादिक इलच् ॥ इदं दृश्यमानं सर्वं जगत्सलिल कारणेन सङ्गततमविभागापन्नमाः । आसीत् ॥ अस्तेर्लङि तिपि बहुलं छन्दसीतीडभावे हल्ङ्याब्भ्य इति तिलोपे तिप्यनस्तेः । पा० ८. २. ७३ । इति पर्युदासाद्दकारभावः ॥ यद्वा सलिलमिति लुप्तोपमम् । सलिलमिव । यथा क्षीरेणाविभागापन्नं नीरं दुर्विज्ञानं तथा तमसाविभागापन्नं जगन्न शक्यविज्ञानमित्यर्थः । ननु विविधविचित्ररूपभूयसः प्रपञ्चस्य कथमति तुच्छेन तमसा क्षीरेण नीरस्येवाभिभव । तथा तमोऽपि क्षीरवद् बलवदित्येवोच्यते । नहि दुर्बलस्य जगतः सर्गसमयेऽपि नोद्भवसम्भव इत्यत आह । तुच्छ्येनेति । आ समन्ताद्भवतीत्याभु तुच्छ्येन ॥ छान्दसो वकारोपजनः ॥ तुच्छेन तुच्छकल्पेन सदसद्विलक्षणेन भावरूपाज्ञानेनापिहितं छादितमासीत् । दधातेः कर्मणि निष्ठा । दधातेर्हिः । गतिरनन्तर इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् ॥ एकमेकीभूतं कारणेन तमसाविभागतां प्राप्तमपि तत्कार्यजातं तपसः स्रष्टव्यपर्यालोचनरूपस्य महिना माहात्म्येनाजायत । उत्पन्नम् । तपस. स्रष्टव्यपर्यालोचनरूपत्वं चान्यत्राम्नायते । यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः । मु० उ० १. १. ९ । इति ॥३॥

Gr.—Darkness there was: at first concealed in darkness this All was indiscriminated chaos.

All that existed then was void and formless: by the great power of warmth was born of that Unit.

अस्य मन्त्रस्य दुर्गकृतव्याख्यायाः केचिदंशाः अनुवन्ते—तदा हि न द्रष्टा न दर्शनं नापि दृश्योऽर्थ आसीदित्यभिप्रायः । सांख्यास्तु प्रधानं तमः शब्देनोपादानमुपयमानमिच्छन्ति···सलिलं सङ्क्षोभे लीनं सर्वमिदं जगत् सन्मात्रस्यैव भावस्योपरि लीनमासीत् । तुच्छ्येन सूक्ष्मीभूतेन पटमण्डपस्थानीयेन कर्मणा यदपि हितम् इदं जगद् आसीत् सर्गकालापेक्षि तदिदमनादित्वात् संसारस्य तपसः तस्यैव कर्मणो महिना महिम्ना माहात्म्येन कारणावस्थायाम् एकम् अपि सद् अनेकधा उपचिते सर्गकाले प्रतिनियतकर्मोपभोगार्थम् अजायत इति ।

योगी—प्रारम्भ में तमस् से गूढ़ तमस् था, यह सब कुछ अप्रज्ञात अन्तरिक्ष था, जो कुछ भी विद्यमान था, शून्य से आवृत था, वह एक, तपस् की महिमा से आविर्भूत हो गया ॥ ३॥

तस्मिन् समये किंचिदपि वस्तुविषयं नासीत् । सलिलशब्दस्यार्थो मेकडोनलमहोदयेन 'जलम्' इति क्रियते तन्न साधु प्रतिभाति—यदि तदप्रकेतम् (=अप्रज्ञातम्) तदेति नैश्चित्येन किंचिदपि कथं कथयितुं शक्यते । अत्र सलिलशब्दस्यार्थोऽन्तरिक्षमिति । ऋग्वेदस्यास्मिन् मन्त्रेऽयमर्थः स्पष्टः—

'यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत ।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ॥
१०. ७२. ६ ॥३॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


**कामस्तदग्रे समवर्ततादि**
**मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।**
**सतो बन्धुमसति निरविन्दन्**
**हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥**

सा०—ननूक्तरीत्या यदीश्वरस्य पर्यालोचनं जगत पुनरुत्पत्तौ कारणं तदेव किनिबन्धनमित्यत आह कामस्तदग्र इति । अग्रेऽस्य विकारजातस्य सृष्टेः प्रागवस्थायां परमेश्वरस्य मनसि कामः समवर्तत । सम्यगजायत । सिसृक्षा जातेत्यर्थः । ईश्वरस्य सिसृक्षा वा किंहेतुकेत्यत आह मनस इति । मनसोऽन्तःकरणस्य सम्बन्धि वासनाशेषेण मायायां विलीनेऽन्तःकरणे समवेतम् । सामान्यापेक्षमेकवचनम् । सर्वप्राण्यन्तःकरणेषु समवेतमित्यर्थः । एतेनात्मनो गुणाधारत्वं प्रत्याख्यातम् । तादृशं रेतो भाविनः प्रपञ्चस्य बीजभूतं प्रथममतीते कल्पे प्राणिभिः कृतं पुण्यात्मकं कर्म यद्यतः कारणात्सृष्टिसमय आसीत् अभवत् । भूष्णु वर्धिष्णुजायत परिपक्वं सत्फलोन्मुखमासीदित्यर्थः । ततस्तो हेतोः फलप्रदस्य सर्वसाक्षिणः कर्माध्यक्षस्य परमेश्वरस्य मनसि सिसृक्षाजायतेत्यर्थः । तस्यां च जातायां स्रष्टव्यं पर्यालोच्य ततः सर्वं जगत्सृजति । तथा चाम्नायते । सोऽकामयत बहुः स्यां प्रजायेयेति स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वेदं सर्वमसृजत यदिदं किञ्च । तै. आ० ८. ६ । इति श्रुत्यात्मनेत्यमवगमितेऽर्थे विद्वदनुभवमप्यनुग्राहकत्वेन प्रमाणयति सत इति । सतः सत्त्वेनेदानीमनुभूयमानस्य सर्वस्य जगतो बन्धुं बन्धकं हेतुभूतं कल्पान्तरे प्राण्यनुष्ठितं कर्मसमूहं कवयः क्रान्तदर्शना अतीतानागतवर्तमानाभिज्ञा योगिनो हृदि हृदये निरुद्धया मनीषया बुद्धया ॥ सुपां सुलुगिति तृतीयाया लुक् ॥ प्रतीष्य विचार्य ॥ अन्येषामपीति संहितिको दीर्घः ॥ असति सद्विलक्षणेऽव्याकृते कारणे निरविन्दन् । निष्कृष्यालभन्त । विविच्याजानन्नित्यर्थः ॥४॥

Gr.—Thereafter rose Desire in the beginning. Desire, the primal seed and germ of spirit.

Sages who searched with their heart's thought discovered the existent's kinship in the non-existent.

योगी—तब प्रारम्भ में काम उद्भूत हुआ जो मनस का प्रथम रेतस् था । कवियों (क्रान्तदर्शियों) ने हृदय में मनीषा के द्वारा खोज कर के सत् के सम्बन्ध को असत् में विश्लेषण करके प्राप्त किया (जाना) ॥४॥

तस्मिन् समये परमात्मनो मनसि सृष्ट्युत्पत्तेरिच्छा समजनि इयमिच्छा परमात्मनो मनसः प्रथमं रेतः (बीजम्, सृष्ट्युत्पत्तेर्मूलम्) आसीत् । येऽपि जनाः क्रान्तदर्शनाः सन्ति ते बुद्धेः (मनीषायाः) भावनायाः (हृदः) च सामञ्जस्येन सर्वं रहस्यमवगच्छन्ति । बुद्धया तर्कः क्रियते, हृदयेन च ध्यानेन साक्षात्कारः क्रियते । संसारे यत् किंचिदपि ज्ञायते—बुद्धिभावनयोः सामञ्जस्येन ज्ञायते । इदमप्यवगन्तव्यं यद् बुद्धिरपूर्णा हृदयं च पूर्णम् ॥४॥

**तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा-**
**मधः स्विदासी३ दुपरि स्विदासी३त् ।**
**रेतोधा आसन्महिमान आस-**
**न्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥**

स०—एवमविद्याकामकर्माणि सृष्टेर्हेतुत्वेनोक्तानि । अधुना तेषां स्वकार्यजनने शैथ्र्यं प्रतिपाद्यते । येयं नासदासीदित्यविद्या प्रतिपादिता यच्च कामस्तदग्र इति कामो मनसो रेतः प्रथमं यदासीदिति यत्कर्मेपामविद्याकामकर्मणां वियदादिभूतजातानि सृजतां रश्मी रश्मिसदृशो यथा सूर्यरश्मिरुदयानन्तरं निमेषमात्रेण युगपत्सर्वं जगद्व्याप्नोति तथा शीघ्रं सर्वत्र व्याप्नुवन् यः कार्यवर्गो विततो विस्तृत आसीत् । स्विदासीदिति वक्ष्यमाणमत्रापि सम्बध्यते ॥ विचार्यमाणानाम् । पा० ८. २. ९७ । इति प्लुतः । तत्रोदात्त इत्यनुवृत्तेः । स्विदिति वितर्के ॥ स कार्यवर्गः प्रथमतः किं तिरश्चीनस्तिर्यगवस्थितो मध्ये स्थित आसीत् किंवाधोऽवस्तादासीत् । अहोस्विदुपर्युपरिष्टात्किमासीत् ॥ उपरि स्विदासीदिति च । पा० ८. २. १०२ । इत्यनुदात्तः प्लुतः ॥ आत्मनः आकाशः सम्भूत आकाशाद्वायुर्वायोरग्निः । तै० आ० ८. १ । इत्यादिकया पञ्चमीश्रुत्या तत उद्गातारं ततो होतारमितिवत्क्रमप्रतिपत्तौ सत्यामपि विद्युत्प्रकाशवत्सर्गस्य शीघ्रव्यापनेन तस्य क्रमस्य दुर्लक्षणत्वादेतेषु त्रिषु स्थानेषु प्राथम्यं कुत्रेति विचार्यते । एवं नाम शीघ्रं सर्वतो दिक्षु सर्गो निष्पन्न इत्यर्थः । एतदेव विभजते । सृष्टेषु कार्येषु मध्ये केचिद्वावा रेतोधा बीजभूतस्य कर्मणो विधातारः कर्तारो

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



भोक्तारश्च जीवा आसन् अन्ये भावा महिमानः ।। स्वार्थिक इमनिच् ।। महान्तो वियदादयो भोग्या आसन् । एवं माया-सहितः परमेश्वरः सर्वं जगत्सृष्ट्वा स्वयं चानुप्रविश्य भोक्तृ-भोग्यादिरूपेण विभागं कृतवानित्यर्थः । अयमेवार्थस्तैत्ति-रीयके तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । तै०आ०८.६। इत्यारभ्य प्रतिपाद्यते । तत्र च भोक्तृभोग्ययोर्मध्ये स्वधा । अन्न-नामैतत् । भोग्यप्रपञ्चोऽवस्तादवरो निकृष्ट आसीत् । प्रयतिः प्रयतिता भोक्ता परस्तात्पर उत्कृष्ट आसीत् । भोग्यप्रपञ्चं भोक्तृप्रपञ्चस्य शेषभूतं कृतवानित्यर्थः ।। विभाषा परावरा-भ्याम् । पा० ५. ३. २९ । इति प्रथमार्थेऽस्तातिः । अस्ताति च । पा० ५. ३. ४० । इत्यवरशब्दस्यादेशः । अवस्ता-दिति संहितायामीषाअशादित्वात्प्रकृतिभावः ।।५।।

Gr.—Transversely was their severing line extended: what was above it then, and what below it ?

There were begetters, there were mighty forces, free action here and energy up yon-der.

योगी—इनकी रश्मि तिर्यंगवस्थित हुई हुई वितत थी, नीचे क्या था, ऊपर क्या था, रेतस् का आधान करने वाले [जन] थे, महिमा से युक्त [जन] थे, स्वधा नीचे थी और प्रयति ऊपर ।।५।।

स्वधा=ऊर्जा, शक्तिः (Energy,) ।

प्रयतिः=प्रेरणा, संयमः (Impulse, Control)

यथाऽश्वस्य नियन्त्रणं रश्मिना क्रियते स च रश्मि-स्तिरश्चीनो भवति । एवं सृष्टिरचनायामपि स्वधाया नियन्त्रणं कृतम् । स्वधा=महिममयी शक्तिमत्यूर्जा; रेतोधाः=प्रयतिः, प्रेरणा । मानवस्य यत् सामान्यमपि सर्जनकार्यं भवति तत्रापि तत्त्वद्वयम् ऊर्जा संयमः (प्रेरणा) च । एषाम्=अनुसायणमविद्याकामकर्मणाम् । तिरश्चीन इत्यस्य भावः सर्वत्रव्यापीति ।।५।।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्-
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेना-
था को वेद यत आबभूव ।।६।।

सा०—एवं भोक्तृभोग्यरूपेण सृष्टिः सङ्ग्रहेण प्रति-पादिता । एतावद्वा इदमग्न्नं चैवान्नादश्च सोम एवान्नम-ग्निरन्नाद इतिवत् । अथेदानीं सा सृष्टिर्दुर्विज्ञानेति न विस्तरेणाभिहितेत्याह । को अद्धेति । कः पुरुषोऽद्धा पार-मार्थ्येन वेद । जानाति । को वेहास्मिँल्लोके प्र वोचत् । प्रब्रूयात् । इयं दृश्यमाना विसृष्टिर्विविधा भूतभौतिकभोक्तृ-भोग्यादिरूपेण बहुप्रकारा सृष्टिः कुतः कस्मादुपादानकार-णात् कुतः कस्माच्च निमित्तकारणादाजाता । समन्ता-ज्जाता । प्रादुर्भूता । एतदुभयं सम्यक्को वेद को वा विस्त-रेण वक्तुं शक्नुयादित्यर्थः । ननु देवा अजानन्त । सर्वज्ञास्ते ज्ञास्यन्ति वक्तुं च शक्नुवन्तीत्याह । अर्वागिति । देवादयास्य जगतो विसर्जनेन वियदादिभूतोत्पत्त्यनन्तरं विचित्रं पञ्चीकृतं सर्जनं सृष्टिस्तेनार्वागर्वाचीनाः कृताः । भूतसृष्टेः पश्चा-ज्जाता इत्यर्थः । तथाविधास्ते कथं स्वोत्पत्तेः पूर्वकालीनां सृष्टिं जानीयुः । अजानन्तो वा कथं ब्रुवुः । अतस्य दुर्विज्ञानत्वं निर्गमयति । अथैवं सति देवा अपि न जानन्ति किल । तद्व्यतिरिक्तः को नाम मनुष्यादिर्वेद तज्जगत्कारणं जानाति यतः कारणादुत्कृष्टं जगदाबभूव प्रभावत ।।६।।

Gr.—Who verily knows and who can here declare it, whence it was and whence comes this creation ?

The gods are later than this world's produc-tion. Who knows then whence it first came into being ?

योगी—कौन वस्तुतः जानता है, कौन यहाँ भली भाँति कथन कर सकता है कि यह कहाँ से आविर्भूत हुई, यह विविध सृष्टि किस मूल से हुई, देव [भी] इस जगत् की सृष्टि के पश्चात् हुए, तो कौन जानता है कि किस मूल से यह सत्ता में आई ।।६।।

न कश्चिदपि सृष्टिरहस्यं वक्तुं पारयति ।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योम-
न्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ।।७।।

सा०—उक्तप्रकारेण यथेदं जगत्सर्जनं दुर्विज्ञानम् एवं सृष्टं तज्जगद्दुर्ज्ञेयमपीत्याह । इयमिति । यत उपादान-भूतात्परमात्मन इयं विसृष्टिर्विविधा गिरिनदीसमुद्रादिरूपेण विचित्रा सृष्टिराबभूव आजाता सोऽपि किल यदि वा दधे

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



धारयति यदि वा न धारयति। एवं च को नामान्यो धर्तुं शक्नुयात्। यदि धारयेदीश्वर एव धारयेन्नान्य इत्यर्थः। एतेन कार्यस्य धारयितृत्वप्रतिपादनेन ब्रह्मण उपादानकारणत्वमुक्तं भवति। तथा च पारमार्षं सूत्रम्। प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्। वेदां० १. ४. २३। इति। यद्वा। अनेनार्धर्चेन पूर्वोक्तं सृष्टेर्दुर्ज्ञानत्वमेव दृढयति। को वेदेत्यनुवर्तते। इयं विविधा सृष्टिर्यत आबभूव आ समन्तादजायतेति को वेद। न कोऽपि। नास्त्येव जगतो जन्म कदाचिदनीदृशं जगदिति बहवो भ्रान्ता भवन्त्यपि। यतः।। जनिकर्तुः प्रकृतिः। पा० १. ४. ३०। इत्यपादानसंज्ञायां पञ्चम्यास्तसिल्।। यस्मात्परमात्मन उपादानभूतादाबभूव तं परमात्मानं को वेद। न कोऽपि। प्रकृतितः परमाणुभ्यो वा जगज्जन्मेति हि बहवो भ्रान्ताः। तथा स एवोपादानभूतः परमात्मा स्वयमेव निमित्तभूतोऽपि सन् यदि वा दधे विदध इदं जगत्ससर्ज यदि वा न ससर्ज। असन्दिग्धे सन्दिग्धवचनमेतच्छास्त्राणि चेत्प्रमाणं स्युरिति यथा। स एव विदधे। तं को वेद। अजानन्तोऽपि बहवो जडात्प्रधानादकर्तृकमेवेदं जगत्स्वयमजायतेति विपरीतं प्रतिपन्ना विदधतो विधानमजानन्तोऽपि। स एवोपादानभूत इत्यपि को वेद। न कोऽपि। उपादानादन्यस्तटस्थ एवेश्वरो विदध इति हि बहवः प्रतिपन्नाः। देवा अपि यन्न जानन्ति तदर्वाचीनानामेषां तत्परिज्ञाने कैव कथेत्यर्थः। यद्येवं जगत्सृष्टिरत्यन्तदुःखबोधना तर्हि सा प्रमाणपद्धतिमध्यास्त इत्याशङ्क्य तत्सद्भाव ईश्वरो वेदं प्रमाणयति। यो अस्येति। अस्य भूतभौतिकात्मकस्य जगतो योऽध्यक्ष ईश्वरः परम उत्कृष्टे सत्यभूते व्योमन् व्योमन्याकाश आकाशवन्निर्मले स्वप्रकाशे। यद्वा।। अवतेस्तर्पणार्थादन्येभ्योऽपि दृश्यन्त इति मनिन्। नेड्वशि कृतीटि प्रतिषेधः। ज्वरत्वरेत्यादिना वकारोपधयोरूट्। सप्तम्या लुक्। न ङिसम्बुद्धचोरिति नलोपप्रतिषेधः।। व्योमनि विशेषेण तृप्ते। निरतिशयानन्दस्वरूप इत्यर्थः। यद्वा। अवतिर्गत्यर्थः। व्योमनि विशेषेण गन्तव्ये। देशकालवस्तुभिरपरिच्छिन्न इत्यर्थः। व्योमनि विशेषेण ज्ञातरि विशिष्टज्ञानात्मनि। ईदृशे स्वात्मनि प्रतिष्ठितः। श्रूयते हि सनत्कुमारनारदयोः संवादे। स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि। छा० उ० ७.२४.१। इति। ईदृशो यः परमेश्वरः सो अङ्ग। अङ्गेति प्रसिद्धौ। सोऽपि नाम वेद जानाति। यदि वा न वेद न जानाति। को नामान्यो जानीयात्। सर्वज्ञ ईश्वर एव तां सृष्टिं जानीयात् नान्य इत्यर्थः।।७।।

Gr.—He, the first origin of this creation, whether he formed it all or did not form it,

Whose eye controls this world in highest heaven, he verily knows it, or perhaps he knows not.

योगी—यह सृष्टि जिस मूल से सत्ता को प्राप्त हुई धारण करता है तो वह, नहीं धारण करता है तो वह। परम व्योम में जो इस का अध्यक्ष है जानता है तो वह, नहीं जानता है तो वह।।७।।

न कश्चिदपि मनुष्यः सृष्टिरहस्यं ज्ञातुं शक्नोति। अस्याः सृष्टेरध्यक्ष एव जानातु।।७।।

———

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# दुःस्वप्ननाशनम् (ऋ० १०.१६४)

अस्मिन् सूक्ते मानवस्य मनःशक्तेर्वर्णनम् । मानवस्य मनसि महती शक्तिरस्ति । 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' । यजुर्वेदस्य शिवसंकल्पमन्त्रेषु मनसो महाशक्तेर्वर्णनम्—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तममृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किं च न कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्
परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥४॥

यस्मिन् ऋचः साम यजूꣳषि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिꣳश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्
नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥६॥

मनुष्यस्य मनस्यानन्ताः शक्तयः प्रसुप्ताः सन्ति । यदि मनुष्यस्तासां शक्तीनां प्रबोधं करोति तदाऽसौ यत् किंचिदपि कर्तुमिच्छति, कर्तुं पारयति ।

ऋग्वेदस्यास्मिन् सूक्ते ये मन्त्राः सन्ति तेषामर्थज्ञानपूर्वकजपेनातिदुर्बलमनस्यपि शक्तिसंचारो जायतेतराम् ।

अस्य सूक्तस्य ऋषिः

अस्य सूक्तस्य ऋषिः प्रचेता आङ्गिरसः=प्रकृष्टज्ञानी । आङ्गिरसो व्याख्यातः पुरस्तात् ।

सा०—अपेहीति पञ्चर्चं त्रयोदशं सूक्तम् । आङ्गिरसस्य प्रचेतस आर्षम् । तृतीया त्रिष्टुप् पञ्चमी पङ्क्तिः । दुःस्वप्ननाशनं देवता । तथा चानुक्रान्तम् । अपेहि पञ्च प्रचेता दुःस्वप्नघ्नं पङ्क्त्यन्तं त्रिष्टुम्मध्यमिति ॥ लैङ्गिको विनियोगः ॥

अपेहि मनसस्पते-
ऽप क्राम परश्चर ।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व
बहुधा जीवतो मनः ॥१॥

सा०—हे मनस्पते स्वप्नावस्थस्य मनसः स्वामिन् दुःस्वप्नाधिदेव अपेहि । अपगच्छ स्वप्नावस्थावतो मत्तो निर्गच्छ । निर्गत्य चाप क्राम । देशान्तरं गन्तुं पादौ विक्षिप । दूरदेशं गच्छेत्यर्थः । अपक्रम्य च परः परस्ताद्विप्रकृष्टे देशे चर । यथेच्छं वर्तस्व । अपि च निर्ऋत्यै पापदेवतायै परः परस्ताद्वर्तमानाया आ चक्ष्व । वयं न बाधनीया इति प्रब्रूहि । जीवतो मम मनो बहुधा बहुप्रकारं भवति । भोक्तव्येषु बहुषु विषयेषूत्सुकं सद्वर्तते । अतस्तद्विनाशकं दुःस्वप्नदर्शनं नश्यत्वित्यर्थः ॥१॥

Gr—Avaunt, thou Master of the mind ! Depart and vanish far away.

Look on Destruction far from hence. The live man's mind is manifold.

निर्ऋतिः—या० निरमाणात् । ऋच्छतेः कृच्छ्रापत्तिरितरा ।

योगी—हे मेरे मन के स्वामी बने हुए (अथवा मेरे मन को गिराने वाले) [दुर्विचार, दुर्बल विचार] दूर चला



Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


जा, दूर भाग जा, दूर विचरण कर, विपत्ति के लिए कहीं दूर जा कर बात कर; जीवित व्यक्ति का मन बहुधा (अनेक शक्तिसंपन्न, अनेक उपायों से संपन्न, होता है ॥१॥

अपेहि=अप+इहि—इ गतौ ।

अपक्राम—क्रम्—पादविक्षेपे ।

चर—चर्—गतिभक्षणयोः ।

मन—मन्—ज्ञाने, अवबोधने ।

मनुष्यस्य मनस्यनन्ताः प्रसुप्तशक्तयः सन्ति—तासां प्रबोधः कर्तव्यः ॥१॥

**भद्रं वै वरं वृणते**
**भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम् ।**
**भद्रं वैवस्वते चक्षु-**
**र्बहुत्रा जीवतो मनः ॥२॥**

सा०—भद्रं वै शोभनमेव वरं वरणीयं दुःस्वप्न-विनाशरूपं फलं वृणते । सर्वे जनाः प्रार्थयन्ते । दक्षिणं प्रवृद्धं भद्रं शोभनं तत्फलं युञ्जन्ति प्राप्नुवन्ति च । वैवस्वते विवस्वते विवस्वतः पुत्रे यमे विषये भद्र शोभनमेव चक्षुर्दर्शनमहं प्रार्थये । दुःस्वप्नाधिदेवो वैवस्वतोऽस्मान्मा बाधताम् । भद्रमेव दर्शनमिह लोकेऽवस्थानलक्षणं करोत्वित्यर्थः । बहुषु हि विषयेषु जीवतो मम मनो वर्तते ॥२॥

Gr—A happy boon do men elect, a mighty blessing they obtain.

Bliss with Vaivasvata they see. The live man's mind seeks many a place.

वैवस्वतः—विवस्वतोऽपत्यम् ।

विवस्वान्—या० विवासनवान् ।

योगी—[मनुष्य] भद्र वर का ही वरण करते हैं, [वे] शक्तिशाली (उत्साहपूर्ण) भद्र को प्राप्त करते हैं, [वे] वैवस्वत (विवस्वान् के पुत्र) में भद्र दृष्टि को प्राप्त करते हैं—जीवित व्यक्ति का मन अनेकस्थानगामी है ॥२॥

विवस्वान्—वस्—दीप्तौ ।

येषां मनः प्रबुद्धं ते सर्वत्र भद्रमेव प्राप्नुवन्ति—तेषु महान् उत्साहो भवति । तेषां जीवनं सर्वासु दिक्षु प्रकाशमयं भवति ॥२॥

**यदाशसा निःशसाभिशसो-**
**पारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः ।**
**अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्य-**
**जुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ॥३॥**

सा०—यद् दुष्कृतमाशसाशंसनेनाभिलाषेण जाग्रतो जागरणावस्थायां वर्तमाना वयमुपारिम उपगतवन्तः स्म यच्च स्वपन्तः स्वप्नावस्थां प्राप्ता उपगतवन्तः । तथा निःशसा निःशसनेन निर्गताभिलाषेणाभिशसाभिगताभिलाषेण च कारणेनावस्थाद्वये यद् दुष्कृतमुपागच्छेम । तानि विश्वानि सर्वाण्यजुष्टान्यसेव्यान्यप्रियाणि वा दुष्कृतानि दुष्कर्माण्यग्निरस्मदारेऽस्मत्तो दूरदेशेऽप दधातु । अपकृष्य स्थापयतु ॥३॥

Gr.—If by address, by blame, by imprecation we have committed sin, awake or sleeping,

All hateful acts of ours, all evil doings may Agni bear away to distant places.

योगी—जो आशस्, निःशस् तथा अभिशस् के द्वारा, जो जागते हुए, जो सोते हुए हम पाप करते हैं उन सब असेवनीय दुष्कृतों को अग्नि हमसे दूर ले जाए ॥३॥

आशस्—(आ)शस्—हिंसायाम् । आशस्=हिंसाभावः; निःशस्=हिंसावृत्तिः, अभिशस्=हिंसाकर्म ।

दुःखस्य मूलं हिंसाया भावः । ईर्ष्याद्वेषादिकलुषितजनस्य मनो दुर्बलं भवति । विश्वप्रेमयुक्तस्य जनस्य मनः सबलं भवति । अग्निः=संकल्पशक्तिः (हृश्यतामग्निसूक्ते) ॥३॥

**यदिन्द्र ब्रह्मणस्पते-**
**भिद्रोहं चरामसि ।**
**प्रचेता न आङ्गिरसो**
**द्विषतां पात्वंहसः ॥४॥**

सा०—हे इन्द्र हे ब्रह्मणस्पते युवयोर्विषये यदभिद्रोहमभितोद्रोहं पापं दुःस्वप्नकारणं चरामसि आचरामः कुर्मः तस्मादभिद्रोहादस्मान् रक्षतमिति शेषः । अपि चाङ्गिरसोऽङ्गिरोभिः स्तोतृभिः सबान्धवः प्रचेताः प्रकृष्टज्ञानो वरुणश्च द्विषतां द्वेष्टृणामंहस्तत्कर्तृकादस्मद्विषयात्पापान्नोऽस्मान्पातु । रक्षतु । यद्वा ॥ विभक्तिव्यत्ययः ॥ आङ्गिरसमङ्गिरोगोत्रं प्रचेतसमपि नः ॥ वचनव्यत्ययः ॥ मां द्विषतामंहसः

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



पातु । प्रकृतत्वादिन्द्र इति गम्यते ॥४॥

Gr—When, Indra, Brahmanaspati, our deeds are wrongful and unjust.

May provident Angirasa prevent our foes from troubling us.

**योगी**—हे इन्द्र, हे ब्रह्मणस्पति, हम जो भी अभिद्रोह करते हैं—हे आङ्गिरस प्रचेता, हमारी उस पाप से रक्षा करो तथा वह [हमारे] शत्रुओं की ओर से आने वाले पाप (कष्ट) से भी हमारी रक्षा करो ॥४॥

मनसः सबलतायै मनुष्यस्य प्रथमं कर्तव्यमिदं यदसौ कंचिदपि प्रति द्रोहभावनां न धारयतु—सर्वानपि प्रेमभावनया पश्यतु—(मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे (वेदः)। आङ्गिरसः प्रचेता एवैवं कर्तुं पारयति। एतादृशस्य जनस्य कश्चिदपि शत्रुर्न भवति—यदि कश्चित् स्यादपि, न स हानिं कर्तुं पारयति। इन्द्रस्य (जीवात्मनः) शुद्धिः कर्तव्या। अस्य कृते, ब्रह्मणस्पतेरुपासना कर्तव्या। (ब्रह्मणस्पतिविषये ज्ञानसूक्ते दृश्यताम्), ॥४॥

**अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम्।**
**जाग्रत्स्वप्नः सङ्कल्पः पापो**
**यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु**
**यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ॥५॥**

सा०—अद्यास्मिन्काले ऽजैष्म। जेतव्यानि सर्वाणि जितवन्तोऽभूम दुःस्वप्नस्य नष्टत्वात्। तदनन्तरमसनाम च। सम्भक्तव्यानि च समभजाम। तथा वयमनागसोऽनपराधाश्चाभूम। जाग्रत्स्वप्नावस्थयोः सम्बन्धी पापः पापफलरूपः स सङ्कल्पो दुःस्वप्नाख्यव्यवसायो यं शत्रुं वयं द्विष्मः तमृच्छतु। प्राप्नोतु। यश्च नोऽस्मान्द्वेष्टि तमृच्छतु। प्राप्नोतु ॥५॥

Gr.—We have prevailed this day and won: we are made free from sin and guilt.

All thoughts, that visit us awake or sleeping,
Seize the man we hate, yea, seize the man who hateth us.

**योगी**—आज हम विजयी हो गए हैं तथा हमने प्राप्तव्य प्राप्त कर लिया है। हम पापरहित हो गए हैं। जाग्रदवस्था में तथा सुप्तावस्था में आया हुआ पापपूर्ण संकल्प जिसके साथ हमारा द्वेष है उसे प्राप्त हो, जिसका हमारे साथ द्वेष है उसको प्राप्त हो ॥५॥

'यं द्विष्मः' 'यो नो द्वेष्टि' इत्यादि कथयित्वा द्वेषभावना न प्रदर्शिता यतोऽस्मात् पूर्वम् 'अनागसोऽभूम' इति कथितम्। वयमनागसस्तथापि केचन जना अस्मान् ईर्ष्यादिकारणाद् द्वेषपरायणा भवन्ति। एतादृशैर्जनैः सह संघर्षोऽनिवार्यः परन्त्वस्माकमनेन सार्धमिदमप्यनिवार्यं कर्तव्यं यद् वयमनागसस्तिष्ठेम ॥५॥

---

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



अस्मिन्नध्याये सर्वज्ञस्य सर्वव्यापिनः सर्वशक्तिमतश्च परमात्मनो महिमा वर्णितः । मनुष्यस्य जीवनयात्रायां परमात्मैव मार्गप्रदर्शकः । यात्रा तु मनुष्येण स्वपुरुषार्थेनैव कर्त्तव्या, यतः स्वपुरुषार्थं विना मनुष्यस्य विकासो न सम्भवति । जीवनयात्राया मार्गे परमात्मा मार्गप्रदर्शकरूपेणास्माभिः सह वर्त्तते । अन्धकारे स प्रदीपं गृहीत्वाऽस्माभिः सह प्रयाति ।

परमात्मा सदैव सहायताप्रदानाय तत्परः । यः कश्चिदपि मनुष्यः पुरुषार्थं विदधत् तस्य परमात्मनो ध्यानं करोति, प्रकाशेन तस्य बुद्धिरालोकिता भवति, स मेधावान् भवति । प्रसिद्धे गायत्रीमन्त्रेऽपि 'धियो यो नः प्रचोदयाद्' इति प्रार्थना ।

अनन्तस्य परमात्मनोऽनन्ते विश्वेऽनन्ता आनन्दाः । तेषामानन्दानां निरन्तरवृष्टिर्जायते, यस्य यावत्पात्रं स प्राप्नोति—करोति स प्रभुर्योगिन् रत्नवृष्टिं निरन्तरम् । किंतु शीर्णः प्रसेवस्ते प्रभोर्यत्ना निरर्थकाः ।। (प्रभु तुझको देता यहाँ, योगी भरभर रत्न । पर तेरी झोली फटी, प्रभु के व्यर्थ प्रयत्न ।।)

प्रभुः सर्वेषां पिता विधाता बन्धुर्माता च वर्त्तते । अस्माभिः सर्वैर्जनैः सह स्नेहभावेनाचरणीयं नित्यं 'सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय' प्रयतितव्यम् । प्रभोः प्रकाशं गृहीत्वा पुरुषार्थे तत्परः सर्वहिते रतो जनः सदाऽऽनन्दे तिष्ठति ।।

**तदेवाग्निस्तदादित्य-**
**स्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।**
**तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म**
**ता आपः स प्रजापतिः ।।१।।**

उ०—इदानीं सर्वे मन्त्राः प्राक्प्रवायुमित्यस्मादनुवाकात्सर्वमेधसम्बद्धाः । ब्रह्माण आर्षम् । तदेवाग्निः द्वे अनुष्टुभौ । विज्ञानात्मा परेणात्मना विशिष्टाऽन्यादिषु ओतप्रोतत्वेनोपास्योऽभिधीयते । तदेव कारणमग्निः तदादित्यः तद्वायुः तत् उ चन्द्रमाः । उकार एवार्थे । तदेव शुक्रं त्रयीलक्षणम् । तद् ब्रह्म परम् । ता आपः । सः प्रजापतिः ।।१।।

म०—पुरुषमन्त्रा उक्ताः । अथ सर्वमेधमन्त्रा उच्यन्ते प्रवायुमच्छेत्यस्मात्प्राक् (३३।५५।) । स्वयंभुब्रह्मदृष्टा आत्मदेवत्याः सप्तमेऽहनि आप्तोर्यामसंज्ञिके सर्वहोमे विनियुक्ताः 'आप्तोर्यामः सप्तममहर्भवति' इत्युपक्रम्य 'सर्वं जुहोति सर्वस्यास्यै सर्वस्यावरुद्ध्यै (१३।७।१।६) इति श्रुतेः । द्वे अनुष्टुभौ । विज्ञानात्मा परेणात्मना विशिष्टोऽन्यादिष्वोतप्रोतत्वेनोपास्योऽभिधीयते । अग्निः तदेव कारणं ब्रह्मैव आदित्यस्तदेव वायुस्तदेव चन्द्रमास्तत् तदेव । उ एवार्थे । शुक्रं शुक्लं तत् प्रसिद्धम् । ब्रह्म त्रयीलक्षणं तत् ब्रह्मैव । ताः प्रसिद्धाः आपः जलानि स प्रसिद्धः प्रजापतिरपि तदेव ब्रह्म ।।१।।

द०—तदेवेत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।। अथ परमेश्वरः कीदृश इत्याह ।।

**पदार्थः**—(तत्) सर्वज्ञं सर्वव्यापि सनातनमनादि सच्चिदानन्दस्वरूपं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं न्यायकारि दयालु जगत्स्रष्टृ जगद्धर्त्तृ सर्वान्तर्यामि (एव) निश्चये (अग्निः) ज्ञानस्वरूपत्वात् स्वप्रकाशत्वाच्च (तत्) (आदित्यः) प्रलये सर्वस्यादातृत्वात् (तत्) (वायुः) अनन्तबलत्वसर्वधर्तृत्वाभ्याम् (तत्) (उ) (चन्द्रमाः) आनन्दस्वरूपत्वाद् आह्लादकत्वाच्च (तत्) (एव) (शुक्रम्) आशुकारित्वाच्छुद्धभावाच्च (तत्) (ब्रह्म) सर्वेभ्यो महत्त्वात् (ताः) (आपः) सर्वत्र व्यापकत्वात् (स) (प्रजापतिः) सर्वस्याः प्रजायाः स्वामित्वात् ।।१।।

**अन्वयः**—हे मनुष्यास्तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तच्चन्द्रमास्तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स उ प्रजापतिरस्त्येवं यूयं विजानीत ।।१।।



Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



**भावार्थः**—हे मनुष्या यथेश्वरस्येमान्यग्न्यादीनि गौणिकानि नामानि सन्ति तथान्यानीन्द्रादीन्यपि वर्त्तन्ते। अस्यैवोपासना फलवती भवतीति वेद्यम् ॥१॥

Gr.—Agni is That; the Sun is That ; Vāyu and chandramas are that. The Bright is That; Brahma is that, those waters, that prajāpati.

(That: *tad* **the** supreme Self. *Chandramas:* the moon. *Those*: the celebrated.)

This and the two following Books contai n texts and formulas to be used at the performance of a Sarvamedha or Sacrifice for universal Success and Prosperity, a ten-day ceremony that ranks higher and is considered to be more important than even the Purushamedha. After performing this ceremony the Sacrificer has to leave his home and retire to the wilderness for the rest of his life. This Book is considered to be an upanishad, entitled Tadveda from the first two words.

**आदित्यः**—या०—आदत्ते रसान्, आदत्ते भासं ज्योतिषाम्, आदीप्तो भासेति वा, अदितेः पुत्र इति वा। **अदितिः**—या०—अदितिरदीना देवमाता दु०—'अदीना' इत्यवगमः, 'देवमाता' अभिधेयैतिहासिकपक्षेण। **वायुः**—या०—'अथातो मध्यस्थाना देवताः। वायुः प्रथमागामी भवति। तासां वायुर्वातेः, वेतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः। एतेरिति स्थौलाष्ठीविः, अनर्थको वकारः।' दुर्गः—'मध्यमस्य वर्षकर्मोपलक्षणत्वाद् वर्षकर्मणि च वायोरधिकारः प्रथमः स्यात्। कथमिति। वाय्वात्मनैव हि मध्यम ऊर्जान्मासान्परतः सार्वदिक्कमुदकमुपसंहरन्नोषधिवनस्पतिजलाशयेभ्य उदकमन्तरिक्षलोकस्य गर्भमुपचिनोति। स मासाष्टकेन संभृतोदकगर्भो विपक्वः प्रावृषं प्राप्य प्रसवाय प्रकल्पते। तदुक्तम्—वान्ति पर्णशुषो वातास्ततः पर्णमुचोऽपरे। ततः पर्णरुहो वान्ति ततो देवः प्रवर्षति ॥.....स एष संभृतोदकगर्भो वायुर्विवृण्वन्मेघजालेन नभो मध्यमो वरुणः संपद्यते। ततो रुदद् रुद्रः। तत इरां ददद् इन्द्रः। ततो रसान् प्रार्जयन् पर्जन्यः।'

**चन्द्रमाः**—व्याख्यातः पुरस्तात्। **शुक्रम्**—या०शुक्रं शोचतेर्ज्वलतिकर्मणः। **ब्रह्म**—व्याख्यातं पुरस्तात्। **आपः**—या०आपनाः। **प्रजापतिः**—या०—प्रजानां पाता वा पालयिता वा।

**योगी**—वह ही अग्नि है, वह आदित्य है, वह वायु है, वही चन्द्रमा है, वह ही शुक्र है, वह ब्रह्म है, वही व्यापक (अन्तरिक्ष, जल इत्यादि) है, वह प्रजापति है ॥१॥

**आदित्यः**—अदितेः पुत्रः। न दितिः=अदितिः। दितिः—दो—अवखण्डने। वायुः—वा गतिगन्धनयोः। चन्द्रमाः— चदि—आह्लादे। शुक्रम्—शुच्—शोके; प्रकाशे (ह्विटनीः), निघ०—शोचतिर्ज्वलतिकर्मा। शुच् (ईशुचिर्)—पूतिभावे; शौचे विशरणे क्लेदे (वोपदेवः)।

**ब्रह्म**—'एष म आत्माऽन्तर्हृदय एतद् ब्रह्म' (छा० उ०); 'एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति' (छा० उ०); 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' (बृ० उ०); 'अभयं वै ब्रह्म' (बृ० उ०); 'ओं खं ब्रह्म' (बृ० उ०); 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै० उ०); 'ऊर्ध्वमूलं त्रिपाद् ब्रह्म' मं० उ०); 'निर्दोषं हि समं ब्रह्म' (गीता); 'ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणः' (गीता)।

आपः—आप् (आप्लृ) व्याप्तौ।

यत्किञ्चिदपि संसारे विशिष्टगुणयुक्तमस्ति तत्परमात्मनो दिव्यशक्तीनामेव प्रभावः ॥१॥

सर्वे निमेषा जज्ञिरे
विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं
न मध्ये परिजग्रभत् ॥२॥

उ०—सर्वे निमेषाः। सर्वे निमेषत्रुटिकाष्ठादयः कालविशेषाः जज्ञिरे जाताः विद्युतः विद्युत्पर्जन्यस्तनयित्नवः। पुरुषादधि सकाशात्। न च एनं पुरुषं सर्वस्यापि जनकं सन्तम् ऊर्ध्वं न च तिर्यञ्चं न च मध्ये परिजग्रभत् न परिगृह्णाति कश्चिदपि। नह्यसौ प्रत्यक्षादीनां विषयः। आगमो हि तत्र प्रवर्तते। तदुक्तम् 'एष नेति नेत्यात्मना अगृह्यो नहि गृह्यते' इत्यादि ॥२॥

म०—सर्वे निमेषाः त्रुटिकाष्ठाघट्यादयः कालविशेषाः पुरुषात् अधि पुरुषसकाशाज्जज्ञिरे। कीदृशात्पुरुषात्। विद्युतः विशेषेण द्योतते विद्युत् तस्मात्। किंच कश्चिदपि एनं पुरुषमूर्ध्वमुपरिभागे न परिजग्रभत्परिगृह्णाति। एनं तिर्यञ्चं चतुर्दिक्षु न परि मध्यदेशेऽपि न गृह्णाति। न ह्यसौ

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



प्रत्यक्षादीनां विषय इत्यर्थः । 'स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यते' इति श्रुतेः । जग्रभत् ग्रहेः शतरि जुहोत्यादित्वेन रूपम् ॥२॥

द०—सर्व इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

**पदार्थः**—(सर्वे) (निमेषाः) नेत्रोन्मीलनादिलक्षणाः कलाकाष्ठादिकालाऽवयवाः (जज्ञिरे) जायन्ते (विद्युतः) विशेषेण द्योतमानात् (पुरुषात्) पूर्णाद् विभोः (अधि) (न) निषेधे (एनम्) परमात्मानम् (ऊर्द्ध्वम्) उपरिस्थम् (न) (तिर्यञ्चम्) तिर्यक्स्थितमधःस्थं वा (न) मध्ये (परि) सर्वतः (जग्रभत्) गृह्णाति ॥२॥

**अन्वयः**—हे मनुष्या यस्माद् विद्युतः पुरुषात् सर्वे निमेषा अधि जज्ञिरे तमेनं कोऽपि नोर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत् तं यूयं सेवध्वम् ॥।

**भावार्थः**—हे मनुष्या यस्य निर्माणेन सर्वे कालावयवा जाता यच्चोर्ध्वमधो मध्ये पार्श्वतो दूरे निकटे वा कथयितुमशक्यं यत् सर्वत्र पूर्णं ब्रह्मास्ति तद् योगाभ्यासेन विज्ञाय सर्वे भवन्त उपासीरन् ॥२॥

Gr.—All twinklings of the eyelid sprang from purusha, resplendent One.

No one hath comprehended him above, across, or in the midst,

(*Twinklings:* moments and measures of time. *comprehended:* as an object of perception).

**पुरुषः**—दृश्यतां पुरुषसूक्तम् ।

**योगी**—सब निमेष विद्योतमान पुरुष को आधार बनाकर प्रादुर्भूत होते हैं । उसको [कोई] न तो ऊपर, न तिर्यक्, न ही मध्य में परिग्रहण कर सकता है ॥२॥

निमेषाः—नि मिष्—सेचने ; स्पर्धायाम्; (निमीलनोन्मीलनयोः—ह्विटनीः) । मेषो मिषतेर्दर्शनार्थस्य (दुर्गाचार्यः) । विद्युतः—वि—द्युत्—दीप्तौ ।

जग्रभत्—ग्रह् (वेदेषु 'ग्रभ्')—उपादाने ।

परमात्मा विद्योतमानः—

'दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद् युगपदुत्थिता । यदि भा सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य [illegible] ॥ (गीता) ॥ परमात्मसाक्षात्कारः कठिनः । स वाचां मनसो बुद्धेश्चागोचरः ॥२॥

**न तस्य प्रतिमा अस्ति**
**यस्य नाम महद्यशः ।**
**हिरण्यगर्भ इत्येष**
**मा मा हिꣳसीदित्येषा**
**यस्मान्न जात इत्येषः ॥३॥**

उ०—न तस्य गायत्री द्विपदा । न तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानभूतं किंचिद्विद्यते । यतो यस्य नाम महद्यश इत्येष वेदान्तविदः पठन्ति हिरण्यगर्भ इत्येष चतुर्ऋचोऽनुवाको दूरविप्रकर्षेण हिरण्यगर्भं प्रतिमाभूतमाह । मा मा हिꣳसीदित्येषा च ऋक् यस्मान्न जात इत्येषा च द्विकण्डिकोऽनुवाकः षोडशिदैवत्योऽदूरविप्रकर्षेणाभिवदति । आसां च काण्डिकानां ब्रह्मयज्ञेऽध्ययनं कर्त्तव्यं प्रतीकग्रहणत्वात् ॥३॥

म०—द्विपदा गायत्री । तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं किंचिद्वस्तु नास्ति । अतएव नाम प्रसिद्धं महत् यशः यस्यास्ति । सर्वातिरिक्तयशा इत्यर्थः । हिरण्यगर्भ इत्येषोऽनुवाकश्चतुर्ऋचः हिरण्यगर्भः यः प्राणतः यस्येमे च आत्मदा इति (२५। १०—१३) । मा मा हिंसीज्जनितेत्येका एषा (१२-१०२) । यस्मान्न जातः, इन्द्रश्च सम्राडिति । (८।३६-३७) द्व्यृचोऽनुवाकः) एताः प्रतीकचोदिताः पूर्वं पठितत्वादादिमात्रेणोक्ताः ब्रह्मयज्ञे जपे च सर्वा अध्येयाः । एवं सर्वत्र ॥३॥

द० न तस्येत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः, हिरण्यगर्भः परमात्मा देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

**पदार्थः**—(न) निषेधे (तस्य) परमेश्वरस्य (प्रतिमा) प्रतिमीयते यया तत्परिमापकं सदृशं तोलनसाधनं प्रतिकृतिराकृतिर्वा (अस्ति) वर्त्तते (यस्य) (नाम) नामस्मरणम् (महत्) पूज्यं बृहत् (यशः) कीर्त्तिकरं धर्म्यकर्म्मचरणम् (हिरण्यगर्भः) सूर्यविद्युदादिपदाधिकरणः (इति) (एषः) अन्तर्यामितया प्रत्यक्षः (मा) निषेधे (मा) मां जीवात्मानम् (हिंसीत्) हन्यात् ताडयेद् विमुखं कुर्यात् (इति) (एषा) प्रार्थना प्रज्ञा वा (यस्मात्) कारणात् (न) निषेधे (जातः)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



उत्पन्नः (इति) (एषः) परमात्मा ॥३॥

**अन्वयः**—हे मनुष्या यस्य महद् यशो नामाऽस्ति यो हिरण्यगर्भ इत्येषो यस्य मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येष उपासनीयोऽस्ति तस्य प्रतिमा नाऽस्ति । यद्वा ।

**पक्षान्तरम्**—हिरण्यगर्भ इत्येष (२५. १०-१३) उक्तोऽनुवाको मा मा हिंसीदित्येषोक्ता (१२. १०२) ऋग् यस्मान्न जात इत्येष (८. ३६, ३७) उक्तोऽनुवाकश्च । यस्य भगवतो नाम महद् यशोऽस्ति तस्य प्रतिमा नास्ति ॥३॥

**भावार्थः**—हे मनुष्या यः कश्चिद् देहधारी न भवति यस्य किञ्चिदपि परिमाणं नास्ति यस्याज्ञापालनमेव नामस्मरणमस्ति य उपासितः सन्नुपासकाननुगृह्णाति वेदानामनेकस्थलेषु यस्य महत्त्वं प्रतिपाद्यते यो न म्रियते न विक्रियते न क्षीयते तस्यैवोपासनां सततं कुरुत यद्यस्माद् भिन्नस्योपासनां करिष्यन्ति तर्ह्यनेन महता पापेन युक्ताः सन्तो भवन्तो दुःखक्लेशैर्हता भविष्यन्ति ॥३॥

Gr.—There is no counterpart of him whose glory verily is great,

In the beginning rose Hiranyagarbha etc. Than whom there is no other born etc. (*In the beginning, etc.*)

**हिरण्यगर्भः**—या०—'हिरण्यगर्भो हिरण्मयो गर्भः। हिरण्मयो गर्भोऽस्येति वा । गर्भो गृभेः गृणात्यर्थे । गिरत्यनर्थानिति वा । यदा हि स्त्री गुणान् गृह्णाति गुणाश्चास्या गृह्यन्तेऽथ गर्भो भवति ।'

**योगी**—उसका प्रतिमानभूत कोई नहीं है, जिसका नाम महान् यश है, जिसे हिरण्यगर्भ यह [कहते हैं] वह मेरी हिंसा न करे यह मेरी प्रार्थना है, 'जिससे बड़ा कोई नहीं हुआ' यह उसका स्वरूप है ।

विद्वज्जन इस मन्त्र में तीन मन्त्रों के प्रतीकों की चर्चा करते हैं—

हिरण्यगर्भ इत्येषः—

यजुर्वेद (२५. १०-१३)

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वै-
क इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥११॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा
यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१२॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१३॥

मा मा हिंसीदित्येषा—यजुः १२. १०२ ।

मा मा हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या
यो वा दिवं सत्यधर्मा व्यानट् ।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यस्मान्न जात इत्येषः—(यजुः ८. ३६, ३७)

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति
य आविवेश भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया संरराणः
स्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ॥३६॥

इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा
तौ ते भक्षं चकल्पतुरस्य सर्वम् ।
तयोरहमनुभक्षं भक्षयामि
वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु मह्य प्रायेण स्वाहा ॥३७॥

परमात्माऽप्रतिमः । अतो महद्यशस्वी । नेदृशं यशः कस्यचिदप्यस्ति । तस्य महिम्नि बहुषु जन्मेषु सविस्तरं वर्णितः ॥३॥

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः
पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥४॥

उ०—एषो ह । त्रिष्टुभः सर्वाः सदसस्पतिमद्भुतमित्यस्या गायत्र्याः प्राक् । इदानीं स्वरूपतः कथयति एष एव देवः प्रदिशः दिशश्च सर्वाः अनुव्याप्य वर्तते तिर्यगूर्ध्वमधश्चेति । पूर्वो ह जात अनादिनिधनः संभूतः । स उ गर्भे अन्तः स एव च मातुरुदरे अन्तर्गर्भे व्यवतिष्ठते । स एव

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


च जातः स एव च जनिष्यमाणः। तदुक्तम् 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानीति शान्त उपासीते'ति प्रतिपदार्थमञ्चनः। हे जनाः तिष्ठति सर्वतोमुखः सर्वतोक्षिशिरोग्रीवपाणिपादः तिष्ठति। अचिन्त्यशक्तिरित्यर्थः। जना इत्याद्युदात्तस्वरमपि स्वरामन्त्रितार्थस्यादावेव वर्तते ॥४॥

म०—चतस्रस्त्रिष्टुभः। ह प्रसिद्धम्। एषो ह देवः सर्वाः प्रदिशः अनुतिष्ठति व्याप्य स्थितः। हे जनाः, ह प्रसिद्धमेष पूर्वः प्रथमो जात उत्पन्नः। गर्भे अन्तः गर्भमध्ये स उ स एव तिष्ठति जातोऽपि स एव जनिष्यमाणः उत्पत्स्यमानोऽपि स एव। प्रत्यङ् प्रतिपदार्थमञ्चति प्रत्यङ्। सर्वतोमुखः सर्वतो मुखाद्यवयवा यस्य। अचिन्त्यशक्तिरित्यर्थः ॥४॥

द०—एष इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। आत्मा देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पदार्थः—(एषः) परमात्मा। अत्र विभक्तेरलुक् (ह) प्रसिद्धम् (देवः) दिव्यस्वरूपः (प्रदिशः) (अनु) आनुकूल्ये (सर्वाः) दिशश्च (पूर्वः) प्रथमः (ह) प्रसिद्धम् (जातः) प्राकट्यं प्राप्तः (सः) (उ) एव (गर्भे) अन्तःकरणे (अन्तः) मध्ये (सः) (एव) (जातः) प्रसिद्धः (सः) (जनिष्यमाणः) प्रसिद्धिं प्राप्स्यमानः (प्रत्यङ्) प्रतिपदार्थमञ्चति प्राप्नोति (जनाः) विद्वांसः (तिष्ठति) वर्त्तते (सर्वतोमुखः) सर्वतो मुखाद्यवयवा यस्य सः ॥४॥

अन्वयः—हे जना एषो ह देवः सर्वाः प्रदिशोऽनुव्याप्य स उ गर्भेऽन्तः पूर्वो ह जातः स एव जातः स जनिष्यमाणः सर्वतोमुखः प्रत्यङ् तिष्ठति स युष्माभिरुपासनीयो वेदितव्यश्च ॥४॥

भावार्थः—अयं पूर्वोक्त ईश्वरो जगदुत्पाद्य प्रकाशितः सन् सर्वासु दिक्षु व्याप्येन्द्रियाण्यन्तरेण सर्वेन्द्रियकर्माणि सर्वगतत्वेन कुर्वन् सर्वप्राणिनां हृदये तिष्ठति सोऽतीतानागतेषु कल्पेषु जगदुत्पादनाय पूर्वं प्रकटीभवति स ध्यानशीलेन मनुष्येण ज्ञातव्यो नान्येनेति भावः ॥४॥

**Gr.—This very God pervadeth all the regions; yea, born aforetime, in the womb he dwelleth.**

**He verily born and to be born hereafter meeteth his offspring, facing all directions.**

**योगी**—यह ही देव सब दिशाओं व प्रदिशाओं (सब प्रदेशों) को [व्याप्त करके स्थित] है, यह ही सबसे पूर्व प्रादुर्भूत हुआ है, वह ही गर्भ के अन्दर [विद्यमान] है, वह ही प्रादुर्भूत हुआ हुआ है, वह ही प्रादुर्भूत होगा, हे जनो वह सर्वतोमुख है और सर्वव्यापक रूप में स्थित है ॥४॥

परमात्मा सर्वव्यापकोऽस्ति। संसारे सर्वाणि रूपाणि तस्यैव ॥४॥

**यस्माज्जातं न पुरा किं च नैव**
**य आबभूव भुवनानि विश्वा।**
**प्रजापतिः प्रजया सꣳरराण-**
**स्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥५॥**

उ०—यस्मान्न जातः। यस्मात् पुरुषात् जातं न पुरा किंचन एव। यश्च आबभूव संभावयति भुवनानि भूतजातानि विश्वा विश्वानि सर्वाणि। प्रजापतिरिति व्याख्यातम्। अयं षोडशकलिङ्गयुक्तः ॥५॥

म०—यस्मात् पुरा किंचन किमपि न जातमेव। यश्च विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि आबभूव समन्ताद्भावयामास। अन्तर्भूतो व्यर्थः। स षोडशी षोडशावयवलिङ्गशरीरी प्रजापतिः प्रजया संरराणः रममाणः त्रीणि ज्योतींषि रवीन्द्वग्निरूपाणि सचते सेवते ॥५॥

द०—यस्मादित्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमेश्वरो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पदार्थः—(यस्मात्) परमेश्वरात् (जातम्) उत्पन्नम् (न) निषेधे (पुरा) पुरस्तात् (किम्) (चन) किञ्चिदपि (एव) (यः) (आबभूव) समन्ताद् भवति (भुवनानि) लोकजातानि सर्वाऽधिकरणानि (विश्वा) सर्वाणि (प्रजापतिः) प्रजायाः पालकोऽधिष्ठाता (प्रजया) प्रजातया (सम्) (रराणः) सम्यग् रममाणः (त्रीणि) विद्युत्सूर्यचन्द्ररूपाणि (ज्योतींषि) तेजोमयानि प्रकाशकानि (सचते) समवैति (सः) (षोडशी) षोडश कला यस्मिन् सन्ति सः ॥५॥

अन्वयः—हे मनुष्या यस्मात् पुरा किञ्चन न जातं यस्सर्वत्र आबभूव यस्मिन् विश्वा भुवनानि वर्त्तन्ते, स एव षोडशी प्रजया संरराणः प्रजापतिस्त्रीणि ज्योतींषि सचते ॥५॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



भावार्थः—यस्मादीश्वरोऽनादिर्वर्तते ततस्तस्मात् पूर्वं किमपि भवितुं न शक्यम्। स एव सर्वासु प्रजासु व्याप्तो जीवानां कर्माणि पश्यन् सँस्तदनुकूलफलं ददन्न्यायं करोति येन प्राणादीनि षोडश वस्तूनि सृष्टान्यतः स षोडशीत्युच्यते। प्राणः श्रद्धाऽऽकाशं वायुरग्निर्जलं पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नं वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका नाम च षोडश कलाः प्रश्नोपनिषदि षष्ठे प्रश्ने वर्णिताः। एतत् सर्वं षोडशात्मकं जगत् परमात्मनि वर्त्तते तेनैव निर्मितं पाल्यते ॥५॥

Gr.—Before whom naught whatever sprang to being; who with his presence aids all living creatures.

Prajāpati, rejoicing in his offspring, he, shodaṣī, maintains the Three great Lustres.

The second line is repeated from VIII. 36. Three...Lustres; Agni, Vāyu, Sūrya or the Sun, the Moon and Agni.

योगी—जिस परमात्मा से पूर्व कुछ भी प्रादुर्भूत नहीं हुआ; जो सब प्राणियों में विद्यमान है, अथवा जिसके आधार पर सब प्राणी विद्यमान हैं। अपनी प्रजा(सन्तति) के साथ लीलामय आनन्द का अनुभव करता हुआ षोडश कलाओं से युक्त वह प्रजापति तीन ज्योतियों का सेवन करता है ॥५॥

परमात्मा पूर्णः। स हि सर्वप्रकाशमयः। स्वप्रजां प्रति तस्य स्वाभाविकं प्रेम। असौ निरन्तरं सुखवृष्टिं करोति, यदि केनचित्सुखं न प्राप्यते तदा तत्तस्यापात्रत्वम्—

योगिन् दत्ते प्रभुस्तुभ्यं रत्नराशीन् निरन्तरम्।
प्रसेवाश्छिद्रितस्तेऽस्ति प्रभोर्यत्ना निरर्थकः॥
प्रभु तुझको देता यहां, योगी भर-भर रत्न।
पर तेरी झोली फटी, प्रभु के व्यर्थ प्रयत्न॥

14
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा
येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

उ०—येन पुरुषेण द्यौः उग्रा उत्कृष्टा। वृष्टिदायिनी कृता पृथिवी च दृढा स्थिरा प्राणिधारणाय वृष्टिग्रहणाय च अन्ननिष्पादनाय च कृता। येन च स्वः आदित्यमण्डलं स्तभितं स्तम्भितम्। येन च नाकः स्वर्गो लोकः स्तम्भितः। यश्चान्तरिक्षे रजसः उदकस्य वृष्टिलक्षणस्य विमानो निर्माता। तं परित्यज्य कस्मै अन्यस्मै देवाय हविषा विधेम हविर्दद्म इति समञ्जसम् ॥६॥

म०—येन पुरुषेण द्यौरुग्रा उदगूर्णा। वृष्टिदा कृतेति शेषः। पृथिवी च येन दृढा कृता। सर्वप्राणिधारणं वृष्टिग्रहणम् अन्ननिष्पादनं चेति भूमेर्दार्ढ्यम्। येन स्वः आदित्यमण्डलं स्तभितं स्तम्भितम्। येन नाकः स्वर्गोऽपि स्तम्भितः। यः अन्तरिक्षे नभसि रजसो जलस्य वृष्टिरूपस्य विमानः विमिमीते निर्माता। तं विहाय कस्मै देवाय हविषा विधेम हविर्दद्मः। न कस्मैचिदित्यर्थः ॥६॥

द०—येनेत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमात्मा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥ पुनस्तमेव विषयमाह॥

पदार्थः—(येन) जगदीश्वरेण (द्यौः) सूर्यादिप्रकाशवान् पदार्थः (उग्रा) तीव्रतेजस्का (पृथिवी) भूमिः (च) (दृढा) दृढीकृता (येन) (स्वः) सुखम् (स्तभितम्) धृतम् (येन) (नाकः) अविद्यमानदुःखो मोक्षः (यः) (अन्तरिक्षे) मध्यवर्त्तिन्याकाशे (रजसः) लोकसमूहस्य। लोका रज्यन्तेऽत्र इति निरुक्तम् (विमानः) विविधं मानं यस्मिन् सः (कस्मै) सुखस्वरूपाय (देवाय) स्वप्रकाशाय सकलसुखदात्रे (हविषा) प्रेमभक्तिभावेन (विधेम) परिचरेम प्राप्नुयाम वा ॥६॥

अन्वयः—हे मनुष्या येनोग्रा द्यौः पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः स्तभितो योऽन्तरिक्षे वर्त्तमानस्य रजसो विमानोऽस्ति तस्मै कस्मै देवाय वयं हविषा विधेमैवं यूयमप्येनं सेवध्वम् ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्या यः सकलस्य जगतो धर्त्ता सर्वसुखप्रदाता मोक्षसाधकः आकाश इव व्याप्तः परमेश्वरोऽस्ति तस्यैव भक्तिं कुरुत ॥६॥

Gr—By whom the heavens are strong and earth stands firmly, by whom light's realm and sky-vault are supported;

By whom the regions in mid-air were measured. What God shall we adore with our oblation?

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



(Taken from R. V. X. 121.5, wha God, etc. or, Worship we *Ka* the God.)

सायणः—येन प्रजापतिना द्यौरन्तरिक्षमुग्रोदगूर्णं विशेषागहनरूपं वा। पृथिवी भूमिश्च दृळ्हा येन स्थिरीकृता। स्वः स्वर्गश्च येन स्तभितं स्तब्धं कृतम्। यथाधो न पतति तथोपर्यवस्थापितमित्यर्थः। ग्रसितस्कभितस्तभितेति निपात्यते। तथा नाक आदित्यश्च येनान्तरिक्षे स्तभितः। यश्चान्तरिक्षे रजस उदकस्य विमानो निर्माता। कस्मै। अत्र किंशब्दोऽनिर्ज्ञातस्वरूपत्वात् प्रजापतौ वर्तते। यद्वा सृष्टचर्थं कामयत इति कः। कमेर्डप्रत्ययः ॥ यद्वा कं सुखम्। तद्रूपत्वात्क इत्युच्यते। अथवेन्द्रेण पृष्टः प्रजापतिर्मदीयं महत्त्वं तुभ्यं प्रदायाहं कः कीदृशः स्यामित्युक्तवान्। स इन्द्रः प्रत्यूचे यदिदं ब्रवीष्यहं कः स्यामिति तदेव त्वं भवेति। अतः कारणात् क इति प्रजापतिराख्यायते। इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा सर्वा विजितीर्विजित्याब्रवीदित्यादिकं ब्राह्मणमत्रानुसन्धेयम्। ऐ. ब्रा. ३. २१॥ यदासौ किंशब्दस्तदा सर्वनामत्वात् स्मैभावः सिद्धः। यदा तु यौगिकस्तदा व्यत्ययेनेति द्रष्टव्यम्। सावेकाच इति प्राप्तस्य न गोश्वन्सावव्रगंस्येति प्रतिषेधः। क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी। कं प्रजापतिं देवाय देवं दानादिगुणयुक्तं हविषा प्राजापत्यस्य पशोर्वपारूपेणैककपालात्मकेन पुरोडाशेन वा विधेम। वयमृत्विजः परिचरेम। विधतिः परिचरणकर्मा ॥६॥

ऋ० १०.१२१.५॥

योगी—जिसके द्वारा द्युलोक उद्गूर्ण किया गया है [तथा] पृथ्वी दृढ़ की गई है, जिसके द्वारा प्रकाशमय लोक (अथवा सुख) तथा तारों का लोक (अथवा दुःखाभाव) थामा गया है; जो अन्तरिक्ष में लोकसमूह का निर्माण करने वाला है, उस सुखस्वरूप देव को हम आत्मसमर्पण के द्वारा प्राप्त होते हैं।

यदाऽस्माभिरस्यां विशालजगत्यां हविषातः क्रियते, तदेयमनुभूतिर्भवति यत्कश्चिदतिमहान् जगतः कर्ता विधाता चाऽस्ति ॥६॥

**यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने**
**अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।**
**यत्राधि सूर उदितो विभाति**
**कस्मै देवाय हविषा विधेम।**
**आपो ह यद् बृहतो यश्चिदापः ॥७॥**

उ०—यं क्रन्दसी यं पुरुषं क्रन्दसी द्यावापृथिव्यौ अवसा अन्नेन हविर्लक्षणेन वृष्टिद्वारेणाद्युपकारजनितेन। तस्तभाने संस्तम्भयन्त्यौ सर्वप्राणिजातम्। अभि ऐक्षेतां मनसा साध्वेतत्कृतमनेनेति। रेजमाने कल्पमाने। यत्र च अधि उपरि स्थितः यदाधार इत्यभिप्रायः। सूरः सूर्यः उदितः सन् विभाति। तं देवं परित्यज्य कस्मै देवाय हविषा विधेम इति समंजसम्। आपो ह यद्बृहतीर्यश्चिदाप इति द्वे प्रतीकगृहीते। अत्रापि स्वाध्यायाध्ययनं प्राप्तं प्रतीकस्योपलक्षणार्थत्वात् ॥७॥

म० क्रन्दसी द्यावापृथिव्यौ यं पुरुषं मनसा अभ्यैक्षतां साधु कृतमित्यपश्यताम्। कीदृश्यौ क्रन्दसी। अवसा हविर्लक्षणेनान्नेन वृष्टिजनकेन तस्तभाने प्राणिजातं स्तम्भयन्त्यौ। व्यत्ययेन स्तम्भे द्वित्वम्। रेजमाने शोभमाने। सूरः सूर्यः यत्र द्यावापृथिव्योः उदितः सन् अधिविभाति अधिकं शोभते वित्रासयति वा। तं विहाय कस्मै हविर्देयम्। आपो ह यद् बृहतीः (२७।२५।) यश्चिदापः (२७। २६) द्वे प्रतीकोक्ते जपादावध्येये ॥७॥

सायणः—क्रन्दितवान् रोदितवान् अनयोः प्रजापतिरिति क्रन्दसी द्यावापृथिव्यौ। श्रूयते हि। यदरोदीत्तदनयो रोदस्त्वम्। तै० ब्रा०२. २. ९. ४। इति। ते अवसा रक्षणेन हेतुना लोकस्य रक्षणार्थं तस्तभाने प्रजापतिना सृष्टे लब्धस्थैर्ये सत्यौ यं प्रजापतिं मनसा बुद्धयाभ्यैक्षेताम् ॥ ईक्ष दर्शने। लङ्यडादित्वादाद्युदात्तत्वम्। कीदृश्यौ द्यावापृथिव्यौ। रेजमाने राजमाने दीप्यमाने ॥ आकारस्य व्यत्ययेनैत्वम्। अदुपदेशाल्लसार्वधातुकानुदात्तत्वे धातुस्वरः। यद्वा। लिटः कानच्। फणां च सप्तानाम्। पा० ६. ५. १२४। इत्येत्वाभ्यासलोपौ। छन्दस्युभयथेति सार्वधातुकत्वाच्छप्। अभ्यस्तानामादिरित्याद्युदात्तत्वम्। यत्राधि यस्मिन्नाधारभूते प्रजापतौ सूरः सूर्य उदित उदयं प्राप्तः सन् विभाति प्रकाशते ॥ उत्पूर्वदितेः कर्मणि निष्ठा। गतिरनन्तर इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम्। तस्मै कस्मा इत्यादि सुज्ञानम् ॥७॥

रेजमाने—या० भ्यसते रेजत इति भयवेपनयोः।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



द०—यं क्रन्दसीत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमात्मा देवता। स्वराड् अतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥ पुनस्तमेव विषयमाह॥

**पदार्थः**—(यम्) (क्रन्दसी) गुणैः प्रशंसनीये (अवसा) क्षणादिना (तस्तभाने) धारिके (अभि) आभिमुख्ये (ऐक्षेताम्) ईक्षेतां पश्यतः (मनसा) विज्ञानेन (रेजमाने) चलन्त्यौ भ्रमन्त्यौ (यत्र) यस्मिन् (अधि) उपरि (सूरः) सूर्यः (उदितः) उदयं प्राप्तः (विभाति) विशेषेण प्रकाशयन् प्रकाशयिता भवति (कस्मै) सुखसाधकाय (देवाय) शुद्धस्वरूपाय (हविषा) आदातव्येन योगाभ्यासेन (विधेम) (आपः) व्याप्ताः (ह) किल (याः) (बृहतीः) महत्यः (यः) (चित्) अपि (आपः) आकाशः॥७॥

**अन्वयः**—हे मनुष्या यं परमात्मानं प्राप्ते तस्तभाने रेजमाने क्रन्दसी द्यावापृथिव्यवसा सर्वं धरतो यत्र सूरोऽध्युदितो यद् या बृहतीरापो ह यश्चिदापः सन्ति ताश्चिदपि विभाति तं तौ चाध्यापकोपदेशकौ मनसा अभ्यैक्षेतां तस्मै कस्मै देवाय हविषा वयं विधेमनं यूयमपि भजत॥७॥

**भावार्थः**—हे मनुष्या यत्र सर्वाभिव्यापकेश्वरे सूर्य्यपृथिव्यादयो लोका भ्रमन्तः सन्तो दृश्यन्ते येन प्राण आकाशोऽपि व्याप्तस्तं स्वात्मस्थं यूयमुपासीध्वम्॥७॥

Gr.—To whom, supported by his help, two armies embattled look while trembling in their spirit,

Where over the risen Sun is shining. What God shall we adore with our oblation.

(*Two armies embettled* look : or perhaps better : To whom, supported by his favour, Heaven and Earth look up. See M. Müller, Vedic Hymns, part I. pp. 2. 9. *what time* etc. : repeated from XXVII. 25. *He in his might:* repeated from XXVII. 26.)

**योगी**—जिसकी (परमात्मा की) सहायता एवं रक्षा से थामे गए, शोभित होते हुए (अथवा कार्य करने में समर्थ) द्युलोक तथा पृथ्वीलोक जिसको [प्रशंसाभावयुक्त] मन से श्रद्धापूर्वक देखते हैं। जिस को आधार बना कर उदय हुआ-हुआ सूर्य प्रदीप्त होता है, उस सुख-स्वरूप देव को हम आत्मसमर्पण के द्वारा प्राप्त होते हैं॥७॥

सर्वाऽपि सृष्टिः परमात्माश्रिता। 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।' (यजुः० ४०. १)। द्युलोकः पृथ्वीलोकः सूर्यश्च—सर्वे पदार्थाः प्राणिनश्च तस्य भासैव विभान्ति।

'आपो ह यद् बृहती' तथा 'यश्चिदापः' इति यजुर्वेदस्य मन्त्रद्वयं प्रतीकरूपेणापि गृह्यते मनीषिभिः—

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन्
गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

यजु०—२७. २५

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्
दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

यजु०—२७. २६

वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहा सद्
यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निद ँ सं च विचैति सर्व ँ
स ओत प्रोतश्च विभूः प्रजासु॥८॥

उ०—वेनस्तत्पश्यत्। वेनः पण्डितः विदितवेदान्तरहस्यः सद्भावनया तद्रूपं ब्रह्म पश्यन् पश्यति। निहितं स्थापितम्। गुहा गुहायामिव। सन्नित्यम्। यत्र च विश्वं सर्वमिदं विकारजातं भवति एकनीडं एकनिलयमविभक्तम्। कारणेनोपसंहृतं सर्वविशेषम्। तस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वम्। तस्मिन्नेव परमात्मनि इदं विचारजातं सर्वं समेति च उपसंहृतिकाले। समेत्य च व्येति सृष्टिकाले सर्वमेव। स च परमेश्वरः ओतश्च शरीरभावेन प्रोतश्च जीवभावेन इतरथा वा विभूः विभवति च कार्यकारणभावेन प्रजासु॥८॥

म०—वेनः पण्डितो विदितवेदान्तरहस्यः तत् ब्रह्म पश्यत् पश्यति। जानातीत्यर्थः। कीदृशं तत्। गुहा गुहायां रहःस्थाने निहितं स्थापितं दुर्ज्ञेयमित्यर्थः। सत् नित्यम्। यत्र ब्रह्मणि विश्वं कार्यजातमेकनीडं भवति। एकमेव नीडमाश्रयो यस्य तत्। अविभक्तमविशेषं कारणमेव

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


भवतीत्यर्थः। तस्मिन्ब्रह्मणि इदं सर्वं भूतजातं समेति च सङ्गच्छते संहारकाले। व्येति च निर्गच्छति सर्गकाले। स परमात्मा प्रजासु ओतः प्रोतश्च ऊर्ध्वतन्तुषु पट इव शरीरभावेन प्रोतश्च। कीदृशः। विभूः कार्यरूपेण विविधं भवतीति विभूः। सर्वः स एवेत्यर्थः ॥८॥

द०—वेन इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमात्मा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥ पुनस्तमेव विषयमाह॥

**पदार्थः**—(वेनः) पण्डितो विद्वान् (तद्) चेतनब्रह्म (पश्यत्) पश्यति स्थितम् (निहितम्) (गुहा) गुहायां बुद्धौ गुप्ते कारणे वा (सत्) नित्यम् (यत्र) यस्मिन् (विश्वम्) सर्वं जगत् (भवति) (एकनीडम्) एकस्थानम् (तस्मिन्) (इदम्) जगत् (सम्) च (वि) (च) (एति) (सर्वम्) (सः) (ओतः) ऊर्ध्वतन्तुः पट इव (प्रोतः) तिर्यक्तन्तुषु पट इव (च) (विभूः) व्यापकः (प्रजासु) प्रकृतिजीवादिषु ॥८॥

**अन्वयः**—हे मनुष्या यत्र विश्वमेकनीडं भवति तद् गुहा निहितं सद् वेनः पश्यत्। तस्मिन्निदं सर्वं समेति च व्येति च स विभूः प्रजास्वोतः प्रोतश्च स एव सर्वैरुपासनीयोऽस्ति ॥८॥

**भावार्थः**—हे मनुष्या विद्वानेव यं बुद्धिबलेन जानाति यः सर्वेषामाकाशादीनां पदार्थानामधिकरणमस्ति यत्र संहारकाले सर्वं जगल्लीयते सर्गकाले च यतो निस्सरति येन व्याप्तेन विना किञ्चिदपि वस्तु न वर्त्तते तं विहायान्यं कञ्चिदप्युपास्यमीश्वरं मा विजानन्तु ॥८॥

Gr—The sage beholdeth That mysterious Being wherein to this all hath found one only dwelling.

Therein unites the whole, and thence it issues : far-spread it is the warp and wool in creatures.

(*Mysterious Being* : Brahma, the Absolute. *Unites :* is absorbed, at the periodical destruction of the universe at the end of kalpa or day of Brahmā (ब्रह्मा), an aeon of four hundred and thirtytwo million years of mortals. *Issues* : at the time of a new creation.

वेनः—वा० वेनो वेनतेः कान्तिकर्मणः।

गुहा—या० गूहतेः।

**योगी**—विकसित बुद्धि वाले (उ० तथा म०—विदितवेदान्तरहस्य) अथवा जिज्ञासा से युक्त मनुष्य ने गुहा में निहित अर्थात् अत्यन्त दुर्ज्ञेय सद्रूप ब्रह्म का साक्षात्कार किया, जिस ब्रह्म में विश्व एकस्थान (एक निलय, एकत्र) होता है। उस ब्रह्म में यह सम्पूर्ण विश्व (प्रलय काल में) लीन होता है तथा सृष्ट्युत्पत्ति के समय में (उससे, ब्रह्म से) प्रादुर्भूत होता है। विविध सत्ताओं व रूपों वाला वह प्रजाओं में ओतप्रोत है ॥८॥

वेनः—वेन् (वेनृ) अत्यभिलाषे (ह्वि०);

निघ०—वेनतिः कान्तिकर्मा, गतिकर्मा, अर्चतिकर्मा।

ओतः—आ+ऊतः

ओतः—आ—वे (वेञ्)—तन्तु सन्ताने। प्रोतः—प्र+ऊतः

गुहा=गुहायाम्। गुहा—गुह् (गुह)—संवरणे।

गुह्—हिंसागत्योः (काशकृत्स्नः)।

यस्मिन् जने जिज्ञासा भवति तस्यैव बुद्धेर्विकासो भवति, स एव भगवत्साक्षात्कारसमर्थः। गीतायां चतुर्विधभक्ताः कथिताः—आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च। जिज्ञासया ज्ञानं ज्ञानेन भगवत्साक्षात्कारः ॥८॥

**प्र तद् वोचेदमृतं नु विद्वान्**
**गन्धर्वो धाम विभृतं गुहासत्।**
**त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य**
**यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥९॥**

उ०—प्र तत् प्रवोचेत् प्रब्रूयात् तत् अमृतं शाश्वतम्। नु क्षिप्रम्। विद्वान् पण्डितः गन्धर्वः। गन्धर्वलोके हि ब्रह्मविद्या सुतरां ज्ञायते। धर्मस्थानम्। निभृतं नानाभूतं सर्गस्थितिप्रलयैः। गुहा सत् गुहायामिव निगूढम् अविवृतवेदान्तरहस्यसद्भावानाम्। किंच। त्रीणि पदानि निहितानि गुहा गुहायामिव अस्य अमृतस्य सर्गस्थितिप्रलयाः त्रयो वा वेदाः त्रयो वा कालाः। भूयस्त्वोपलक्षणार्थं वा। भूयांसो हि तत्र गुणाः श्रूयन्ते विज्ञानघनानन्दसत्यसंकल्पादयः। परब्रह्मान्तर्यामिव्याकृतानि वा त्रयः पादाः। यश्च तानि वेद जानाति स

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



पितुरपि पिता भवति। परं ब्रह्म भवतीत्यर्थः। तद्धि ब्रह्मरूपं श्रेष्ठम् ॥९॥

म०—गां वेदवाचं धारयति विचारयतीति गन्धर्वः वेदान्तवेत्ता विद्वान् पण्डितः नु क्षिप्रम् अमृतं शाश्वतम् तत् ब्रह्म प्रवोचेत् प्रब्रूयात्। गुहा गुहायां सत् विद्यमानम् धाम स्वरूपं विभृतं विहृतं सर्गस्थितिप्रलयरूपैर्विभक्तम्। किंच अस्यामृतस्य त्रीणि पदानि सर्गस्थितिप्रलयाः वेदाः काला वा ब्रह्मान्तर्यामिविज्ञानात्मानो वा। किंच यः तानि पदानि वेद जानाति स पितुः ब्रह्मणोऽपि पिता परमात्मा असत् भवति। परब्रह्मैव भवतीत्यर्थः ॥९॥

द०—प्र तदित्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥ पुनस्तमेव विषयमाह॥

(प्र) (तद्) चेतनं ब्रह्म (वोचेत्) गुणकर्मस्वभावत उपदिशेत् (अमृतम्) नाशरहितम् (नु) सद्यः (विद्वान्) पण्डितः (गन्धर्वः) यो गां वेदवाचं धरति सः (धाम) मुक्तिसुखाय स्थानम् (विभृतम्) विशेषेण धृतम् (गुहा) बुद्धौ (सत्) नित्यम् (त्रीणि) उत्पत्तिस्थितिप्रलयाः काला वा (पदानि) ज्ञातुमर्हाणि (निहिता) निहितानि (गुहा) बुद्धौ (अस्य) अविनाशिनः (यः) (तानि) (वेद) जानाति (सः) (पितुः) जनकस्येश्वरस्य वा (पिता) ज्ञानप्रदानेनास्तिकत्वेन वा रक्षकः (असत्) भवेत् ॥९॥

अन्वयः—हे मनुष्या यो गन्धर्वो विद्वान् गुहा विभृतममृतं धाम तत् सन्नु प्रवोचेद् यान्यस्य गुहा निहितानि पदानि त्रीणि सन्ति तानि च वेद सः पितुः पिताऽसत् ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्या य ईश्वरस्य मुक्तिसाधकं बुद्धिस्थं स्वरूपमुपदिशेयुर्यथार्थतया पदार्थानां परमात्मनश्च गुणकर्मस्वभावान् विजानीयुस्ते वयोवृद्धानां पितॄणामपि पितरो भवितुं योग्याः सन्तीति विजानीत ॥९॥

Gr.—Knowing Eternity may the Gandharva declare that station, parted, kept in secret.

Three steps thereof in mystery are hidden: he who knows these shall be the father's father.

(taken with a variation, from A.V.II.1.2. *The Gandharva* : meaning here, according Mahīdhara, colebrooke and Weber, the learned theologian; or it may be the sun. *Parted*: in the absorption and recreation of the universe. The A.V. reading is *paramam*, highest. *Three steps*: according to Mahidhara, the three *padani*, steps, or conditions, are creation, continuance and disappearance, or the Absolute (Brahma), the Demiurgus or Creator and the individual Self. prof. Weber suggests that the reference is to the Purusha Sukta, 3,4 of Book XXXI. *Father's father*, wiser than, and able to teach his elders.

योगी—गन्धर्व विद्वान् उस अमृत का क्षिप्र प्रवचन करे, जो सत् (सद्रूप अमृत) गुहा में विशेष या विविध रूप से धारण किया गया स्वरूप है। इस अमृत के तीन पद गुहा में रखे हैं। जो उन्हें जानता है, वह पिता का भी पिता हो जाता है।

धाम—धामन्—धा (डुधाञ्) धारणपोषणयोः यो गम्भीरं वेदाध्ययनं करोति स एव तत्त्वं जानाति। संसारस्य तत्त्वं सर्वव्यापि मूलं तदमृतं ब्रह्मैव—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (उपनि०)। अमृतरूपस्य परमात्मनः स्वरूपं निगूढमस्ति। केवलं तस्य चतुर्थोंऽशः (अल्पोंऽशः) सृष्टिरूपेण दृग्गोचरो भवति। यः परमात्मस्वरूपं जानाति स एव जगद्रक्षकः (पिता—पा रक्षणे) सर्वेषु च जनेषु महत्तमः पूजनीयतमश्च भवति। परमात्मनः स्वरूपज्ञानायैतादृशस्य गन्धर्वस्य विदुषः समीपे गन्तव्यम्। असावेव क्षिप्रं पूर्णतया प्रवचनेऽलम् ॥९॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशाना-
स्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥१०॥

उ०—स नो बन्धुः। स नोऽस्माकं बन्धुः। स चास्माकं जनिता। जनयितेति प्राप्ते 'जनिता मन्त्रे' इति णिचो लोपः। स च नो विधाता धारयिता। यः धामानि ब्रह्मणः स्थानानि वेद। भुवनानि भूतजातानि विश्वा सर्वाणि वेद नानात्मनो भिन्नानि वेद। किंच। यत्र देवा अग्न्यादयः

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



अमृतं परब्रह्मलक्षणम् । आनशानाः व्याप्नुवन्तः तृतीये धामन् धामनि स्थाने अधि उपरि स्थिताः ऐरयन्त स्वेच्छया प्रवर्तन्ते तच्च यो वेद स नो बन्धुरित्याद्यनुवर्तते ॥१०॥

म०—स परमात्मा नोऽस्माकं बन्धुः बन्धुवन्मान्यः । जनिता जनयिता । 'जनिता मन्त्रे' (पा० ६।४।५३) इति णिचो लोपः । स च विधाता धारयिता । सः विश्वा सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि धामानि स्थानानि च वेद । देवा अग्न्यादयः तृतीये धामन् धामनि स्थाने स्वर्गरूपे अध्यैरयन्त स्वेच्छया वर्तन्ते । कीदृशा देवाः । अमृतं मोक्षप्रापकं ज्ञानं यत्र ब्रह्मणि आनशानाः व्याप्नुवानाः अश्नुवते । आनशानाः 'बहुलं छन्दसि' (पा० २।४।७६) इत्यशेर्ह्यादित्वेन द्वित्वे शानचि अभ्यासस्य नुमागमः । ब्रह्मनिष्ठं ज्ञानं प्राप्ताः सन्तः स्वर्गे देवा मोदन्त इति भावः ॥१०॥

द०—स न इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ पुनस्तमेव विषयमाह ॥

**पदार्थः**—(सः) (नः) अस्माकम् (बन्धुः) भ्रातेव मान्यः सहायः (जनिता) जनयिता । अत्र । जनिता मन्त्र इति (अ० ६.४.५३) णिलोपः (सः) (विधाता) सर्वेषां पदार्थानां कर्मफलानां च विधानकर्ता (धामानि) जन्मस्थाननामानि (वेद) जानाति (भुवनानि) लोकलोकान्तराणि (विश्वा) सर्वाणि (यत्र) यस्मिन् जगदीश्वरे (देवाः) विद्वांसः (अमृतम्) मोक्षसुखम् (आनशानाः) प्राप्नुवन्तः (तृतीये) जीवप्रकृतिभ्यां विलक्षणे (धामन्) धामन्याधारभूते (अध्यैरयन्त) सर्वत्र स्वेच्छया विचरन्ति ॥१०॥

**अन्वयः**—हे मनुष्या यत्र तृतीये धामन्नमृतत्वमानशाना देवा अध्यैरयन्त यो विश्वा भुवनानि धामानि च वेद स नो बन्धुर्जनिता स विधाताऽस्तीति निश्चिनुत ॥१०॥

**भावार्थः**—हे मनुष्या यस्मिञ्छुद्धस्वरूपे परमात्मनि योगिनो विद्वांसो मुक्तिसुखं प्राप्य मोदन्ते स एव सर्वज्ञः सर्वोत्पादकः सर्वदा सहायकारी च मन्तव्यो नेतर इति ॥१०॥

Gr.—He is our kin, our Father and Begetter : he knows all beings and all Ordinances.

In whom the Gods obtaining life eternal have risen up to the third high station.

(*He :* the Almighty Creator. *Obtaining life immortal* : Agni alone who is here identified with the Creator was originally immortal and the other Gods obtained immortality through him. *Third high station :* highest heaven. The first line is taken from AV. II. 1. 3. Cf. RV. X. 82.3).

**योगी**—वह हमारा बन्धु है, जनक है, वह विधाता है। वह संपूर्ण धामों तथा भुवनों को जानता है अथवा सम्पूर्ण धारण करने वाले भुवनों को जानता है; जहाँ देव अमृत को प्राप्त करते हुए तृतीय धाम में स्थित हुए हुए स्वेच्छा से विचरण करते हैं।

**आनशानाः**—अश् (अशू) व्याप्तौ ।

परमात्मैवास्माकं बन्धुरित्यादिः । सर्वस्य विश्वस्य व्यवस्था तेनैव क्रियते । अस्मिन् विश्वेऽस्माभिर्यत्सुखं प्राप्यते तस्य दाता स एव । परमस्मादपि सुखात् सहस्रगुणं सुखं तस्य समीपेऽस्ति, दानाय च स बन्धुजनकादिवत् तत्परोऽप्यस्ति यदि कश्चिद् ग्रहीता स्यात् । अत्युत्कृष्टान्यनन्तानि सुखानि तस्य समीपे सन्ति, यो वेदविदां प्रवचनं शृणोति (दृश्यतां नवममन्त्रः) स परमात्मगुणपरिचयं प्राप्य तं प्रति धावति ॥१०॥

**परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्**
**परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।**
**उपस्थाय प्रथमजामृतस्या-**
**त्मनात्मानमभि सं विवेश ॥११॥**

उ०—इदानीं सर्वेषु भूतेष्वहमस्मि सर्वाणि च भूतानि मयि सन्तीत्येतद्दर्शनावगुण्ठितस्य सर्वमेधयाजिनो मुक्तिरुच्यते द्वाभ्यां कण्डिकाभ्याम् । न च सर्वमेधग्रहः कर्तव्यो दर्शनस्य प्राधान्यात् । एवं हि पश्यतो यजमानस्याग्निहोत्रादयो यज्ञाः सर्वे सर्वमेधा एव । आलम्बनमात्रं हि तत्र यज्ञाः । परीत्य भूतानि अनेन दर्शनेन परिज्ञाय सर्वाणि भूतानि एवमेतदित्यवधार्य । एवं परिज्ञाय च सर्वान् लोकान् । परिज्ञाय च सर्वाः दिशः । परिज्ञाय च सर्वाः प्रदिशः । उपस्थाय च प्रथमजां वाचं ऋगीलक्षणाम् । 'अग्निहि तस्माद् पुरुषाद् ब्रह्म च पूर्वमसृज्यते'तिश्रुतेः प्रथमजा वाक् । ऋतस्य यज्ञस्य आत्मना आत्मानम् । परेण ब्रह्मणा विशिष्टं ब्रह्म अभिसंविशति अपुनरावृत्तये ॥११॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


म०—इदानीं सर्वभूतेष्वहमस्मि सर्वाणि भूतानि मयीति ज्ञानवतः सर्वमेधयाजिनो मुक्तिरुच्यते। किंच सर्वमेवग्रहोऽपि न ज्ञानं प्रधानम्। ब्रह्मज्ञानवतो यजमानस्याग्निहोत्रादयोऽपि यज्ञाः सर्वमेधा एवेत्याह परीत्य भूतानीति कण्डिकाभ्याम्। एवंज्ञानवान् सर्वमेधयाजी आत्मना जीवरूपेण ऋतस्य यज्ञस्यात्मानं यज्ञाधिष्ठातारं परमात्मानमभिसंविवेश प्रविशति। ब्रह्मैव भवतीत्यर्थः। किं कृत्वा। भूतानि परीत्य सर्वभूतानि ब्रह्मत्वेन विज्ञाय। लोकान् भूरादीन् परीत्य ब्रह्मरूपाज्ज्ञात्वा। सर्वाः प्रदिशः विदिशः दिशश्च परीत्य तद्रूपा ज्ञात्वा। प्रथमजां प्रथमोत्पन्नां त्रयीरूपां वाचमुपस्थाय संसेव्य। यजादि कृत्वेत्यर्थः। 'अपिहि तस्माद् पुरुषाद् ब्रह्मैव पूर्वमसृज्यत' इति श्रुतेः प्रथमजा वाक् वेदरूपा ॥११॥

द०—परीत्येतस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमात्मा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

पदार्थः—(परीत्य) परितः सर्वतोऽभिव्याप्य (भूतानि) (परीत्य) (लोकान्) द्रष्टव्यान् पृथिवीसूर्यादीन् (परीत्य) (सर्वाः) (प्रदिशः) आग्नेयाद्या उपदिशः (दिशः) पूर्वाद्याः (च) अधः उपरि च (उपस्थाय) पठित्वा संसेव्य वा (प्रथमजाम्) प्रथमोत्पन्नां वेदचतुष्टयीम् (ऋतस्य) सत्यस्य (आत्मना) स्वरूपेणान्तःकरणेन च (आत्मानम्) स्वरूपमधिष्ठानं वा (अभि) आभिमुख्ये (सम्) सम्यक् (विवेश) प्रविशति ॥११॥

अन्वयः—हे विद्वन् त्वं यो भूतानि परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च परीत्य ऋतस्यात्मानमभिसंविवेश प्रथमजामुपस्थायात्मना तं प्राप्नुहि ॥११॥

भावार्थः—हे मनुष्या यूयं धर्माचरणवेदयोगाभ्याससत्सङ्गादिभिः कर्मभिः शरीरपुष्टिमात्मान्तःकरणबुद्धिं च संपाद्य सर्वत्राभिव्याप्तं परमात्मानं लब्ध्वा सुखिनो भवत ॥११॥

Gr.—Having encompassed round existing creatures, the worlds and all the Quarters and Mid-quarters.

Having approached the first-born Child of Order he with his Self into the Self hath entered.

(The performer of the Universal Sacrifice is liberated from the bonds of human life *Encompassed round :* with the glance of his enlightened mind which shows the universe to be Brahma. *Order :* the eternal Law of the universe, whose, *first-born Child :* is apparently Prajāpati; or, according to Mahīdhara, Vāk the Sacred Word connoting religious ceremonies performed therewith. *He :* performer of the universal Sacrifice.

**योगी**—प्राणियों को व्याप्त करके, लोकों को व्याप्त करके, सब दिशाओं तथा प्रदिशाओं को व्याप्त करके (ज्ञानी मनुष्य) ऋत की प्रथमजा वाणी (वेदवाणी) का संसेवन करके आत्मा के द्वारा आत्मा में प्रविष्ट हो जाता है।

परीत्य—परि इ (इण्) गतौ।

योऽपि जन इदं पश्यति यत्सर्वं खल्विदं ब्रह्म स ब्रह्मरूपो भवति—

**यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।**
**सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति॥**

(मनु० ६०.६)

इदं ब्रह्मस्वरूपज्ञानं तदैव भवति यदा गभीरवेदाध्ययनं विधीयते। वेदवाण्येव ऋतस्य स्वरूपपरिचायिका। संसारस्य परमात्मनश्च स्वरूपमेव ऋतम्। इदमूतं ज्ञातव्यम्। ऋतज्ञो जनो ब्रह्मस्वरूपसाक्षात्कारं करोति तस्य कृते 'नेह नानाऽस्ति किंचन'। (उपनि०)। एतादृशो जनः स्वकीयात्मना परमात्मानं प्राप्नोति। तत्र जायते पूर्णाद्वैतसिद्धिः ॥११॥

**परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा**
**परि लोकान् परि दिशः परि स्वः।**
**ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य**
**तदपश्यत् तदभवत् तदासीत् ॥१२॥**

उ०—परि द्यावा। परीत्यमुपसर्गं इत्येतेनेन संबध्यते। परीत्य द्यावापृथिव्यौ अनेन दर्शनेन परीत्य स लोकान् परीत्य च दिशः परीत्य च स्वः आदित्यम्। ऋतस्य यज्ञस्य तन्तुं विततं विचृत्य विच्छिद्य परिसमाप्य। सदय एव तत् तथाभूतमात्मानम् अपश्यत् पश्यति।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


तदभवत् तथाभूतं ब्रह्म भवति । तदासीत् तदेवास्ति । तदुक्तम् 'तदेव सन्तस्तदु तद् भवामः' । 'यथा ह्येकस्याग्नेः प्रदीपसहस्राणि तुल्यशक्तीनि निर्गच्छन्ति एवं परमात्मन इमे जीवा अप्युच्चरन्ति' । आभ्यां कण्डिकाभ्यां ग्रहस्थानामेव मुक्तिर्दर्शिता भवति । तेषां हि भूयांस उपायाः यज्ञादयः ॥१२॥

म०—परीत्युपसर्ग इत्येत्यनेन संबध्यते । सर्वमेधयाजी तत् ब्रह्म अपश्यत् पश्यति तत् अभवत् भवति तत् आसीत् वस्तुगत्या तदेवास्ति । अज्ञाननिवृत्तिरेव दर्शनं चेति भावः । किं कृत्वा । द्यावापृथिवी सद्यः परि इत्वा परीत्य तद्रूपेण ज्ञात्वा । लोकान् परीत्य दिशः परीत्य स्वरादित्यं च परीत्य । गुह्यं वस्तु पुनः पुनः कथितं चित्तमारोहतीति पुनरुक्तिः । ऋतस्य यज्ञस्य तन्तुमितिकर्तव्यतां विततं प्रसारितं यथा तथा विचृत्य समाप्य यज्ञं कृत्वेत्यर्थः ।' 'तदेव सन्तस्तदु तद् भवाम' इति श्रुतेः 'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्ये'ति श्रुतेश्च ब्रह्मरूपस्य जीवस्याज्ञाननिवृत्तिरेव ब्रह्मप्राप्तिरिति ॥१२॥

द०—परीत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

**पदार्थः**—(परि) सर्वतः (द्यावापृथिवी) सूर्यभूमी (सद्यः) शीघ्रम् (इत्वा) प्राप्य (परि) सर्वतः (लोकान्) द्रष्टव्यान् सृष्टिस्थान् भूगोलान् (परि) (दिशः) पूर्वादिद्याः (परि) (स्वः) सुखम् (ऋतस्य) सत्यस्य (तन्तुम्) कारणम् (विततम्) विस्तृतम् (विचृत्य) विविधतया ग्रन्थित्वा वदृध्वा (तत्) (अपश्यत्) पश्यति (तत्) (अभवत्) भवति (तत्) (आसीत्) अस्ति ॥१२॥

**अन्वयः**—हे मनुष्या यः परमेश्वरो द्यावापृथिवी सद्य इत्वा पर्य्यपश्यद् यो लोकान् सद्य इत्वा पर्य्यभवत् । यो दिशः सद्य इत्वा पर्य्यासीद् यः स्वः सद्यः इत्वा पर्य्यपश्यद् य ऋतस्य विततं तन्तुं विचृत्य तत्सुखमपश्यद् येन तत्सुखमभवद् यस्तद्विज्ञानमासीत् तं यथावद् विजानीयोपासीरन् ॥१२॥

**भावार्थः**—ये मनुष्याः परमेश्वरमेव भजन्ति तन्निर्मितां सृष्टिं युक्त्यायोपयुञ्जते त ऐहिकं पारमार्थिकं विज्ञानन्यं सुखं च सद्यः प्राप्य सततमानन्दन्ति ॥१२॥

Gr.—Having gone swiftly round the earth and heaven, around the worlds, around the sky, the Quarters,

Having spread out the lengthened thread of Order, he views, and he becomes and is That Being.

*(Thread of Order:* sacrifice, which is line reaching down from ancient times and uniting men and Gods.)

**योगी**—क्षिप्र ही द्युलोक तथा पृथ्वीलोक को व्याप्त करके, लोकों को व्याप्त करके, प्रकाश एवं सुख को व्याप्त करके, वितत तन्तु का सम्यक्तया ग्रथन करके [ज्ञानी मनुष्य ने] उस ब्रह्म का साक्षात्कार किया, तद्रूप हो गया [तथा] तद्रूप [तो वह] था (ही) ।

विचृत्य—वि चृत् । चृत् (चृती) हिंसाग्रन्थनयोः, चृत् (चृत)—संदीपने ।

ज्ञानी मनुष्यो ब्रह्मरूपो भवति । ब्रह्मरूपास्तु वस्तुतः सर्वे सदैव सन्ति । 'ब्रह्मरूपो भवती'त्यस्य तात्पर्यं यत्स स्वब्रह्मरूपं जानाति । अस्यां ब्राह्म्यां स्थित्यां जनः सर्वमयो भवति ॥१२॥

**सदसस्पतिमद्भुतं**
**प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।**
**सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा ॥१३॥**

उ०—इत उत्तरं तिसृभिः कण्डिकाभिर्मेधा याच्यते श्रीश्च चतुर्थ्या । सदसस्पतिम् सदसस्पतिर्देवता सदो यज्ञगृहं तस्य पतिः तम् । अद्भुतं महान्तम् अचिन्त्यशक्तिम् । प्रियमिन्द्रस्य काम्यं कामसंपत्करम् कमनीयं वा धनमेधार्थिभिः । सनिं धनं मेधाम् अयासिषम् याचे । द्विकर्मा चायं धातुः ॥१३॥

म०—इत उत्तरमृक्त्रये मेधा याच्यते । चतुर्थ्या श्रीर्याच्यिते । प्रथमा गायत्री लिङ्गोक्तदेवता । अग्निं सनिं द्रव्यदानं मेधां बुद्धिं च अयासिषं याचे । द्विकर्मकः । कीदृशमग्निम् । सदसः यज्ञगृहस्य पतिं पालकम् अद्भुतमचिन्त्यशक्तिम् इन्द्रस्य प्रियं मित्रं काम्यं कामनीयं धनमेधार्थिभिः ॥१३॥

द०—सदसस्पतिमित्यस्य मेधाकाम ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥ पुनस्तमेव विषयमाह ॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


**पदार्थः**—(सदसः) सभाया ज्ञानस्य न्यायस्य दण्डस्य वा (पतिम्) पालकं स्वामिनम् (अद्भुतम्) आश्चर्यगुण-कर्मस्वभावम् (प्रियम्) प्रीतिविषयं प्रसन्नकरं प्रसन्नं वा (इन्द्रस्य) इन्द्रियाणां स्वामिनो जीवस्य (काम्यम्) कमनीयम् (सनिम्) सनन्ति संविभजन्ति सत्यासत्ये यया ताम् (मेधाम्) सुगतां प्रज्ञाम् (अयासिषम्) प्राप्नुयाम् (स्वाहा) सत्यया क्रियया वाचा वा ॥१३॥

**अन्वयः**—हे मनुष्या अहं स्वाहा यं सदसस्पतिमद्भुतमिन्द्रस्य काम्यं प्रियं परमात्मानमुपास्य संसेव्य मे सनिं मेधामयासिषं तं परिचर्यैतां यूयमपि प्राप्नुत ॥१३॥

**भावार्थः**—ये मनुष्याः सर्वशक्तिमन्तं परमात्मानं सेवन्ते ते सर्वा विद्याः प्राप्य शुद्धया प्रज्ञया सर्वाणि सुखानि लभन्ते ॥१३॥

Gr.—To the Assembly's wondrous Lord, to Indra's lovely Friend who gives

Wisdom, have I drawn near in prayer.

(The Assembly's wondrous Lord: Agni, called *sadasaspati*, Lord or Guardian of the congregation of priests and worshippers. The verse is taken from RV. 1. 18. 6

**सायणः**—मेधां लब्धुं सदसस्पतिमेतन्नामकं देवमयासिषम् । प्राप्तवानस्मि । कीदृशम् । अद्भुतमाश्चर्यम् इन्द्रस्य प्रियं सोमपाने सहचारित्वात् काम्यं कमनीयं सनिं धनस्य दातारम् ॥ सदसः । षद्लृ विशरणादौ । सर्वधातुभ्योऽसुन् । नित्त्वादाद्युदात्तः । पतिम् । पातेर्डतिः । उ० ४. ५७ । टिलोपः । प्रत्ययस्वरः । प्रियम् । इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः । इयङादेशः । प्रत्ययस्वरः । काम्यम् । कामयतेरचो यत् । णेरनिटीति णिलोपः । यतोऽनाव इत्याद्युदात्तत्वम् । सनिम् । षणु दाने । धात्वादेः षः सः । अच इरित्यनुवृत्तौ खनिकष्यंज्यसिवसिव निसनिध्वनिग्रन्थिचरिभ्यश्च । उ० ४. १३९ । इति इप्रत्ययः । प्रत्ययस्वरः । अयासिषम् । या प्रापणे । लुङ् । मिपोऽमादेशः । यमरमनमातां सक् च । पा० ७. २. ७३ । इति सिच इडागमः । धातोः समागमः । निघातः ॥

**मेधा**—या० मेधा मतौ धीयते ।

**सनिः**—या० सनिः = सननम्

**दुर्गः**—लब्धिः ।

**योगी**—मैं अपनी वाणी के द्वारा अद्भुत सदसस्पति (सदस् के पति), इन्द्र के प्रिय काम्य को (उसके समीप) अपनी प्राप्त करने वाली मेधा को पहुँचाता हूं ॥१३॥

**सनिध्**—सन्(षण)संभक्तौ, दाने । सदः—सद्(षद्लृ)—विशरणगत्यवसादनेषु ।

परमात्मा सुनिवास (सदः) योग्यस्य विश्वस्य पतिरस्ति । स इन्द्रस्य (जीवात्मनः) प्रियः काम्यः । वेदवाचोऽध्ययनेन मेधाया विकासो भवति, मेधाविकासेन मनुष्यः परमात्मोन्मुखो भवति, साधनया च तं प्राप्नोति (इन्द्रः=जीवात्मा । व्याख्यातं पुरस्तात्) ॥१३॥

**यां मेधां देवगणाः**
**पितरश्चोपासते ।**
**तया मामद्य मेधया-**
**ऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥१४॥**

उ०—याम् मेधाम् । तिस्रोऽनुष्टुभ आग्नेय्यः । यां मेधां देवगणाः पितरश्च उपासते पूजयन्ति । तया माम् अद्य मेधया हे अग्ने, मेधाविनं कुरु स्वाहा सुहुतमस्तु ॥१४॥

म० अनुष्टुप् । हे अग्ने, तया मेधया अद्य मां मेधाविनं बुद्धियुक्तं कुरु । स्वाहा सुहुतमस्तु "अस्मायामेधास्रजो विनिः" (पा० ५. २. १२१) इति विनिप्रत्ययः । मेधाऽस्यास्तीति मेधावी तम् । तया कया देवगणाः देवसमूहाः पितरश्च यां मेधामुपासते पूजयन्ति । देवपितृमान्या बुद्धिरस्माकमस्त्वित्यर्थः ॥१४॥

द०—यामित्यस्य मेधाकाम ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृद् अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यैरीश्वराद् बुद्धिर्याचनीयेत्याह ॥

**पदार्थः**—(याम्) (मेधाम्) प्रज्ञां धनं वा मेधेति धननाम, निघ० २. १० (देवगणाः) देवानां विदुषां समूहाः (पितरः) पालयितारो विज्ञानिनः (च) (उपासते) प्राप्य सेवन्ते (तया) (माम्) (अद्य) (मेधया) (अग्ने) स्वप्रकाशत्वेन विद्याविज्ञापकः (मेधाविनम्) प्रशस्ता मेधा विद्यते यस्य तम् (कुरु)(स्वाहा) सत्यया वाचा ॥१४॥

**अन्वयः**—हे अग्ने विद्वन्नध्यापक ! जगदीश्वर ! वा

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

देवगणाः पितरश्च यां मेधामुपासते तया मेधया मामद्य स्वाहा मेधाविनं कुरु ॥१४॥

**भावार्थः**—मनुष्याः परमेश्वरमुपास्याप्तं विद्वांसं संसेव्य शुद्धं विज्ञानं धर्मजं च धनं प्राप्तुमिच्छेयुरन्यांश्चैवं प्रापयेयुः ॥१४॥

Gr.—That wisdom which the Companies of Gods, and Fathers, recognize.

Even with that intelligence, O Agni, make me wise to-day. All-hail !

**योगी**—दिव्यगुणयुक्त विद्वज्जन तथा जगदुपकारक जन (पितृजन) जिस मेधा की उपासना करते हैं ; हे अग्नि, मुझे आज उस मेधा से मेधावी कर दे और मेरी वाणी को ज्ञानमय कर दे ।

मनुष्यस्येदं कर्तव्यं यत् स ज्ञानप्राप्तिं करोतु । ज्ञानप्राप्त्यैव मेधाविकासः । विना मेधया न परमात्मप्राप्तिः—

**'यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा**
**शास्त्रं तस्य करोति किम् ।**
**लोचनाभ्यां विहीनस्य**
**दर्पणः किं करिष्यति॥'**

विस्तराय दृश्यतां ज्ञानसूक्तम् ॥१४॥

**मेधां मे वरुणो ददातु**
**मेधामग्निः प्रजापतिः ।**
**मेधामिन्द्रश्च वायुश्च**
**मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥१५॥**

उ०—मेधां मे । लिङ्गोक्तदेवता । मेधाम् मे मह्यं वरुणो ददातु । मेधां चाग्निः प्रजापतिश्च । मेधाम् इन्द्रश्च वायुश्च । मेधां च धाता ददातु मे मह्यम् स्वाहा सुहुतमस्तु ॥१५॥

म०—लिङ्गोक्तदेवताऽनुष्टुप् । वरुणो मे मह्यं मेधां ददातु । अग्निः प्रजापतिश्च मे मेधां ददातु । इन्द्रः वायुश्च मे मेधां ददातु । धाता मे मेधां ददातु सुहुतमस्तु ॥१५॥

द०—मेधामित्यस्य मेधाकाम ऋषिः । परमेश्वरविद्वांसौ देवते । निचृद् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥ पुनस्तमेव विषयमाह ॥

**पदार्थः**—(मेधाम्) शुद्धां धियं धनं वा (मे) मह्यम् (वरुणः) श्रेष्ठः (ददातु) (मेधाम्) (अग्निः) विद्याप्रकाशकः (प्रजापतिः) प्रजायाः पालकः (मेधाम्) (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (च) (वायुः) बलिष्ठो बलप्रदः (च) (मेधाम्) (धाता) सर्वस्य संसारस्य राज्यस्य (ददातु) (मे) मह्यम् (स्वाहा) धर्म्यया क्रियया ॥१५॥

**अन्वयः**—हे मनुष्या यथा वरुणः परमेश्वरो विद्वान् वा स्वाहा मे मेधां ददातु अग्निः प्रजापतिर्मेधां ददातु इन्द्रो मेधां ददातु वायुश्च मेधां ददातु धाता च मेधां ददातु तथा युष्मभ्यमपि ददातु ॥१५॥

**भावार्थः**—मनुष्या यथाऽऽत्मार्थं गुणकर्मस्वभावं सुखञ्चेच्छेयुस्तादृशमेवाऽन्यार्थम् । यथा स्वस्योन्नतये प्रार्थयेयुस्तथा परमेश्वरस्य विदुषां च सकाशाद् अन्येषामपि प्रार्थयेयुर्न केवलं प्रार्थनामेव कुर्युः किं तर्हि सत्याचरणमपि । यदा यदा विदुषां समीपं गच्छेयुस्तदा तदा सर्वेषां कल्याणाय प्रश्नोत्तराणि कुर्युः ॥१५॥

Gr.—Varuna grant me wisdom ! grant it Agni and prajāpati !

Wisdom may Indra, Vāyu grant. May the creator grant it me. All-hail !

**योगी**—वरुण मुझे मेधा दे, अग्नि तथा प्रजापति मुझे मेधा दें, इन्द्र तथा वायु मुझे मेधा दें, धाता मुझे मेधा दे तथा शुद्ध ज्ञानमय वाणी दे ।

**धाता**—धा (डुधाञ्) धारणपोषणयोः ।

वरुणेत्यादीनां वर्णनं वेदसमुल्लासेऽन्यत्र पठनीयम् । धाता = सर्वविश्वस्य धारकः परमेश्वरः । मेधयैव मनुष्यस्य सर्वविधसुखप्राप्तिः ॥१५॥

**इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं**
**चोभे श्रियमश्नुताम् ।**
**मयि देवा दधतु श्रिय-**
**मुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥१६॥**

उ०—इदं मे । श्रीः ऋक् । इदं ब्रह्म च क्षत्रं च उभे ब्रह्मक्षत्रे श्रियम् अश्नुताम् मदीयां श्रियमुपजीवताम् । मयि च देवाः दधतु स्थापयन्तु श्रियम् उत्तमाम् । यथाऽहं सर्वजनभोग्यो भवामि । तस्यै ते स्वाहा । या त्वमेवं सर्वजनैरभिलष्यसे तस्यै श्रियै ते तुभ्यं स्वाहा सुहुतमस्तु ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



अप्राप्य मेधां श्रिय च न यजाः सिध्यन्तीत्येष संबन्धः ॥१६॥

म०—मन्त्रोक्तदेवताऽनुष्टुप् । श्रीकामोऽनया श्रियं याचते । ब्रह्म ब्राह्मणजातिः क्षत्रं क्षत्रियजतिः इदमिमे उभे ब्रह्मक्षत्रे मे मम श्रियमश्नुताम् । देवाः मयि उत्तमां श्रियं दधतु स्थापयन्तु । तस्यै प्रसिद्धायै ते तुभ्यं श्रियै स्वाहा सुहुतमस्तु । चौ समुच्चयार्थौ । श्रीमेवे विना यज्ञासिद्धेस्ते प्रार्थ्यते ॥१६॥

द०—इद म इत्यस्य श्रीकाम ऋषिः । विद्वद्राजानौ देवते । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

**पदार्थः**—(इदम्) (मे) मम (ब्रह्म) वेदेश्वरज्ञानं तत्कुलं (च) (क्षत्रम्) राज्यं धनुर्वेदविद्या क्षत्रियकुलम् (च) (उभे) (श्रियम्) राजलक्ष्मीम् (अश्नुताम्) प्राप्नुताम् (मयि) (देवाः) विद्वांसः (दधतु) धरन्तु (श्रियम्) शोभां लक्ष्मीं च (उत्तमाम्) अतिश्रेष्ठाम् (तस्यै) श्रियै (ते) तुभ्यम् (स्वाहा) सत्याचरणया क्रियया ॥१६॥

**अन्वयः**—हे परमेश्वर ! भवत्कृपया हे विद्वन् ! तव पुरुषार्थेन च स्वाहा मे ममेदं ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुतां यथा देवा मय्युत्तमां श्रियं दधतु तथाऽन्येष्वपि । हे जिज्ञासो ! ते तुभ्यं तस्यै वयं प्रयतेमहि ॥१६॥

**भावार्थः**—अत्र वाचकलुप्तोपमा—ये मनुष्याः परमेश्वराज्ञापालनेन विदुषां सेवया सत्कारेण सर्वेषां मनुष्याणां मध्याद् ब्राह्मणक्षत्रियौ सुशिक्ष्य विद्यादिसद्गुणैः संयोज्य सर्वेषामुन्नतिं विधाय स्वात्मवत् सर्वेषु वर्त्तेरन् ते सर्वपूज्याः स्युरिति ॥१६॥

अत्र परमेश्वरविद्वत्पूजाधनप्राप्त्युपायगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिर्वेद्या ॥

Gr.—Let these the priests and Nobles both enjoy the splendour that is mine.

Best splendour may the Gods bestow on me. To thee that splendour, hail !

**योगी**—यह मेरा ब्रह्म (ज्ञान, ब्राह्मणगुण, बुद्धि इत्यादि) और यह मेरा क्षत्र (बल, क्षत्रियगुण)—दोनों श्री को प्राप्त करें। देवजन मुझ में उत्तम श्री को स्थापित करें। [हे उत्तम श्री,] मैं उस तुझको वेदज्ञान के द्वारा [प्राप्त करता हूं]।

मनुष्ये ज्ञानबलयोः सामञ्जस्यमिष्यते । विना ज्ञानेन बलमन्धं विना बलेन ज्ञानं पङ्गु । 'अतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः । (वै० द०) । इदमेव सामञ्जस्यं यजुर्वेदस्य चत्वारिंशाऽध्याये (ईशोपनिषदि) अविद्याविद्ययोरसंभूतिसंभूत्योश्च सह ज्ञानस्योपदेशे प्रदर्शितम् । योगवाशिष्ठेऽप्ययमुपदेशः—'भोगयोगपरो भव ॥१६॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# इन्द्रः [सामवेदः उ० प्र० ५ (२) मन्त्र २३ (३)]

इन्द्रविषये दृश्यतामस्मिन् पुस्तक ऋग्वेदस्येन्द्रसूक्तम्। इमे सामवेदमन्त्रा ऋग्वेदमन्त्रसदृशा एव सन्ति; अत्यल्पः पाठभेदः। सायणभाष्यं दयानन्दभाष्यं च ऋग्वेदभाष्याद् उद्धृते। सामवेदमन्त्रा भक्तिभावपूर्णाः सन्ति। एतदेवाभिलक्ष्य गीतायामुक्तम्—'वेदानां सामवेदोऽस्मि'। सामवेदस्य सम्बन्धः सूर्येण सहापि विद्यते—'सूर्यात् सामवेदः'। आध्यात्मिकदृष्ट्या सूर्यः=आध्यात्मिकज्ञानम्, आध्यात्मिकानुभूतिः।

अस्मिन् सूक्ते महालक्ष्यस्य महत्त्वं प्रतिपादितम्। जीवात्मा सदा महन्महत्तरं च लक्ष्यं दृष्टिसंमुखं संस्थाप्य जीवनमार्गे प्रवर्तताम्। महत्तरलक्ष्याणामन्तो नास्ति यतो हि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'। इयमेव मानवजीवनस्यानन्ता लीला।

ऋग्वेदेऽस्य सूक्तस्य ऋषिर्मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। विश्वानि मित्राणि यस्य स विश्वामित्रः। मित्रः—मिद् (स्निमिदा)—स्नेहने। मधूनि छन्दांसि यस्य स मधुच्छन्दाः। एवं मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः=सर्वैकात्मदर्शनयुक्तो मधुरभावी मधुरभावनामयो जनः।

**गायन्ति त्वा गायत्रिणो-**
**र्चन्त्यर्कमर्किणः।**
**ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत**
**उद्वंशमिव येमिरे ॥१॥**

सा०—हे शतक्रतो बहुकर्मन् बहुप्रज्ञ वा इन्द्र त्वां गायत्रिणः उद्गातारः गायन्ति स्तुवन्ति। अर्किणः अर्चनहेतुमन्त्रयुक्ता होतारः अर्कम् अर्चनीयमिन्द्रम् अर्चन्ति शस्त्रगतैर्मन्त्रैः प्रशंसन्ति। ब्रह्माणः ब्रह्मप्रभृतय इतरे ब्राह्मणाः त्वाम् उत् येमिरे उन्नतिं प्रापयन्ति। तत्र दृष्टान्तः। वंशमिव। यथा वंशाग्रे नृत्यन्तः शिल्पिनः प्रौढं वंशमुन्नतं कुर्वन्ति। यथा वा सन्मार्गवर्तिनः स्वकीयं कुलमुन्नतं कुर्वन्ति तद्वत्। एतामृचं यास्क एवं व्याचष्ट—'गायन्ति त्वा गायत्रिणः प्रार्चन्ति तेऽर्कमर्किणो ब्राह्मणास्त्वा शतक्रत उद्येमिरे वंशमिव। वंशो वंशनयो भवति वननाच्छ्रयत इति वा' (निरु० ५.५) इति। अर्कशब्दं च बहुधा व्याचष्टे—'अर्को देवो भवति यदेनमर्चन्त्यर्को मन्त्रो भवति यदेनेनार्चन्त्यर्कमन्नं भवत्यर्चति भूतान्यर्को वृक्षो भवति स वृतः कटुकिम्ना (निरु. ५. ४.) इति॥ गायन्ति शप्तिङौ पित्त्वात् लसार्वधातुकत्वाच्च अनुदात्तौ। धातुरुदात्तः। गायत्रिणः। गायत्रं साम येषामुद्गातृणामस्ति ते। 'अत इनिठनौ'। प्रत्ययस्वरेण इकार उदात्तः। अर्चन्ति 'अर्च पूजायाम्'। भौवादिकः। शप्तिङौ अनुदात्तौ। धातुस्वर एव। पादादित्वात् न निघातः। अर्कम्। अर्चन्त्येभिरिति अर्का मन्त्राः। तैरर्चनीयतया तदात्मक इन्द्रोऽपि लक्षणया अर्कः। 'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण' पा० सू. ३. ३. ११८) इति करणे घः।

'चजोः कु घिण्यतोः' (पा० सू. ७. ३. ५२) इति चकारस्य कुत्वं ककारः। प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः। अर्का मन्त्रा एषां सन्तीत्यर्किणो होतारः। 'एकाक्षरात्क्तो जातेः सप्तम्यां च न ती स्मृतौ' (पा. म. ५.२.११५.१) इति कृदन्तात् इनिठनौ यद्यपि प्रतिषिद्धौ तथाप्यत्र व्यत्ययात् इनिः। प्रत्ययस्वरेण इकार उदात्तः। ब्रह्माणः। प्रातिपदिकस्वरेणान्तोदात्तः। शतक्रतो। निघातः। संहितायाम् अवादेशे 'लोपः शाकल्यस्य (पा. सू. ८.३.१९) इति वकारलोपः। वंशशब्दः प्रातिपदिकस्वरेणान्तोदात्तः। 'ङेन विभक्त्यलोप पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च' इति स एव ज्ञाप्यते। येमिरे। 'यम उपरमे' 'निङ्कुतिङ्' इति निघातः॥

द०—तत्र के कथं तमिन्द्रं पूजयन्तीत्युपदिश्यते।

पदार्थः—(गायन्ति) सामवेदादिगानेन प्रशंसन्ति (त्वा) त्वां शेषं जगदीश्वरमिन्द्रं (गायत्रिणः) गायत्राणि प्रशस्तानि छन्दांस्यधीतानि विद्यन्ते येषां ते धार्मिका ईश्वरोपासकाः। अत्र प्रशंसायामिनिः। (अर्चन्ति) नित्यं पूजयन्ति (अर्कम्) अर्च्यते पूज्यते सर्वजनैर्यस्तं (अर्किणः)

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



अर्का मन्त्रा ज्ञानसाधना येषां ते ( ब्रह्माणः ) वेदान् विदित्वा ज्ञानवन्तः (त्वा) जगत्स्रष्टारम् (शतक्रतो) शतं बहूनि कर्माणि प्रज्ञानानि वा यस्य तत्संबुद्धौ (उत्) उत्कृष्टार्थे उदित्येतयोः प्रातिलोम्यं प्राह। निरु० १।३। (वंशमिव) यथोत्कृष्टैर्गुणैः शिक्षणैश्च स्वकीयं वंशमुद्यमवन्तं कुर्वन्ति तथा (येमिरे) उद्युञ्जन्ति। निरुक्तकार इमं मन्त्रमेवं व्याख्यातवान्—गायन्ति त्वा गायत्रिणः प्रार्चन्ति तेऽर्कमर्किणो ब्राह्मणास्त्वा शतक्रत उद्येमिरे वंशमिव। निरु० ५।५। अन्यच्च। अर्को देवो भवति यदेनमर्चन्त्यर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्त्यर्कमन्नं भवत्यर्चति भूतान्यर्को वृक्षो भवति स वृतः कटुकिम्ना। निरु० ५।४।१॥

**अन्वयः**—हे शतक्रतो ब्रह्माणः स्वकीयवंशमुद्येमिरे इव गायत्रिणस्त्वां गायन्ति। अर्किणोऽर्कं त्वामर्चन्ति॥

**भावार्थः**—अत्रोपमालङ्कारः। यथा सर्वैर्मनुष्यैः परमेश्वरस्यैव पूजा कार्या। अर्थात्तदाज्ञायां सदा वर्त्तितव्यम्। वेदविद्यामप्यधीत्य सम्यग्विदित्वोपदेशेनोत्कृष्टगुणैः सह मनुष्यवंश उद्यमवान् क्रियते तथैव स्वैरपि भवितव्यम्। नेदं फलं परमेश्वरं विहायान्यपूजकः प्राप्तुमर्हति। कुतः? ईश्वरस्याज्ञाभावेन तत्सदृशस्यान्यवस्तुनो ह्यविद्यमानत्वात्तस्मात्तस्यैव गानमर्चनं वा कर्त्तव्यमिति॥

Gr.—The singers hymn thee, they who chant the psalm of praise are lauding thee.

The Brahmans have exalted thee, O Satakratu like a pole.

**योगी**—हे शतक्रतो, गायक तुझको (तेरे) गुणों को गाते हैं, स्तुति करने वाले [तुझ] स्तुत्य की स्तुति करते हैं। ज्ञानी जन तुझे ऐसे उठाए फिरते हैं जैसे कोई वंश (ध्वजदण्ड) को उठाए फिरते हैं॥

शतशतकर्म प्रज्ञायुक्तो वीरः क्षत्रियः सर्वत्र पूज्यो भवति—'क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः' (कालिदासः) वीरक्षत्रियरक्षितदेश एव सुखी। एतादृशानां क्षत्रियाणां गुणवर्णनाय कविभिः काव्यरचना क्रियते। कवय एषां गुणान् उच्चैरुद्घोषयन्ति।

मानवशरीर आत्मैव स्तुत्यः। 'आत्मा वारे श्रोतव्यो द्रष्टव्यो निदिध्यासितव्यः'। आत्मज्ञानिनो जना जानन्ति—यद् आत्मसाक्षात्कारेणैवानन्दः। ते सर्वत्रात्मज्ञानप्रसारं विदधति॥१॥

**यत्सानोः सान्वारुहो**
**भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्।**
**तदिन्द्रो अर्थं चेतति**
**यूथेन वृष्णिरेजति॥२॥**

(ऋग्वेदे—सानुमारुहद्)

**सा०**—यद् यदा सानुमारुहत् यजमानः सोमवल्लीसमिदाद्याहरणायैकस्मात् पर्वतभागाद् अपरं पर्वतभागमारूढवान्। तथा भूरि प्रभूतं कर्त्वं कर्म सोमयागरूपमस्पष्ट स्पृष्टवान्। उपक्रान्तवानित्यर्थः। तत् तदानीमिन्द्रोऽर्थं यजमानस्य प्रयोजनं चेतति। जानाति। ज्ञात्वा च वृष्णिः कामानां वर्षिता सन् यूथेन मरुद्गणेन सहैजति। कम्पते। स्वस्थानाद् यज्ञभूमिमागन्तुकमुद्युङ्क्त इत्यर्थः॥ सानोः। षणु दाने। सनोति ददाति निवसतामवकाशमिति सानुः। दृसनिजनिचरिचटिरहिभ्यो ञुन्। उ० १.१३। णित्वाद् उपधाया वृद्धिः। ञित्वादाद्युदात्तत्वं च। अरुहत्। रुहेर्लङि तिपि शपि संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः। परि० ९३।१। इति लघूपधगुणो न भवति। लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः। सति शिष्टत्वात् स एव शिष्यते। निपातैर्यद्यदिहन्तेति। पा० ८.१.३०। निषेधान्निघातो न भवति। भूरि। अदिशदिभुशुभिभ्यः क्रिन्। उ० ४.६५। कित्वाद् गुणाभावः। नित्वादाद्युदात्तः। अस्पष्ट। स्पश बाधनस्पर्शनयोः। स्वरितञित इत्यात्मनेपदम्। लङः प्रथमपुरुषैकवचनं च। बहुलं छन्दसीति शपो लुक्। बाधादिषत्वष्टुत्वे। पा० ८.२.३६; ८.४.४१)। लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्त इत्यडागम उदात्तः। स एव शिष्यते। अनुषङ्गेण यच्छब्दयोगान्निघाताभावः। कर्त्वम्। डुकृञ् करणे। अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते। पा० ३.२.७५। इति विच्। गुणो रपरत्वम्। विचः सर्वापहारी लोपः। करो भावः कर्त्वम्। अर्थम्। अर्ते रुषिकुषिगार्तिभ्यः स्थन्। उ० २.४। नित्वादाद्युदात्तः। यूथेन। तिथपृष्ठगूथयोथप्रोथाः। उ० २.१२। इति थक्प्रत्ययान्तो निपातितः। वृष्णिः। निरित्यनवृत्तौ सृवृषिभ्यां कित्। उ० ४.४९। इति निप्रत्ययान्तः। कित्वाद् गुणाभावः। प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः। एजति। एजृ कम्पने। तिङ्ङतिङ इति निघातः।

द०—पुनः स कथं वेदितव्य इत्युपदिश्यते।

**पदार्थः**—(यत्) यस्मात् (सानोः) पर्वतस्य शिखरात्

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


संविभागात्कर्मणः सिद्धेर्वा । दृसनिजनि० उ० १.३ । अनेन सनेर्ञुण् प्रत्ययः । अथवा षोऽन्तकर्मणीत्यस्माद् बाहुलकान्नुः (सानुम्) यथोक्तं त्रिविधमर्थम् (आ) धात्वर्थे (अरुहत्) रोहति । अत्र लडर्थे लङ् । विकरणव्यत्ययेन शपः स्थाने शः । (भूरि) बहु । भूरिरिति बहुनामसु पठितम् । निघ० ३।१ । अदिसदिभू० । उ० ४।६६ । अनेन भूधातोः क्रिन् प्रत्ययः (अस्पष्ट) स्पशते । अत्र लडर्थे लङ् बहुलं छन्दसीति शपो लुक् ।(कर्त्त्वम्)कर्त्तुं योग्यं कार्यम् । अत्र करोतेस्त्वन् प्रत्ययः । (तत्) तस्मात् (इन्द्रः) सर्वज्ञ ईश्वरः (अर्थम्) अर्तुं ज्ञातुं प्राप्तुं गुणं द्रव्यं वा । उषिकुषिगार्त्तिभ्यः स्थन् । उ० २.४ । अनेनार्त्तेः स्थन् प्रत्ययः । चेतति संज्ञापयति प्रकाशयति वा । अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः । (यूथेन) सुखप्रापक-पदार्थसमूहेनाथवा वायुगणेन सह । तिथपृष्ठगूथयूथप्रोथाः । उ० २।१२ । अनेन यूथशब्दो निपातितः (वृष्णिः) वर्षति सुखानि वर्षयति वा । सृवृषिभ्यां कित् । उ० ४।५१ । अनेन वृषधातोर्निः प्रत्ययः स च कित् ( एजति ) कम्पते ॥२॥

**अन्वयः**—यूथेन वायुगणेन सह वृष्णिः सूर्यकिरण-समूहः सानोः सानुं भूर्यारुहत् स्पशते राजते चलति चाल-यति वा । यो मनुष्यो यत्सानोः सानुं कर्मणः कर्मत्त्वं भूर्या-रुहत् । अस्पष्टैजति तस्मै इन्द्रः परमात्मा तत्तस्मात्सानोः सानुमर्थं भूरि चेतति ज्ञापयति ।

**भावार्थः**—इवशब्दानुवृत्त्यात्रोपमालङ्कारः । यथा सूर्य्यः सन्मुखस्थान् वायुना सह पुनः पुनः क्रमेणात्यन्तमा-क्रम्याकर्ष्य प्रकाश्य भ्रामयति । तथैव यो मनुष्यो विद्यया कर्त्तव्यानि बहूनि कर्माणि निरन्तरं संपादयितुं प्रवर्त्तते स एव साधनसमूहेन सर्वाणि कार्य्याणि साधितुं शक्नोति । अस्यामीश्वरसृष्टावेवंभूतो मनुष्यः सुखानि प्राप्नोति । ईश्वरोऽपि तमेवानुगृह्णाति ।

Gr.—When thou wast climbing ridge from ridge, he looked upon the toilsome task :

Indra takes notice of that wish, and the Ram hastens with his troop.

The Ram : the vigorous and battle-loving Indra. His troop : or flock; the Maruts who attend him.

**सानु**—या० सानु समुच्छ्रितं भवति, समुन्नुन्नं वा ।

**योगी**—जब तू सानु से सानु पर चढ़ता है, तब अनेक कर्तव्य कर्मों का साक्षात्कार करता है; इन्द्र लक्ष्य का संज्ञान करता है और वह शक्तिशाली [इन्द्र] समूह को साथ लेकर गति (प्रगति) करता है ॥२॥

**अस्पष्ट**—स्पश्— बाधनस्पाशनयोः, दर्शने (ह्वि), ग्रहणसंश्लेषणयोः । अर्थः—ऋ—गतौ । चेतति—चित् (चिती)—संज्ञाने । एजति—एजृ—गतौ कम्पने च ।

क्षत्रियस्येदं कर्त्तव्यं यदसा उच्चलक्ष्याणि दृष्टिसम्मुखं स्थापयतु । तस्योत्तरदायित्वं महत् । आर्तरक्षा तस्य धर्मः । असौ संगठनं कृत्वा दूरे दूरे गत्वा दुष्टान् नाशयतु ।

मानवो जीवने यदोन्नतिं करोति, तस्य उन्नतेः कश्चि-दन्तो नास्ति, यतो हि तस्य लक्ष्यमनन्तब्रह्मैकाकारता । अनन्ता खलु जीवनयात्रा, प्रतिपदं भूरि कर्त्तव्यम् । यदैकं लक्ष्यमधिगम्यते तत्प्राप्योच्चत्तरलक्ष्याणि दृष्टिसम्मुख-मायान्ति । आत्मा तानि लक्ष्याणि जानाति, तथा अन्यान् जनान् अपि कथयति । **'समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः । समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति (ऋ० १०.१९१.४—ऋग्वेदस्यान्तिमो मन्त्रः'** ) । जीवन-मार्गे निरन्तरं प्रगतिः कर्त्तव्या, अत्र ह्युत्तरोत्तरमुच्चतर-लक्ष्याणि सन्ति, तानि लक्ष्याण्यनन्तानि यतो हि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' । यदा ब्रह्मैकरूपताऽपि भवति तदापि मनुष्यः सदैव भूरि करणीयं पश्यति । अनन्तब्रह्मणोऽनन्ता लीला, लीलायां च सदा भूरि करणीयम् (कर्त्वम्) ।

**युङ्क्ष्वा हि केशिना हरी**
**वृषणा कक्ष्यप्रा ।**
**अथा न इन्द्र सोमपा**
**गिरामुपश्रुतिं चर ॥३॥**

(ऋग्वेदे—युक्ष्वा)

**सा०**—हे सोमपाः सोमपानयुक्तेन्द्र हरी त्वदीयावश्वौ युक्ष्वा हि । सर्वथा संयोजय । अथानन्तरं नोऽस्मदीयानां गिरामुपश्रुतिं समीपे श्रवणमुद्दिश्य चर । तत्प्रदेशं गच्छ । कीदृशौ हरी । केशिना स्कन्धप्रदेशे लम्बमानकेशयुक्तौ वृषणा सेचनसमर्थौ युवानौ कक्ष्यप्रा । अश्वस्योदरबन्धन-रज्जुः कक्ष्या । तस्याः पूरकौ । पुष्टाङ्गावित्यर्थः । युक्ष्व ।

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

श्नमो लोपश्छान्दसः । सति शिष्टत्वेन प्रत्ययस्वरः शिष्यते। द्व्यचोऽतस्तिङ इति संहितायां दीर्घत्वम् केशिना । प्रशस्ताः केशा अनयोः सन्तीति मत्वर्थीय इनिः । प्रत्ययस्वरः । सुपां सुलुगित्यादिना द्विवचनस्याकारादेशः । वृषणा । पृषु वृषु मृषु सेचने । कनिन्युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः । उ० १.१५६ । इति कनिन् ञ्नित्यादिनित्यमित्याद्युदात्तः । वा षपूर्वस्य निगमे । पा० ६.४.९ । इत्युपधायाः पक्षे दीर्घाभावः । पूर्ववदाकारः । कक्ष्यप्राः । कक्षयोर्भवं कक्ष्यं सूत्रम् । तत् प्रातः पूरयतः पुष्टत्वादिति कक्ष्यप्रौ । प्रा पूरणे आतोऽनुपसर्गे कः । पा० ३.२.३ । इति कप्रत्ययः । कृदुत्तरप्रकृतिस्वरेणान्तोदात्तत्वम् । आकारः पूर्ववत् । अथ निपातस्येति संहितायां दीर्घः । नः । अनुदात्तं सर्वमपदादावित्यनुवृत्तौ बहुवचनस्य वस्नसौ । पा० ८.१.२१ । इति नसादेशोऽनुदात्तः । इन्द्र सोमपाः । उभावामन्त्रितस्य चेति सर्वानुदात्तौ । गिराम् । सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिरिति विभक्तिरुदात्ता । उपशब्दो निपातत्वादाद्युदात्तः । श्रुतिशब्देन प्रादिसमासे कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वे प्राप्ते तादौ च निति कृत्यतौ । पा० ६.२.५० । इति तुर्वजिततादिपरत्वाद् गतेः प्रकृतिस्वरः । चर । निघातः ॥३॥

द०—अथेन्द्रशब्देनेश्वरसूर्य्यावुपदिश्येते ।

पदार्थः—(युक्ष्व) युङ्क्ष्व योजय । छान्दसो वर्णलोपो वेति न लोपः । द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घश्च । (हि) हेत्वपदेशे (केशिना) प्रकाशयुक्ते आकर्षणबले । अत्र सर्वत्र सुपां सुलुगिति द्विवचनस्याकारादेशः । (हरी) व्याप्तिहरणशीलावश्वौ (वृषणा) वृष्टिहेतू (कक्ष्यप्रा) कक्षासु भवाः कक्ष्याः सर्वपदार्थावयवास्ताम् प्रातः प्रपूरयतस्तौ (अथ) आनन्तर्ये अत्र निपातस्य चेति दीर्घः । (नः) अस्मानस्माकं वा (इन्द्र) सर्वस्रोतोव्यापिन्नीश्वर प्रकाशमानः सूर्य्यलोको वा (सोमपाः) सोमानुत्तमान् पदार्थान् पाति रक्षति तत्संबुद्धौ पदार्थानां रक्षणहेतुः सूर्य्यो वा (गिराम्) प्रवर्त्तमानानां वाचाम् (उपश्रुतिम्) उपयुक्तां श्रुतिं श्रवणम् (चर) प्राप्नुहि प्राप्नोति वा ।

अन्वयः—हे सोमपा इन्द्र यथा भवद्रचितस्य सूर्य्यलोकस्य वृषणा कक्ष्यप्रा हरी अश्वौ युक्तः । तथैव त्वं नोऽस्मान् सर्वविद्याप्रकाशाय युङ्क्ष्व । अथ हि नो गिरामुपश्रुतिं चर ।

भावार्थः—अत्र लुप्तोपमालङ्कारः । सर्वैर्मनुष्यैः सर्वविद्यापठनानन्तरं क्रियाकौशले प्रवर्त्तितव्यं यथाऽस्मिन् जगति सूर्य्यस्य विशालः प्रकाशो वर्त्तते तथैवेश्वरगुणानां विद्यायाश्च प्रकाशः सर्वत्रोपयोजनीयः ॥३॥

Gr.—Harness thy pair of strong bay steeds, long-maned, whose bodies fill the girths.

And, Indra, Soma-drinker, come to liste to our songs of praise.

केशिनौ—या० केशी केशा रश्मयस्तैस्तद्वान् भव[illegible] काशनाद्वा, प्रकाशनाद्वा ।

हरी—या०—हरिः—हरणः ।

कक्ष्यप्रा—या०—कक्ष्या कक्षं सेवते । कक्षो गाहते, क्स इति नामकरणः । ख्यातेर्वाऽनर्थकोऽभ्यासः, किमस्मिन् ख्यानमिति । कषतेर्वा ।

योगी—हे इन्द्र, रश्मिदीप्त, शक्ति-शाली, सर्वत्र समाये हुए स्वर्णवर्ण (अथवा वहन करने वाले), अश्वों को [रथ में] युक्त कर । तदनन्तर हे सोम का पान करने वाले इन्द्र, हमारी उस वाणी की ओर आभिमुख्य से गति कर (सेवन कर) जो तेरे श्रवणों के अत्यन्त समीप पहुँच रही है ॥३॥

चर—चर्-गतिभक्षणयोः ।

क्षत्रियस्येदं यदसौ सर्वस्य राष्ट्रस्य [illegible] भवेत् । असौ सर्वदा शक्तिशालिसाधनानि संगृह्णा[illegible] तस्य स्पशाः (केशिनः) सावधाना भवन्तु, सर्वविद्या[illegible] चारहरणाहरणयोः समर्था भवन्तु, शक्तिमन्तो भवन्तु, [illegible] सर्वत्रगमनस्वभावा भवन्तु । राज्ञः प्रजासु [illegible] पुरुषा द्विविधाः—(१) प्रजासु [illegible] (२) प्र[illegible] सञ्चरन्तीनां प्रवृत्तीनामाहर्तारः । राजा [illegible] पाः) भवतु, प्रजानां च कष्टानि सावधानं जा[illegible] मानवः स्वजीवने [illegible] सांसारिकज्ञानम् (२) आध्यात्मिकज्ञानम् । [illegible] समूहौ प्रकाशमयौ (केशिनौ), प्रगतियुक्तौ (हरी), [illegible] मन्तौ (वृषणौ), सर्वविद्याभावपूरकौ (कक्ष्यप्रौ), भवता[illegible] य आध्यात्मिकानन्दलीनो मनुष्यो भवति, स सर्व[illegible] ज्ञानं सावधानं प्राप्नोति ॥३॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# वरुणः (अथर्ववेदः ४.१६)

ऋग्वेदे प्रायो द्वादशसूक्तेषु वरुणः स्तुतः। एतदरिक्तमन्यवेदेषु प्रायः ५७ मन्त्राः। वेदेषु बहुषु मन्त्रेषु वरुणो मित्रेण सह स्तुतः। मित्रावरुणावधिकृत्य ऋग्वेदे प्रायश्चतुर्विंशतिसूक्तानि। एतदतिरिक्तमन्यवेदेषु प्रायः २६ मन्त्राः।

वरुणस्य प्राकृतिकपृष्ठभूमिर्विस्तृतः सर्वावरक आकाशः। आकाशश्च वेदेषूत्तरसमुद्ररूपेण स्मृतः। अतो वरुणः समुद्रदेवो (जलदेवो) वा जातः। परवर्तिकाले पार्थिवसमुद्रदेवरूपेणापि वरुणस्य बहुवर्णनम्।

विश्वे वरुण ऋतस्य देवः। ऋतं च सर्वविधनियमः— विश्वस्य प्रकृतेः शरीरस्य मनस आत्मनश्च। सर्वविधव्यवस्था वरुणेन सह सम्बद्धा।

समाजे मनुष्ये च वरुणो न्यायस्य प्रेम्णश्च प्रतिनिधिः। वरुणो महान्यायकारिरूपेण तथा च महाप्रेममयरूपेणापि [illegible] वर्णितः। मित्रो देवः वरुणस्य प्रेमरूपं [illegible]टीकरोति। 'मित्रावरुणौ' इत्यत्र वरुणस्यैव प्रेमभावना [illegible]रूपेण स्फुटीकृता। यदि केवलं वरुण इति कथ्यते [illegible] मित्रभावना समायाति। परन्तु प्रायो जनानामियं [illegible] भवति, यन्यायविषये प्रेमोपेक्षा कर्तव्या। परन्तु [illegible] प्रेमविहीनो न्यायोऽन्यायो भवति, न्यायविहीनं [illegible] शत्रुत्वं भवति। न्यायस्य पूर्णता प्रेम्णैव भवतीति [illegible]य मित्रावरुणाविति रूपम्। प्रेमन्याययोः सामञ्जस्य-

[illegible]

[illegible] न्यायं हि लोकेऽस्मिन् प्रेम पङ्गु प्रकीर्तितम्।
[illegible] न्यायो बुधैरन्ध इति स्मृतः ॥१॥
[illegible] विना न्यायं चित्रं हि वेष्टनं विना।
[illegible] विना प्रेम विना चित्रं हि वेष्टनम् ॥२॥
[illegible] रसः प्रेम योगिन् स पीयतां सुखम्।
[illegible]त्रं रसः कुत्र किंच पात्रं रसं विना ॥३॥

[illegible]षु वरुणस्य कतिपयविशेषणानि—

[illegible]दक्षः, उरुशंसः, क्षत्रश्रीः, नरः, असुरः प्रचेताः, उरुचक्षाः, धृतव्रतः, सुक्रतुः, स्वराट्, कविः, पुरुवीरः, प्रणेता, कवितमः, विश्ववेदाः, सम्राट्, बृहत्, 'अमृतस्य गोपा', त्वेषनृम्णः, स्वधावान्, भूर्योजाः, उग्रः, सहस्रचक्षाः, गृत्सः, मेधिरः।

वरुणविषये कतिपये मन्त्रा मन्त्रखण्डाश्च—

न हि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं
वयश्च नामी पतयन्त आपुः।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्ती-
र्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥

ऋ० १. २४. ६.

शतं ते राजन् भिषजः सहस्र-
मुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ॥

ऋ० १. २४. ९

उदुत्तमं वरुण पाशमस्म-
दवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवा-
नागसो अदितये स्याम ॥

ऋ० १. २४. १५

महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम्

ऋ० ५. ८५. ५

उत स्वया तन्वा सं वदे तत्
कदा न्वन्तर्वरुणे भुवानि

ऋ० ७. ८६. २

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा
सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे
स्वप्न श्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥

ऋ ७. ८६. ६

बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः
सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते

ऋ० ७. ८८. ५



Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

ऋतेन राजन्ननृतं विविञ्चन्
मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि

ऋ० १०. १२४. ५

विद्मा शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम्

य० २०. ७३

न त्वदन्यः कवितरो न मेधया
धीरतरो वरुण स्वधावन्

अथर्व० ५. ११. ४

मित्रावरुणयोः कानिचिद् विशेषणानि—

सम्राजा, घृतासुती, 'यज्ञेयज्ञ उपस्तुता', 'जागृवांसा दिवेदिवे', दानुनस्पती, ऋतावाना, राजाना, दिविस्पृशा, 'ऋतस्य गोपौ', श्रेष्ठवर्चसा, दीर्घश्रुत्तमा, सत्पती, 'धर्तारा चर्षणीनाम्', रिशादसा, प्रचेतसा, पूतबन्धू, सुदक्षा, दक्षपितरा, प्रमहसा, सोममातुजी, ऋतावृधा, असुरा, सुक्रतू, धृतव्रता, क्षत्रिया, गातुवित्तरा, कशावन्ता, उरुचक्षसा, दीर्घश्रुत्तमा, दंसना, दिविस्पृशा जीरदानू, सत्यधर्माणा।

केचन मन्त्रा मन्त्रखण्डाश्च—

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।
धियं घृताचीं साधन्ता॥

ऋ० १. २. ७

ऋतेन मित्रावरुणावृतवृधावृतस्पृशा।
क्रतुं बृहन्तमाशाथे॥

ऋ १. २. ८

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया।
दक्षं दधाते अयसम्॥

ऋ० १.२.९

ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे

ऋ० १.१५२.१

प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम

ऋ० १.१५२.४

माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता

ऋ० ५.६३.४

देवा देवेषु प्रशस्ता

ऋ० ५.६८.२

अद्रुहा देवौ वर्धेते

ऋ० ५.६८.४

मित्रावरुणौ वृष्ट्यधिपती तौ मामवताम्

अथर्व० ५. २४. ५

वरुणविषये यास्कः—'वरुणो वृणोतीति सतः'। दुर्गः—स हि वियद् वृणोति मेघजालेन।

व्याकरणदृष्ट्या—

वृ (वृज्)—वरणे, आवरणे, वृ (वृङ्)—संभक्तौ (संभक्तिः=सेवनम्—दुर्गादासः)। वर् (वर) ईप्सायाम्।

अस्य सूक्तस्य ऋषिः

अस्य सूक्तस्य ऋषिर्ब्रह्मा। या० 'ब्रह्मा परिवृढः श्रुततः। व्याकरणदृष्ट्या—बृह् (बृहि)—वृद्धौ, बृह् (बृह)—शब्दे, बृह् (बृहू)—उद्यमने। विद्यया हृदयेन च महान् हि ब्रह्मा।

वरुणः (अथर्ववेदः ४.१६)

सा०—चतुर्थेऽनुवाके पञ्च सूक्तानि। तत्र 'बृहन्नेषाम्' इति आद्येन सूक्तेन अभिचारकर्मणि शत्रुं क्रोशन्तम् अनुब्रूयात् (कौसू ४८. ७)। धूमकेतूत्पातशान्तौ वारुणपशुप्रयोगे 'उतेयं भूमिः' (३) इत्येषा (कौसू १२७. ३)।

बृहन्नेषामधिष्ठाता
अन्तिकादिव पश्यति।
यस्तायन्मन्यते चर-
न्त्सर्वं देवा इदं विदुः॥१॥

सा०—बृहन् महान् परिवृढो वा वरुणः एषाम् दुरात्मनां शत्रूणाम् अधिष्ठाता नियन्ता सन् तैः कृतं सर्वम् [illegible] य्यम् अन्तिकादिव पश्यति समीपदेशादिव [illegible] तस्य व्यवधायकं किंचिद् अस्तीत्यर्थः। [illegible] सान्तत्येन वर्तमानं स्थिरवस्तु चरत् चरणं [illegible] वस्तु मन्यते। स्थावरजङ्गमात्मकं सर्वं [illegible]। स बृहन् इति संबन्धः। तायत् इति। ताय् सन्ता[illegible] चला अस्मात् लटः शत्रादेशः। [illegible] जाए, उपपादयति सर्वम् इति। व्यवहित विप्रकृष्ट [illegible] से स्थूलं सूक्ष्मम् इति एतादृग् इदं सर्वम् अतिरोहित[illegible] हे हैं, देवाः विदुः जानन्ति। विद ज्ञाने। 'विदो लटो व[illegible]' (पा० [illegible] ते हैं ४. ८३) इति झेः उसादेशः॥१॥

Whi—The great superintendent of [illegible] sees, as it were, from close by, whoever t[illegible] to be going on in secret, all this the gods [illegible]

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

**योगी**—इनका बड़ा (महान्, अत्यन्त विस्तार व परिणाह वाला) अधिष्ठाता मानो [सबको] निकट से देखता है, जो स्थिर तथा चरणशील (नश्वर) [दोनों को] जानता है—देव यह सब कुछ जानते हैं ॥१॥

मनुष्यस्येदं कर्त्तव्यं यदसौ अल्पमात्रमपि नियमभङ्गं न करोतु । सर्वोऽपि संसृतिर्नियमबद्धा तिष्ठति । नियम एव संसृतेरधिष्ठाता, स सर्वत्रोतप्रोतः । ऋतयुक्तो जनो शाश्वते ईश्वरे च परस्परमन्तरं जानाति । ये दिव्यगुणयुक्ता जनाः सन्ति ते सर्वान् नियमान् पूर्णतयाऽवगच्छन्ति । संसृतौ दुःखस्य मूलं नियमज्ञानाभावः । 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' । 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' । अत एवोक्तम्—'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत । क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति' । 'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः' ।

परन्त्विदं सर्वं ज्ञानं तदा प्राप्यते यदा मनुष्यो देवगुणयुक्तो भवति, बृहन् भवति, स्वहृदयस्य बुद्धेश्चाधिष्ठाता भवति, तदा तस्य प्रत्येकं वस्तुनः स्वरूपस्य साक्षात्कारो भवति । स जीवनमार्गे चलन्न स्खलति, तस्य सदसद्विवेको जायते । स सृष्टिनियमान् ज्ञात्वा नियमानुसारं जीवनं यापयित्वाऽऽनन्दीभवति ॥१॥

**यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति**
**यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।**
**द्वौ सन्निषद्य यन्मन्त्रयेते**
**राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः ॥२॥**

मू० क० कर्त्ता

भा०—[यः] पूर्वमन्त्रस्थाम् ऋचि एषाम् इत्युक्तम् । तत्र इदमानः प्रति[illegible] निर्दिश्यन्त इति तान् निर्दिशति 'यस्तिष्ठति' पूर्वार्धेन [illegible] । यः शत्रुस्तिष्ठति अभिमुखम् अवतिष्ठते चरति गच्छति यश्च वञ्चति कौटिल्येन प्रतारयति यः निलायम् निलयनेन अनिर्गमनेन चरति । यद्वा निलीनः सन् चरति । अस्तेर्निपूर्वात् णमुल् । निपूर्वात् [illegible] । उभयथाऽपि समानोऽर्थः । 'उपसर्गस्यायतौ' (पा० ८. २. १९) इति लत्वम् । यः शत्रुः प्रतङ्कम् प्रकर्षेण कृच्छ्रजीवनं प्राप्य चरति वर्तते । तकि कृच्छ्रजीवने । अस्मात् प्रपूर्वात् णमुल् । एषां शत्रूणाम् इति पूर्वेण सम्बन्धः । अन्तिकादिव पश्यतीति यद् उक्तं तदपि समर्थयते द्वौ संनिषद्येत्युत्तरार्धेन । द्वौ पुरुषौ रहसि संनिषद्य उपविश्य यत् कार्यं मन्त्रयेते गुप्तं भाषेते । मन्त्रि गुप्तभाषणे इति धातुः । तयोर्गुप्तं भाषमाणयोः तृतीयः त्रित्वसङ्ख्यापूरकः सन् राजा ईश्वरो वरुणः स्वसार्वज्ञ्येन तत् सर्वं वेद । जानातीत्यर्थः । ततश्च अकार्यचिन्तावसर एव तान् निग्रहीतुं वरुणः शक्नोतीत्यर्थः । त्रेः संप्रसारणं च (पा ५. २. ५५) इति पूरणार्थे तीयप्रत्ययः संप्रसारणं च ।

Whi—Whoso stands, goes about, and whoso goes crookedly (वञ्च्) whoso goes about hiddenly, who defiantly (? प्रतङ्कम्)—what two sitting down together, talk, Varuna, as third, knows that.

**योगी**—जो खड़ा है (गति नहीं कर रहा है), जो गति कर रहा है, जो कुटिलता कर रहा है, जो अदृश्य हो कर गति कर रहा है, जो दूसरों को आतङ्कित कर रहा है; दो समीप बैठ कर जो सलाह करते हैं—तीसरा राजा वरुण उसे जानता है ॥२॥

यदा कश्चिदपि जनो जीवनस्य सत्यनियमान् खण्डयति, तदाऽसौ स्वयमेव दुःखदफलं प्राप्नोति । एवमेव सामाजिकसर्वहितकारिनियमभङ्गेनापि स्वयमेव हानिर्भवति । यो जन एवं चिन्तयति यत्केनचिन्न दृष्टमिति, स मूर्खः । यदि केनचिन्न दृष्टं केवलमनेनैव, तस्य न दुःखप्राप्त्यभावो यतस्ते नियमास्तु स्वयमेव कार्यं कुर्वन्ति—वरुणो हि खलु ते—सर्वमावृत्य तिष्ठन्ति ॥२॥

**उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ**
**उतासौ द्यौर्बृहती दूरे अन्ता ।**
**उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी**
**उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥३॥**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


सा०—उतशब्दः अप्यर्थे । इयं सर्वाधिष्ठानत्वेन निहिता भूमिः अपि राज्ञः ईश्वरस्य दुष्टनिग्रहे अधिकृतस्य वरुणस्य वशे वर्तते । उत अपि च असौ विप्रकृष्टा बृहती महती दूरे विप्रकृष्टे देशे अन्ते अन्तिके च भवतीति दूरे-अन्ता । यत एवं व्याप्य वर्तते अतो बृहतीति भावः । एवं-रूपा द्यौश्च वरुणस्य राज्ञो वशे वर्तते । बृहती दूरे-अन्तेति विशेषणद्वयं भूम्या अपि योज्यम् । अत एव दूरेअन्ते इति द्यावापृथिव्योर्नामसु पठितम् (निघ ३. ३०) । उतो अपि च समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ वरुणस्य राज्ञः कुक्षी दक्षिणोत्तरपार्श्वभेदेन अवस्थिते द्वे उदरे । एवं भूम्यादिकं कृत्स्नं जगद् व्याप्य वर्तमानोऽपि अस्मिन् अल्पेऽपि उदके तटाकह्रदादिगते निलीनः अन्तर्हितो भवति ।

Whi—Both this earth is king Varuna's and yonder great sky with distant margins (—अन्ता) also the two oceans are Varuna's paunches ; also in this petty water is he hidden.

Gr.—Both the oceans : the sea of air and terrestrial ocean: the waters the above firmament and waters under the firmament.

योगी—यह भूमि भी राजा वरुण के [अधिकार में है] और बहुत दूर तक विस्तृत यह बृहत् द्युलोक भी (वरुण के अधिकार में है) तथा ये दोनों समुद्र वरुण की दो कुक्षियां हैं तथा (फिर भी) यह वरुण अल्प उदक में निलीन है ॥३॥

समुद्रः—व्याख्यातः पुरस्तात् ।

कुक्षिः—कुष्—निष्कर्षे (निष्कर्षः=इयत्तापरिच्छेदः—दुर्गादासः बहिर्निःसारणम्—सायणः बहिष्करणम्—क्षीरस्वामी) निलीनः—(नि) ली (लीञ्) श्लेषणे ।

सर्वत्राखण्डनियमानां राज्यमस्ति । नियमभङ्गं कृत्वा कश्चिदपि सुखी सफलो वा भवितुं नार्हति । सर्वत्रापि विज्ञानं नियमानामाविष्करणमेव ।

मानवजीवने—भूमिः=शरीरम्, द्यौः=आत्मा ; समुद्रौ=समाजः, राष्ट्रं च ; अल्पमुदकम्=पारिवारिक-जीवनम् । मानवस्य शरीरिकोन्नतिराध्यात्मिकप्रगतिः समाज-राष्ट्र-जीवनं पारिवारिकजीवनं च सर्वमपि विशिष्ट-नियमाधीनम्, स एव सुखी सफलश्च यः स्वाध्यायसत्सङ्गाभ्यामिमान् नियमान् जानाति तदनुकूलं चाचरति । ।३॥

**उत यो द्यामतिसर्पात् परस्ता-**
**न्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।**
**दिवः स्पशः प्र चरन्तीदमस्य**
**सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ॥४॥**

सा०—उत अपि च यः शत्रुः अनर्थकारी अस्माकं पुरस्तात् द्याम् अन्तरिक्षप्रदेशम् अतिसर्पात् अतिक्रम्य सर्पेद् गच्छेत् । यद्वा सुकृतप्राप्यं द्यां स्वर्गम् अतिक्रम्य अपथे प्रवर्तेतेत्यर्थः । स शत्रुः वरुणस्य राज्ञः पाशेभ्यो न मुच्यातै न मुच्येत । तैर्बद्ध एव वर्तताम् इत्यर्थः । मुचेः कर्मणि लेटि आडागमः । वैतोन्यत्र ( पा० ३. ४. ९६ ) इति ऐकारः । कथं द्युलोकस्थो वरुणः मनुष्यकृतम् अपराधं जानातीति तत्राह—दिवः स्पश इति । दिवः द्युलोकान्निर्गताः अस्य वरुणस्य स्पशः चारा इदं पार्थिवं स्थानं प्र चरन्ति प्राप्य सञ्चरन्ति । ते च सहस्राक्षाः सहस्रसङ्ख्याकैर्दर्शनोपायैर्युक्ताः सन्तः भूमिम् अति पश्यन्ति । भूलोक-वृत्तान्तं सर्वम् अतिशयेन साक्षात्कुर्वन्तीत्यर्थः ।

Whi—Also whoso should creep far off beyond the sky, he should not be released from king Varuna; from the sky his spies go forth hither; thousand-eyed they look over the earth.

Gr.—Envoys ( स्पशः ) : Varuna's spies, messengers, or angels are perhaps the other Adityas. See Rigveda 1.25.13. and VII. 57.3.

योगी—यदि कोई भाग कर द्युलोक के परे भी चला जाए तो भी वह राजा वरुण [के पाशों] से छूट जाए, यह असंभव है । इस (वरुण) के प्रकाश एवं ज्ञान से उद्भूत चर इस विश्व में सम्यक् तथा (सर्वत्र) घूम रहे हैं, हजारों आँखों वाले वे भूमि के चप्पे-चप्पे को देखते हैं (जानते हैं) ॥४॥

अखण्डनीयाः किल सृष्टिनियमाः । यो मानवः सुखमिच्छति स सावधानं नियमान् जानातु । नियमभङ्गेन दुःखमेव । अग्नौ करप्रवेशो दहनायैव ॥४॥

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust


**सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे**
**यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात् ।**
**सङ्ख्याता अस्य निमिषो जनाना-**
**मक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि ॥५॥**

**सा०**—रोदसी अन्तरा द्यावापृथिव्योर्मध्ये यत् प्राणिजातं वर्तते तथा पुरस्तात् स्वस्य पुरोभागे यत् प्राणिजातम् अस्ति तत् सर्वं वरुणो राजा वि चष्टे विशेषेण पश्यति। तस्मात् तेषां जनानाम् प्राणिनां निमिषः निमेषणव्यापारस्य उपलक्षणम् एतत्। अक्षिपरिस्पन्दोपलक्षितस्य अस्य साध्वसाधुकर्मणः संख्याता परिमाणयिता वरुणः तानि पापिनां शिक्षाकर्माणि तत्तत्पापानुसारेण नि मिनोति निक्षिपति। डुमिञ् प्रक्षेपणे। तत्र दृष्टान्तः—अक्षानिव इति। स्वघ्नी स्वम् आत्मानं स्वकीयं धनं च हन्तीति कितवः स्वघ्नी। तथा च यास्कः—श्वघ्नी कितवो भवति। स्वं हन्ति (नि ५. २२) इति। यथा कितवः अक्षान् आत्मनो जयार्थं निक्षिपति तद्वद् इत्यर्थः।

Whi—All this king Varuna beholds (वि-चष्), what is between the two firmaments, (रोदसी), what beyond; numbered of him are the winkings of people; as a gambler the dice, [so] does he fix (? नि-मि) these things.

**योगी**—जो द्युलोक तथा पृथ्वीलोक के अन्तराल में है और जो इससे परे (भी) है, राजा वरुण उस सबको सम्यक्तया देखता है। इसने तो लोगों के निमेष भी गिन रखे हैं(अर्थात् वह जानता है कि आज अमुक ने इतनी बार पलक झपकाई) और वह (लोगों के कर्मों को उन पर) ऐसे प्रकर्ष से प्रक्षिप्त करता है जैसे जुआरी पासों को ॥५॥

फलप्रदानविषये प्रकृतेर्नियमा अखण्डाः सन्ति।

**ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त**
**त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः ।**
**छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं**
**यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ॥६॥**

**सा०**—हे वरुण ये ते त्वदीयाः पाशाः सप्त-सप्त उत्तममध्यमाधमभेदेन प्रत्येकं सप्तसङ्ख्याकाः त्रेधा त्रिप्रकारं विसिताः तत्र तत्र पापिनां निग्रहाय जालवद् बद्धाः। एतच्च त्रैविध्यम् 'उदुत्तमं वरुण' (ऋ १. २४. १५) इति मन्त्रान्तरादप्यवसितम्। रुशन्तः तत्तत्पापानुसारेण पापिष्ठान् हिंसन्तः तिष्ठन्ति सर्वे ते पाशाः अनृतम् वदन्तम् पापकृतम् अस्मदीयं शत्रुं छिनन्तु छिन्दन्तु। यस्तु सत्यवादी सत्यवदनशीलः पुण्यकृत् तम् अति सृजन्तु विमुञ्चन्तु।

Whi.—What fetters (पाश) of thine, O Varuna, seven, by seven, stand triply relaxed (वि-सि), shining—let them all bind him that speaks untruth; whoso is truth-speaking, let them let him go.

**योगी**—हे वरुण तीन स्थानों पर बँधे हुए (पापियों की) हिंसा करने वाले तेरे सात सात पाश हैं; वे सब अनृत कथन करने वाले को काट डालें (नष्ट भ्रष्ट कर दें) तथा जो सत्य कथन करने वाला है उसे मुक्त रखें ॥६॥

**पाशाः**—पश्—बाधनस्पर्शनयोः, बन्धने। **विसिताः**—वि सि (षिञ्) बन्धने। **रुशन्तः**—रुश्—हिंसायाम्। **छिनन्तु**—छिद् (छिदिर्) द्वैधीकरणे। **सृजन्तु**—सृज्—विसर्गे।

**अनृतम्**=ऋतभङ्गः, विश्वाखण्डनीयनियमभङ्गः; **सत्यम्**—सर्वभूतहितं कर्म। सर्वभूतहितकर्मसु रतो जनो दुःखेन न स्पृश्यते, परन्तु यदि सोऽपि नियमभङ्गं करिष्यति छिन्नो भिन्नश्च भविष्यति—**सत्यमेव जयते नानृतम्**।

ऋ. १.२४.१५ (द्रष्टव्यं वरुणसूक्तभूमिका) इत्यत्र वरुणस्य पाशत्रयस्य चर्चा—(१) उत्तमः पाशः (२) मध्यमः पाशः (३) अधमः पाशः। एषु प्रत्येकं पाशः सप्तधा। उत्तमः पाश आध्यात्मिकजीवनसम्बन्धी, मध्यमः पाशो विज्ञानमयमनोमयप्राणमयशरीरसम्बन्धी तथाचाधमः पाशोऽन्नमयशरीरसम्बन्धी। अथवा त्रयः पाशास्त्रीणि ऋणानि—देवऋणम्, पितृ-ऋणम्, ऋषि-ऋणं च। अथवा व्यक्ति-समाज-राष्ट्राणां सम्बन्धे कृतानां दोषाणां परिणामाः।

मानव-शरीरे सप्त शक्तयः—पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि मनो बुद्धिश्च। एष्वेकत्रापि विकारो दुःखाय। अथवा सप्तेति बहुसंख्यावाची, द्रष्टव्यमग्रिमे मन्त्रे 'शतेन पाशैः'

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi. Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



72

**शतेन पाशैरभि धेहि वरुणै-**
**नं मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः ।**
**आस्तां जाल्म उदरं श्रंशयित्वा**
**कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥७॥**

सा०—हे वरुण शतेन शतसङ्ख्याकैस्त्वदीयैः पाशैः एनम् अनृतवादिनं शत्रुम् अभि धेहि बधान । बद्ध्वा निगृहाणेत्यर्थः । अभिपूर्वो दधातिर्बन्धने वर्तते यथा 'अश्वाभिधानीम् आ दत्ते' (तै० ५,१,२,१) इति । हे नृचक्षः नृणां मनुष्याणां साध्वसाधुचरित्राणां विवेकेन द्रष्टः । चक्षिङः अनुनि 'असनयोश्च' (पावा २,४,५४) इति ख्याञादेशाभावः । ईदृश हे वरुण अनृतवाक् अनृतं ब्रुवन् पुरुषः ते त्वत्तः मा मोचि विमुक्तो विसृष्टो मा भूत् । किं तु जाल्मः असमीक्ष्यकारी स्वकीयम् उदरं स्रंसयित्वा जलोदररोगेण स्रस्तं कृत्वा अबन्धः बन्धरहितः प्रान्तेषु अकृतबन्धनः असेः कोश इव परिकृत्यमानः आस्ताम् त्वत्पाशबद्ध एव वर्तताम् । अत एवान्यत्राम्नातम् —'अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति' (तै० ब्रा० १,७।२,६) इति । परिकृत्यमान इति । कृती छेदने । अस्मात् कर्मणि यक् ।

Whi.—With a hundred fetters, O Varuna, do thou bridle (अभि-धा) him, let not the speaker of untruth escape thee, O men-watcher; let the Villains sit letling his belly fall (apart), like a hoopless, vessel; being cut round about.

Gr.—Like a cask (कोश इव) : swollen with dropsy and bandaged round as a cask or chest is bound with hoops or bands. Dropsy or some similar disease seems to have been especially regarded as punishmeut sent by Varuna. So a sufferer addresses Varuna (RV. VII. 89.2))—'When...I move along, tremulous like a wind-blown skin. Have mercy, spare me mighty Lord !' See Zimmer, A. I- Leben. p. 392.

I borrow Dr. Muir's translation of professor Roth's remarks on this hymn :

'There is no hymn in the whole Vedic literature which expresses the divine omnis-cience in such forcible terms as this; and yet this beautiful description has been degraded into an introduction to an imprecation. But in this, and in many other passages of this Veda, it is natural to conjecture that existing fragment of older hymns have been used to deck out magical formulas. The first five or even six verses of this hymn might be regarded as a fragment of this sort.'

कोशः—या०—कोशः कुष्णातेः, विकुषितो भवति. अयमपीतरः कोश एतस्मादेव ।

योगी—हे वरुण इस (ऋतभङ्गकारी) को सौ (सैकड़ों) पाशों से बांध ले, हे नरों के सम्यक् निरीक्षण व परीक्षा करने वाले, वे अनृतवाक् जन तेरे (बन्धनों से) दूर कर न निकल जाएं । असमीक्ष्यकारी जन अपने उदर को स्रस्त करके ऐसे स्थित हों जैसे प्रान्तों में अमुक्त-बन्धन असिकोश सब ओर से निरन्तर कटता रहता है ॥७॥

पाशैः—व्याख्यातं पुरस्तात् । जाल्मः=[illegible]—घात्ये; घातने (सायणः), उदरम्—(उद्) [illegible]—वर्णे । श्रंशयित्वा=स्रंसयित्वा—स्रंसु (स्रंसृ)—अवस्रंसने । परिकृत्यमानः—(परि) कृत्-(कृती)—छेदने ।

संसारे प्रायो बहवो नियमभङ्गा उदरपूरणाय क्रियन्ते—

**अभिमतमहामानग्रन्थिप्रभेदपटीयसी**
**गुरुतरगुणग्रामान्मोजस्फुटोज्ज्वलचन्द्रिका ।**
**विपुलविलसल्लज्जावल्लीवितानकुठारिका**
**जठरपिठरी दुष्पूरेयं करोति विडम्बनम् ॥**
—(भर्तृहरिः)

उदरपूर्त्यर्थं पापानृतमार्गानुसारिणो जना असमीक्ष्यकारिणः सन्ति । यदा मनोभावना विकृता भवन्ति तदोदरमपि विकृतं भवति । शरीर उदरमतीव मनःप्रभावसंयोगमङ्गम् ॥७॥

**यः समाय्योऽवरुणो यो व्याय्योऽ**
**यः सन्देश्योऽवरुणो यो विदेश्यः ।**
**यो देवो वरुणो यश्च मानुषः ॥८॥**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

सा०—समानम् आमयति व्याधितो भवति पुरुषोऽनेनेति समाम्यः। ईदृशो यो वरुणः। लुप्ततद्धितोऽयं निर्देशः। वारुणः। पाश इत्यर्थः। विगमनेन विविधं वा आमयति पुरुषोऽनेनेति व्याम्यो यः पाशः। तथा यो वरुणः वरुणसम्बन्धी पाशः सन्देश्यः समानदेशे भवः यश्च विदेश्यः विदेशे भवः यश्च वरुणः वरुणसम्बन्धी पाशो दैवः देवेषु भवः यश्च वरुणपाशो मानुषः मनुष्येषु प्रयुक्तः। तैस्त्वा सर्वैः इति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः।

Whi—The Varuna that is lengthwise (समाम्य) that is crosswise (व्याम्य) the Varuna that is of the same region (सन्देश्य) that is of a different region (विदेश्य) the Varuna that is of the god, and that is of men—

योगी—जो वरुण [का पाश] समाम्य है, जो सन्देश्य है और जो विदेश्य है, जो दैव है और जो मानुष है [उन सब पाशों से मैं तुझे बांधता हूँ—इत्यादि—देखो अग्रिम मन्त्र] ॥८॥

समाम्यः—(सम्)—अम्—रोगे। (आमः=रोगः)। सन्देश्यः—(सम्)—दिश्—अतिसर्जने।

नियमभङ्गकारी जनो नानाऽऽधियुक्तो भवति। आधय एव व्याधिरूपेण विपरिणमन्ति। विभिन्नव्याधीनां मूलं मनोविकारा एव। समाम्यः=सर्वशरीरमनोव्यापी रोगः; व्याम्यः=शरीरमनोजातविशिष्टरोगः; सन्देश्यः=पश्चात्तापजनितदुःखम्, विदेश्यः=विपरीतपरिस्थितिजनितदुःखम्।

दैवः—प्रकृतिजनितदुःखम्—( अवृष्टिः, अनावृष्टिः, भूकम्पः, इत्यादि। मानुषः=विभिन्नेभ्यो मनुष्येभ्य आगतं दुःखम्।

यो जनो वरुणस्याऽप्रियोऽर्थात् योऽनृतानुसारी (=ऋतभङ्गकारी) तस्य मनोऽशान्तं जायते। अशान्तं च मनो विविधदुःखबन्धनजनकम् ॥८॥

**तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशै-**
**रसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र।**
**तानु ते सर्वाननुसन्दिशामि ॥९॥**

सा०—असौ इत्यस्य स्याने सम्बुद्धया शत्रुनामग्रहणम्। आमुष्यायणेति गोत्रतो निर्देशः। अमुष्याः पुत्रेति अदःशब्दस्थाने मातृनामनिर्देशः। तद् अयम् अर्थः—हे देवदत्तायाः पुत्र गार्ग्य यज्ञशर्मन् त्वा त्वां तैः पूर्वस्याम् ऋचि उक्तैः सर्वैः पाशैः अभिष्यामि अभिदधामि। बध्नामीत्यर्थः। तथा हे शत्रो ते तुभ्यं तान् सर्वान् पाशान् अनुलक्षीकृत्य सन्दिशामि संप्रयच्छामि ॥

Whi—With all those fetters I fasten thee, O so-and-so, of such-and-such a family, son of such-and-such a mother; and all of them I Successively appoint for thee.

योगी—हे अमुक वंश में उत्पन्न हुए अमुक माता के पुत्र, मैं तुझे उन सब (अष्टम मन्त्र में वर्णित) बन्धनों से भली भांति बांधता हूँ और उन सब बन्धनों को तेरे लिए निर्दिष्ट करता हूँ (जब तक तू इन 'अनृतों का त्याग नहीं करता ॥९॥

यत्र यत्र यदा यदा नियमभङ्गस्तत्र तत्र तदा तदा मनोदौर्बल्यम्। मनोदौर्बल्यं च विविधदुःखजनकम्। परमिदं दुःखं मनुष्यस्य जीवनसुधारायागच्छति, परमात्मा न प्रतिशोधप्रियः, असौ तु प्रेममयः।

कर्मणां फलमवश्यं प्राप्यते, यतः प्रत्येकं कर्म मनः शरीरादिष्ववश्यं प्रभावं करोति। कर्मफलेभ्यो न मुक्तिर्यतोऽयं सृष्टेः शाश्वतो नियमः। यद्ययं नियमो न स्याद् तदा सृष्टिलीलानन्दसमाप्तिः स्यात्। कर्मविषये मनुष्येण सदा सावधानेन भवितव्यम्—

**यथा मृत्पिण्डतः कर्ता कुरुते यद्यदिच्छति।**
**एवमात्मकृतं कर्म मानवः प्रतिपद्यते ॥**
**सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता**
**परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।**
**अहं करोमीति वृथाभिमानः**
**स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥**
**यस्माच्च येन च यथा च यदा यच्च**
**यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म।**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

उत्तमम

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust



तस्माच्च तेन च तदा च तथा च तच्च
तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति ॥
आकाशमुत्पततु गच्छतु वा दिगन्त-
मम्भोनिधिं विशतु तिष्ठतु वा यथेच्छम् ।
जन्मान्तरार्जितशुभाशुभकृन्नराणां
छायेव न त्यजति कर्मफलानुबन्धः ॥
गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥
नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगा
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः ।
फलं कर्मायत्तं किममरगणैः किं च विधिना
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥

———

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# शुद्धिपत्र

| अशुद्ध पृष्ठ | कालम | पङ्क्ति | | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|
| २ | २ | ११ | रेळिह | रेळ्हि |
| " | " | " | " | " |
| ४ | १ | ११ | मन्त्रमनेके | मन्त्रेऽनेके |
| ७ | १ | २० | इन्द्रादीनि | इन्द्रादयः |
| ७ | २ | ३५ | ८. | ८. अर० |
| ७ | २ | ३६ | ९. | ९. अर० |
| ८ | २ | २ | सोमो अवति | सोमोऽवति |
| ९ | १ | १० | वावातुर्यः | वावातुः |
| ११ | २ | ४ | मिति | मिति । |
| १४ | २ | ११ | lord | lord, |
| १४ | २ | १३ | भिपु | भिपु- |
| १५ | १ | ५ | वैरिण | वैरिणं |
| १५ | २ | २४ | थापयति | स्थापयति |
| १६ | १ | ५ | तत्स | तत्सं |
| १६ | २ | ३५ | नात | नाता |
| १६ | २ | ३६ | संरुजाना | सं रुजाना |
| १७ | २ | १ | उपार्जकम् | अपार्जकम् |
| १८ | १ | ३५ | स्यर्चि | स्यर्चि- |
| १८ | २ | ३५ | ना चिन्त | नाश्चिन्त |
| १९ | २ | ३१ | मनोरुहाणा | मनो रुहाणा |
| १९ | २ | ३१ | भिन्नशयानं | भिन्नं शयानं |
| १९ | २ | ३३ | बद्ध्वा । | बद्ध्वा |
| २० | १ | ३८ | रबा | रवा |
| २० | २ | ३७ | पथिव्या | पृथिव्या |
| २१ | १ | ८ | सपुत्रो | स पुत्रो |
| २१ | २ | ४ | ना वृ | नावृ |
| २१ | २ | ५ | कर्माणिसस्म | कर्माणि भस्म |
| २३ | १ | २९ | विलम् | बिलम् |
| २४ | १ | ५ | सोमो अवति | सोमोऽवति |
| २५ | १ | १२ | सिपध | सिषेध |
| २५ | २ | ७ | ना प्य | नाप्य |
| २७ | १ | २० | स्य चि | स्यचि |
| ३० | १ | १३ | कथितम् | कथितः |
| ३० | २ | २६ | विष्णुः, | विष्णुः |
| ३१ | २ | १८ | दुष्कृताम्' | दुष्कृतां |
| ३१ | २ | २४ | रुद्राया | रुद्राय |
| ३४ | १ | १ | वातव | वा तव |
| ३४ | २ | २८ | हेळा | हेळो |
| ३५ | २ | २५ | कविम् इति' | कविम्' इति |
| ३७ | २ | २२ | मर्त्येभ्यः | मर्त्यानां |
| ४१ | १ | २३ | निष्टाना | निष्टानां |
| ४१ | २ | ३१ | सुनें | सुने |
| ४६ | १ | ६ | 'अत्रि' | 'अत्रिः' |
| ४७ | २ | १५ | भवेयुः | भवेयुः, |
| ४८ | १ | ३४ | पूर्णता | प्रभूत ध्वनि वाले, पूर्णता |
| ४९ | १ | १२ | Songs | songs |
| ५२ | २ | २ | हिरण्यःक्षः, | हिरण्याक्षः, |
| ५३ | १ | ९ | यजुयदस्य | यजुर्वेदस्य |
| ५३ | १ | १६ | ऐकात्म्य | ऐकात्म्य- |
| ५४ | १ | ४ | जन्म द्वयस्य | जन्मद्वयस्य |
| ५४ | १ | ७ | समानीत वाष्प जनित | समानीत-वाष्पजनित |
| ५७ | २ | ३ | Songs | songs |
| ५७ | २ | ६ | Vital | vital |
| ५७ | २ | ६ | Strength | strength |
| ५७ | २ | ३६ | सफल शक्तिः | सफलशक्तिः |
| ५७ | २ | ३७ | सम्पनश्च | सम्पन्नश्च |
| ५८ | १ | १३ | मवा | मदा |
| ६० | १ | २१ | सोमस्तीव्रो | सोमस्तीव्रो |
| ६१ | २ | २ | कर्साणि | कर्माणि |
| ६२ | १ | १४ | सिन्धा | सिन्धो |



Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# शुद्धिपत्र

| पृष्ठ | अशुद्ध कालम | पङ्क्ति | | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|
| २ | २ | ११ | रेळिह | रेळ्हि |
| " | " | " | " | " |
| ४ | १ | ११ | मन्त्रमनेके | मन्त्रेऽनेके |
| ७ | १ | २० | इन्द्रादीनि | इन्द्रादयः |
| ७ | २ | ३५ | ८. | ८. अर० |
| ७ | २ | ३६ | ९. | ९. अर० |
| ८ | २ | २ | सोमो अवति | सोमोऽवति |
| ९ | १ | १० | वावातुर्यः | वावातुः |
| ११ | २ | ४ | मिति | मिति । |
| १४ | २ | ११ | lord | lord, |
| १४ | २ | १३ | भिषु | भिषु- |
| १५ | १ | ५ | वैरिण | वैरिणं |
| १५ | २ | २४ | थापयति | स्थापयति |
| १६ | १ | ५ | तत्स | तत्सं |
| १६ | २ | ३५ | नात | नाता |
| १६ | २ | ३६ | संरुजाना | सं रुजाना |
| १७ | २ | १ | उपार्जकम् | अपार्जकम् |
| १८ | १ | ३५ | स्यचि | स्यचि- |
| १८ | २ | ३५ | ना चिन्त | नाश्चिन्त |
| १९ | २ | ३१ | मनोरुहाणा | मनो रुहाणा |
| १९ | २ | ३१ | भिन्नशयानं | भिन्नं शयानं |
| १९ | २ | ३३ | वद्ध्वा । | वद्ध्वा |
| २० | १ | ३८ | रवा | रवा |
| २० | २ | ३७ | पथिव्या | पृथिव्या |
| २१ | १ | ८ | सपुत्रो | स पुत्रो |
| २१ | २ | ४ | ना वृ | नावृ |
| २१ | २ | ५ | कर्माणिसस्म | कर्माणि भस्म |
| २३ | १ | २९ | बिलम् | बिलम् |
| २४ | १ | ५ | सोमो अवति | सोमोऽवति |
| २५ | १ | १२ | सिषध | सिषेध |
| २५ | २ | २७ | १ | १ |
| ३० | १ | ३० | २ | २ |
| ३१ | २ | ३१ | २ | २ |
| ३४ | १ | ८. अर० | ३४ | १ |
| ३४ | २ | ९. अर० | ३४ | २ |
| ३५ | २ | सोमोऽवति | ३५ | २ |
| ३७ | २ | वावातुः | ३७ | २ |
| ४१ | १ | मिति । | ४१ | १ |
| ४१ | २ | lord, | ४१ | २ |
| ४६ | १ | भिषु- | ४६ | १ |
| ४७ | २ | वैरिणं | ४७ | २ |
| ४८ | १ | स्थापयति | ४८ | १ |
| ४९ | १ | तत्सं | | |
| ५२ | २ | नाता | ४९ | १ |
| ५३ | १ | सं रुजाना | ५२ | २ |
| ५३ | १ | अपार्जकम् | ५३ | १ |
| ५४ | १ | स्यचि- | ५३ | १ |
| ५४ | १ | नाश्चिन्त | ५४ | १ |
| ५७ | २ | मनो रुहाणा | ५४ | १ |
| ५७ | २ | भिन्नं शयानं | | |
| ५७ | २ | वद्ध्वा | ५७ | २ |
| ५७ | २ | रवा | ५७ | २ |
| ५७ | २ | पृथिव्या | ५७ | २ |
| ५८ | १ | स पुत्रो | ५७ | २ |
| ६० | १ | नावृ | ५७ | २ |
| ६१ | २ | कर्माणि भस्म | ५८ | १ |
| ६२ | १ | बिलम् | ६० | १ |
| | | सोमोऽवति | ६१ | २ |
| | | सिषेध | ६२ | १ |

| | | |
|---|---|---|
| ७ | ना प्य | नाप्य |
| २० | स्य चि | स्यचि |
| १३ | कथितम् | कथितः |
| २६ | विष्णुः, | विष्णुः |
| १८ | दुष्कृताम्' | दुष्कृतां |
| २४ | रुद्राया | रुद्राय |
| १ | वातव | वा तव |
| २८ | हेळा | हेळो |
| २५ | कविम् इति' | कविम् इति |
| २२ | मर्त्येभ्यः | मर्त्यानां |
| २३ | निष्टाना | निष्टानां |
| ३१ | सुनें | सुने |
| ६ | 'अग्नि' | 'अग्निः' |
| १५ | भवेयुः | भवेयुः, |
| ३४ | पूर्णता | प्रभुज |
| | | ध्वनि वाले, पूर्णता |
| १२ | Songs | songs |
| २ | हिरण्यक्षः, | हिरण्याक्षः, |
| ९ | यजुर्वेदस्य | यजुर्वेदस्य |
| १६ | ऐकात्म्य | ऐकात्म्य- |
| ४ | जन्म द्वयस्य | जन्मद्वयस्य |
| ७ | समानीत वाष्प | समानीत- |
| | जनित | वाष्पजनित |
| ३ | Songs | songs |
| ६ | Vital | vital |
| ६ | Strength | strength |
| ३६ | सफल शक्तिः | सफलशक्तिः |
| ३७ | सम्पनद्य | सम्पन्नद्य |
| १३ | मवा | मदा |
| २१ | सोमस्तीत्रो | सोमस्तीव्रो |
| २ | कर्माणि | कर्माणि |
| १४ | सिन्धा | सिन्धो |



Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ६३ | १ | २ | Song | song | ९७ | २ | २९ पत्वः | पित्वः |
| ६३ | १ | ४ | Sea | sea | ९९ | १ | १५ माघ | मोघ |
| ६३ | १ | १५ | गणा | गणाः | १०० | १ | १७ मनुष्येणजीवने | मनुष्येण जीवने |
| ६६ | १ | १८ | शुद्धया | शुद्धचा | १०५ | १ | ३२ भव | भवः |
| ७० | २ | १५ | धावो | धावो | १०५ | २ | ३० तदेति नै० | तदेतिनै० |
| ७१ | १ | ३१ | प्रसूनृतां | सूनृतां | १०८ | १ | ६ दृढयति | द्रढयति |
| ७४ | २ | १५ | knrows | knows | ११७ | १ | २८ प्रसेवाश्च्छ० | प्रसेवश्छि० |
| ७४ | २ | २७ | जागृत | जाग्रत | ११८ | २ | ७ कल्पमाने | कम्पमाने |
| ७६ | १ | ३० | निस्तराय | विस्तराय | ११८ | २ | १८ हवि | हवि- |
| ७६ | १ | ३० | सूक्ताम् | सूक्तम् | १२० | २ | २३ निभृतं | विभृतं |
| ८० | १ | ३ | महामहिमा | महामहिमः | १२४ | १ | ४ ग्रह | गृह |
| ८२ | १ | २० | विश्वता | विश्वतो | १२६ | १ | ३६ घन | घनं |
| ८३ | २ | ५ | यद्भूतं | यद् भूतं | १२७ | २ | ४ मुन्नति | मुन्नतिं |
| ८६ | १ | १३ | एर्व | एवं | १२९ | २ | १९ निघातो | निघातो |
| ८९ | १ | ७ | आनन्द | आनन्दः | १३२ | १ | १९ यन्याय | यन्न्याय |
| ९१ | २ | २१ | रर्जनं | रर्जनम् | १३२ | २ | २६ स्वप्न श्चने० | स्वप्नश्चने० |
| ९२ | १ | ८ | ग्निलो | ग्निर्लो | १३३ | १ | १४ सोममातुजी | आतुजी |
| ९२ | १ | ८ | धिर्व | धिव | १३६ | १ | ३५ त्रधा | त्रेधा |
| ९३ | १ | २८ | त्रिः सप्त | त्रिःसप्त | १३८ | १ | २६ (अवृष्टिः | अवृष्टिः |
| ९४ | १ | ११ | पुरुषः | पुरुषो | १३८ | २ | ११ Succ | succ |
| ९४ | १ | १३ | वद्धः | वद्ध | १३९ | २ | ७ निधि | विधि |
| ९७ | १ | ५ | कृण्व्योरच्चे० | कृण्व्योर चेत्यु | | | | |

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ६३ | १ | २ | Song | song | ६७ | २ | २६ पत्वः | पित्वः |
| ६३ | १ | ४ | Sea | sea | ६६ | १ | १५ माघ | मोघ |
| ६३ | १ | १५ | गणा | गणाः | १०० | १ | १७ मनुष्येणजीवने | मनुष्येण जीवने |
| ६६ | १ | १८ | शुद्धया | शुद्धचा | १०५ | १ | ३२ भव | भवः |
| ७० | २ | १५ | धावो | धावो | १०५ | २ | ३० तदेति नै० | तदेतिनै० |
| ७१ | १ | ३१ | प्रसूनूतां | सूनूतां | १०८ | १ | ६ द्दढयति | द्रढयति |
| ७४ | २ | १५ | knrows | knows | ११७ | १ | २८ प्रसेवाश्च्छ० | प्रसेवश्छि० |
| ७४ | २ | २७ | जाग्रत | जाग्रत | ११८ | २ | ७ कल्पमाने | कम्पमाने |
| ७६ | १ | ३० | निस्तराय | विस्तराय | ११८ | २ | १८ हवि | हवि- |
| ७६ | १ | ३० | सूक्ताम् | सूक्तम् | १२० | २ | २३ निभृतं | विभृतं |
| ८० | १ | ३ | महामहिमा | महामहिमः | १२४ | १ | ४ ग्रह | गृह |
| ८२ | १ | २० | विश्वता | विश्वतो | १२६ | १ | ३६ घन | घनं |
| ८३ | २ | ५ | यद्भूतं | यद् भूतं | १२७ | २ | ४ मुन्नति | मुन्नतिं |
| ८६ | १ | १३ | एर्व | एवं | १२६ | २ | १६ निधातो | निघातो |
| ८६ | १ | ७ | आनन्द | आनन्दः | १३२ | १ | १६ यन्याय | यन्न्याय |
| ६१ | २ | २१ | रर्जनं | रर्जनम् | १३२ | २ | २६ स्वप्न श्चने० | स्वप्नश्चने० |
| ६२ | १ | ८ | ग्निलो | ग्निर्लो | १३३ | १ | १४ सोममातुजी | आतुजी |
| ६२ | १ | ८ | घिर्व | घिव | १३६ | १ | ३५ त्रधा | त्रेधा |
| ६३ | १ | २८ | त्रि: सप्त | त्रिःसप्त | १३८ | १ | २६ (अवृष्टिः | अवृष्टिः |
| ६४ | १ | ११ | पुरुषः | पुरुषो | १३८ | २ | ११ Succ | succ |
| ६४ | १ | १३ | वद्धः | वद्ध | १३६ | २ | ७ निधि | विधि |
| ६७ | १ | ५ | कृण्व्योरच्चे० | कृण्व्योर चेत्यु | | | | |

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

**केन्द्रीय विद्यालय संगठन**
18 ,संस्थागत क्षेत्र, शहीद जीत सिंहमार्ग,
नई दिल्ली - 110 002
**Kendriya Vidyalaya Sangathan**
18, Institutional Area, Shaheed Jeet Singh Marg,
New Delhi - 110 002
Website : www.kv3af.com

**केन्द्रीय विद्यालय नं. ३,**
वायुसेना स्थल - II
जामनगर (गुजरात) 361004.
**Kendriya Vidyalaya No. 3,**
Airforce station - II,
Jamnagar (Gujarat) 361004.
Website : www.kv3af.com

# प्रमाणपत्र / Certificate

सप्रमाणित किया जाता है कि कु. / श्रीमती / श्री _____ केन्द्रीय विद्यालय
This is to certify the Kum. / Smt. / Shri Kendriya Vidyalaya

_____ संभाग के इस संस्थान में आयोजित सेवा कालीन प्रशिक्षण शिविर में
Region attended Inservice Training Course held at this Institute.

दिनांक _____ से _____ तक भाग लिया।
from. to

समग्र मूल्यांकन के आधार पर सुश्री / श्रीमती / श्री.. _____ ने _____ श्रेणी प्राप्त की।
Based on overall performance Ms / Mr. has been graded.

(डॉ सुजय सिंह शेखर)
सह निर्देशक /
Associate Director

(डॉ छवि कुमार आर्य)
निर्देशक /
Director

जामनगर / Jamnagar
तिथि / Date : .....

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# Continuous and comprehensive Evaluation of the Participant
## (To be Evaluated in 05 point scale)

**Name of the Teacher** .....

| Trait | Grade - A B C D E |
|---|---|
| 1 - Knowledge of the contents | |
| 2 - Transaction skill | |
| 3 - Attitude | |
| 4 - Use fo Learning Aids | |
| 5 - Keenness | |

**Pre - Test**

| Max Marks | Marks Obtained | %age of Marks |
|---|---|---|
| | | |

**Overall Performance Report Including Post-Test**

| | Max Marks | Marks Obtained | %age of Marks |
|---|---|---|---|
| Performance in Post Test | | | |
| Comprehensive contribution in areas other than Test | | | |
| Total | | | |

**Grading Parameters**

| Percentage | Grade | Performance |
|---|---|---|
| 90% & above | A | Outstanding |
| 75% to 89% | B | Very Good |
| Below 75% | C | Needs Improvement |

**Director**

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

# शुद्धिपत्र

| पृष्ठ | अशुद्ध कालम | पङ्क्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|
| २ | २ | ११ | रेळिह | रेळ्हि |
| ,, | ,, | ,, | ,, | ,, |
| ४ | १ | ११ | मन्त्रमनेके | मन्त्रेऽनेके |
| ७ | १ | २० | इन्द्रादीनि | इन्द्रादयः |
| ७ | २ | ३५ | ८. | ८. अर० |
| ७ | २ | ३६ | ९. | ९. अर० |
| ८ | २ | २ | सोमो अवति | सोमोऽवति |
| ९ | १ | १० | वावातुर्यः | वावातुः |
| ११ | २ | ४ | मिति | मिति । |
| १४ | २ | ११ | lord | lord, |
| १४ | २ | १३ | भिषु | भिषु- |
| १५ | १ | ५ | वैरिण | वैरिणं |
| १५ | २ | २४ | थापयति | स्थापयति |
| १६ | १ | ५ | तत्स | तत्सं |
| १६ | २ | ३५ | नात | नाता |
| १६ | २ | ३६ | संरुजाना | सं रुजाना |
| १७ | २ | १ | उपार्जकम् | अपार्जकम् |
| १८ | १ | ३५ | स्यर्चि | स्यर्चि- |
| १८ | २ | ३५ | ना चिन्त | नाश्चिन्त |
| १९ | २ | ३१ | मनोरुहाणा | मनो रुहाणा |
| १९ | २ | ३१ | भिन्नशयानं | भिन्नं शयानं |
| १९ | २ | ३३ | वद्ध्वा । | बद्ध्वा |
| २० | १ | ३८ | रवा | रवा |
| २० | २ | ३७ | पथिव्या | पृथिव्या |
| २१ | १ | ८ | सपुत्रो | स पुत्रो |
| २१ | २ | ४ | ना वृ | नावृ |
| २१ | २ | ५ | कर्माणिसस्म | कर्माणि भस्म |
| २३ | १ | २९ | विलम् | बिलम् |
| २४ | १ | ५ | सोमो अवति | सोमोऽवति |
| २५ | १ | १२ | सिषव | सिषेध |
| २५ | २ | २७ | | |
| ३० | १ | | | |
| ३० | २ | | | |
| ३१ | २ | | | |
| ३१ | २ | | | |
| ३४ | १ | | | |
| ३४ | २ | | | |
| ३५ | २ | | | |
| ३७ | २ | | | |
| ४१ | १ | | | |
| ४१ | २ | | | |
| ४६ | १ | | | |
| ४७ | २ | | | |
| ४८ | १ | | | |
| ४९ | १ | | | |
| ५२ | २ | | | |
| ५३ | १ | | | |
| ५३ | १ | | | |
| ५४ | १ | | | |
| ५४ | १ | | | |
| ५७ | २ | | | |
| ५७ | २ | | | |
| ५७ | २ | | | |
| ५७ | २ | | | |
| ५७ | २ | | | |
| ५८ | १ | | | |
| ६० | १ | | | |
| ६१ | २ | | | |
| ६२ | १ | | | |

| | | |
|---|---|---|
| ७ | ना प्य | नाप्य |
| २० | स्य चि | स्यचि |
| १३ | कथितम् | कथितः |
| २६ | विष्णुः, | विष्णुः |
| १८ | दुष्कृताम्' | दुष्कृतां |
| २४ | रुद्राया | रुद्राय |
| १ | वातव | वा तव |
| २८ | हेळा | हेळो |
| २५ | कविम् इति' | कविम्' इति |
| २२ | मर्त्येभ्यः | मर्त्यानां |
| २३ | निष्टाना | निष्टानां |
| ३१ | सुनें | सुनें |
| ६ | 'अत्रि' | 'अत्रिः' |
| १५ | भवेयुः | भवेयुः, |
| ३४ | पूर्णता | प्रभूत ध्वनि वाले, पूर्णता |
| १२ | Songs | songs |
| २ | हिरण्याक्षः, | हिरण्याक्षः, |
| ९ | यजुर्वदस्य | यजुर्वेदस्य |
| १६ | ऐकारस्य | ऐकारस्य- |
| ४ | जन्म द्वयस्य | जन्मद्वयस्य |
| ७ | समानीत बाष्प जनित | समानीत-बाष्पजनित |
| ३ | Songs | songs |
| ६ | Vital | vital |
| ६ | Strength | strength |
| ३६ | सफल शक्तिः | सफलशक्तिः |
| ३७ | सम्पनदच | सम्पन्नदच |
| १३ | मवा | मदा |
| २१ | सोमस्तीव्रो | सोमस्तीव्रो |
| २ | कर्माणि | कर्माणि |
| १४ | सिन्वा | सिन्वो |



Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ६३ | १ | २ | Song | song | ९७ | २ | २९ | पत्वः | पित्वः |
| ६३ | १ | ४ | Sea | sea | ९९ | १ | १५ | माघ | मोघ |
| ६३ | १ | १५ | गणा | गणाः | १०० | १ | १७ | मनुष्येणजीवने | मनुष्येण जीवने |
| ६६ | १ | १८ | शुद्धया | शुद्धचा | १०५ | १ | ३२ | भव | भवः |
| ७० | २ | १५ | धावो | धावो | १०५ | २ | ३० | तदेति नै० | तदेतिनै० |
| ७१ | १ | ३१ | प्रसूनृतां | सूनृतां | १०८ | १ | ६ | दृढयति | द्रढयति |
| ७४ | २ | १५ | knrows | knows | ११७ | १ | २८ | प्रसेवाश्च्छ० | प्रसेवश्छि० |
| ७४ | २ | २७ | जागृत | जाग्रत | ११८ | २ | ७ | कल्पमाने | कम्पमाने |
| ७६ | १ | ३० | निस्तराय | विस्तराय | ११८ | २ | १८ | हवि | हवि- |
| ७६ | १ | ३० | सूक्ताम् | सूक्तम् | १२० | २ | २३ | निभृतं | विभृतं |
| ८० | १ | ३ | महामहिमा | महामहिमः | १२४ | १ | ४ | ग्रह | गृह |
| ८२ | १ | २० | विश्वता | विश्वतो | १२६ | १ | ३६ | धन | धनं |
| ८३ | २ | ५ | यद्भूतं | यद् भूतं | १२७ | २ | ४ | मुन्नति | मुन्नतिं |
| ८६ | १ | १३ | एवं | एवं | १२९ | २ | १९ | निघातो | निघातो |
| ८९ | १ | ७ | आनन्द | आनन्दः | १३२ | १ | १९ | यन्याय | यन्न्याय |
| ९१ | २ | २१ | रर्जनं | रर्जनम् | १३२ | २ | २६ | स्वप्न श्चने० | स्वप्नश्चने० |
| ९२ | १ | ८ | ग्निलो | ग्निर्लो | १३३ | १ | १४ | सोममातुजी | आतुजी |
| ९२ | १ | ८ | धिर्व | धिव | १३६ | १ | ३५ | त्रधा | त्रेधा |
| ९३ | १ | २८ | त्रिः सप्त | त्रिःसप्त | १३८ | १ | २६ | (अवृष्टिः | अवृष्टिः |
| ९४ | १ | ११ | पुरुषः | पुरुषो | १३८ | २ | ११ | Succ | succ |
| ९४ | १ | १३ | वद्धः | वद्ध | १३९ | २ | ७ | निधि | विधि |
| ९७ | १ | ५ | कृण्व्योरच्चे० | कृण्व्योर चेत्यु | | | | | |

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

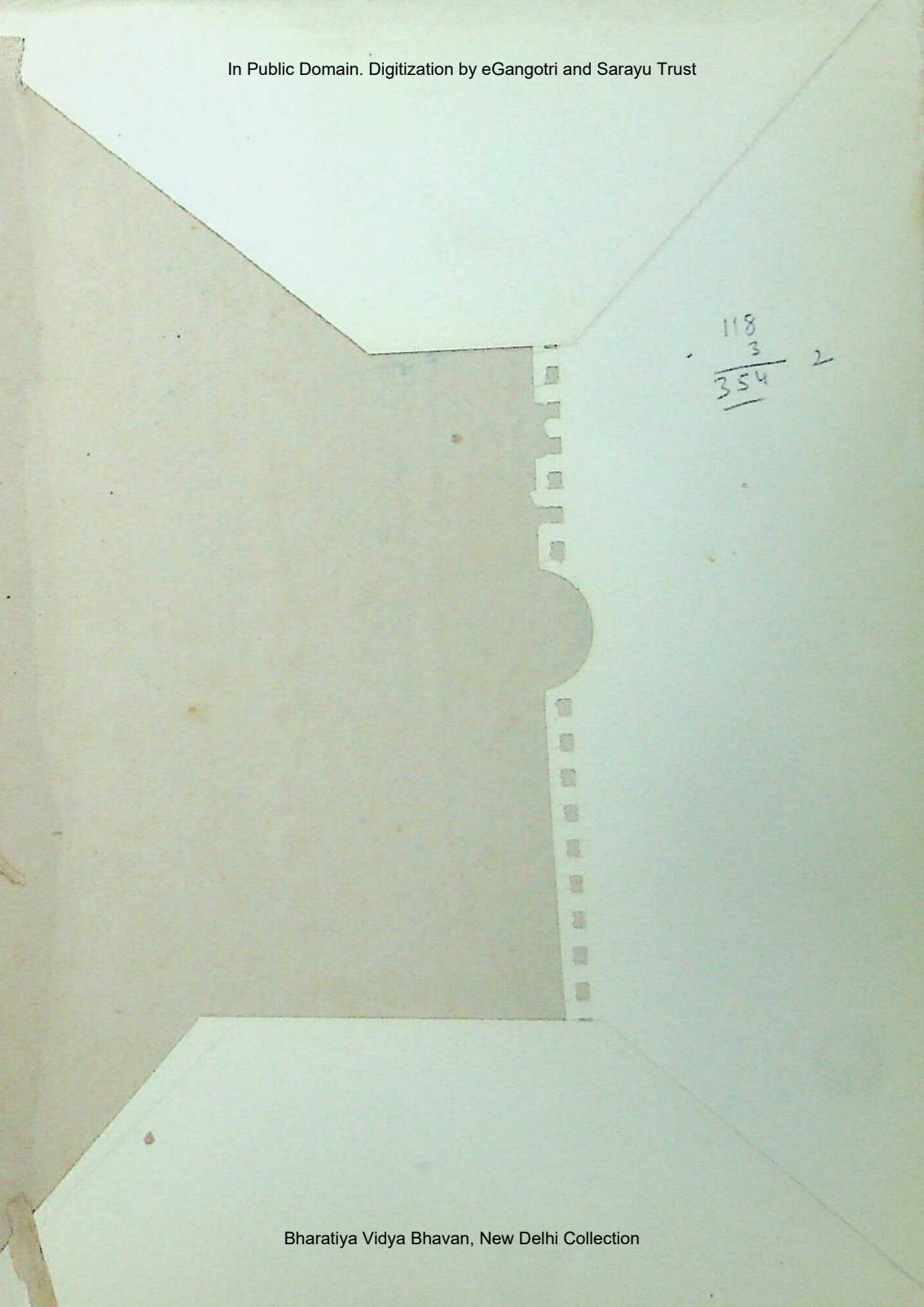


Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust

~~2229079~~
22581213
श्री आर एस आर्क

Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi Collection